CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हि: ४८६

अभिशप्त कथा

- मनु शर्मा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

सर्वसुलभं
विवेक

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हि॰ ४८६

अभिशप्त कथा

- मनु शर्मा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDF

मनु शर्मा

सन् १९२८ की शरद्पूर्णिमाको अकबरपुर, फैजाबाद (उ. प्र) में जन्मे हनुमान प्रसाद शर्मा लेखन-जगत् में मनुशर्मा के नाम से विख्यात हैं। आपकी सशक्त लेखेनी से अनेक ऐतिहासिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक उपन्यास् प्रणीत हुए हैं।

बाप्पा रावल, तीन प्रश्न, द्रोण की आत्मकथा, कर्ण की आत्मकथा उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत। द्रौपदी की आत्मकथा, के बोले माँ तुमि अबले तथा एकलिंग का दीवान बहुर्चांचत।

पुराणेहितासिक काल को रूपायित करनेवाली शर्मा जी की कृतियाँ बड़ी तेजस्वी सिद्ध हुई हैं। द्रोण की आत्मकथा का अनुवाद वर्मी और उड़िया में प्रकाश्य।

सम्प्रति डी० ए० वी० कालेज, वाराणसी में प्रवक्ता।

सम्पर्क सूत्र
३८२ सी बड़ी पियरी
वाराणसी–२२१००१

प्रचारक बुक क्लब
हिन्दी प्रचारक संस्थान
पो०बा०१०६, पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१००१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हि. ४८३

अभिशप्त कथा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भारत के प्रथम बुक क्लब
प्रचारक बुक क्लब
हिन्दी प्रचारक संस्थान
पी० बा० १०६, पिशाचमोचन, वाराणसी–२२१००१ के लिए
विजय प्रकाश बेरी द्वारा प्रकाशित तथा
डैमियन प्रेस, वाराणसी में मुद्रित
सन् १९८१
MANU SHARMA
ABHISHAPTA KATHA
NOVEL
मूल्य–२५·००

नेपाल साहित्य केन्द्र
मूल्य नेरु ...३६१५०...
१२०१६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हि: ४८३

'मानस का हंस'

श्री अमृत लाल नागर को

सादर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हि. ४८३

कथा-सूत्र

* २५० वैदिक सूक्तों में इन्द्र की प्रख्याति है। इन्द्र को अर्पित सूक्तों की संख्या लगभग ३०० तक पहुँच जाती है। अन्य वैदिक देवताओं की अपेक्षा इसका व्यक्तित्व कल्पनाओं से अधिक घिरा है।

* वैदिक इन्द्र सार्वभौमिक सम्राट था। सोमपान का प्रेमी था, पर वह नैतिक शासक नहीं था। पौराणिक परिकल्पना में तो वह और भी अनैतिक हो गया।

* इन्द्र देवराज था और वृषपर्वा दैत्यराज। दैत्य पुरोहित शुक्राचार्य बहुत दिनों तक वृषपर्वा के नगर में रहे। —महाभारत आदिपर्व।

* इन्द्र ने अपनी पुत्री जयन्ती को शुक्र की सेवा में भेजा था। शुक्र उसकी सेवा से बहुत प्रसन्न हुए और उसके पति रूप में दस वर्षों तक रहे।

—ब्रह्मांड एवं वायु पुराण।

* असुरराज वृषपर्वा ने अपनी पुत्री शर्मिष्ठा को अपने गुरु शुक्राचार्य और उनकी दुहिता को प्रसन्न करने के लिए शुक्र के ही आश्रम में छोड़ रखा था।

—मत्स्य पुराण।

* इन्द्र ने भी अपनी पुत्री शुक्राचार्य को अर्पित की और वृषपर्वा ने भी। क्या यह इसलिए नहीं हुआ कि उनके पास संजीवनी विद्या थी? सत्ता और सिंहासन के लिए अपनी पुत्री तक को समर्पित करने की जघन्य प्रवृत्ति क्या आज तक अपनी प्रासंगिकता नहीं बनाये हुए है?

* देवगुरु वृहस्पति और असुरगुरु शुक्र दोनों नीतिज्ञ थे। दोनों देववर्णी थे, किन्तु शुक्र ने सोम की मादकता में अपनी नैतिकता डुबो दी थी। सुरा और सुन्दरी से खेलती हुई उसकी वासना आसुरी हो गयी थी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रहरी की दृष्टि अब निकट की स्फटिक शिला की ओर मुड़ी, जहाँ उसका दूसरा साथी ढुलका पड़ा था और खर्राटे भर रहा था, अपने कर्त्तव्य से च्युत। कदाचित् मैरेय अधिक ले ली है। वह उसके पास आया और झकझोर कर उसे जगाने लगा,—"अरे उठ !"

नींद उसे छोड़ नहीं पा रही थी। वह तंद्रिल अवस्था में ही बड़बड़ाया,— "व्यर्थ परेशान मत कर।....अभी सोने दे।"

"उधर देख ओऽ....।"—उसने पुनः उसे झकझोरा और पुष्कारिणी की ओर संकेत किया।

"यह ओऽ....ओऽ क्या करता है, रे ?"—वह आँखें मलते हुए बड़बड़ाया— "किसी उर्वशी को बुलाया है क्या ?"

"तुझे उर्वशी ही सूझती है।....और मैं यहाँ मरा जा रहा हूँ।"—एक जोर का धक्का उसने और दिया। अब वह मैरेय के चषक से निकल कर धरती पर आया। प्रकृतिस्थ हुआ। उसकी दृष्टि पुष्कारिणी की ओर गयी। उसने जो कुछ देखा उससे अवाक् रह गया।

वह कुछ समय तक यों ही देखता रहा, मानो कोई आश्चर्यजनक स्वप्न अप्रत्याशित घटना बन बैठा हो। वह बोल पड़ा,—"जरूर कोई बात है, अन्यथा महाराज इस कुसमय में उद्यान की ओर न आते।"—इतना कहकर उसने फिर चारों ओर दृष्टि दौड़ायी। निश्चित रूप से वह उन अप्सराओं को ढूँढ़ रहा था, जो छाया की भाँति देवेन्द्र के साथ लगी रहती हैं।

धीरे-धीरे दो-एक प्रहरी और वहाँ एकत्र हो गये। आतंक और अनिश्चय के विचित्र घुटन का अनुभव करते हुए वे चुप थे, फिर भी कभी-कभी कुतूहल के शब्द अभागों के सपनों की भाँति उनके अधरों से बिखर पड़ते थे।

क्षण के बाद क्षण बीतते गये।

देवेन्द्र की चिन्ता और व्यग्रता से तमिस्र काँपने लगा। ब्राह्म मुहूर्त के पूर्व ही राज-प्रासाद जाग उठा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुछ अप्सराएँ दौड़ी हुई उद्यान की ओर आयीं और महाराज के निकट जाकर अभिवादन के स्वर में बोलीं,—"देवाधिदेव, महाराज इन्द्र की जय हो।"

पर इन्द्र शून्यमनस्क से अपलक उन्हें निहारते रहे। उनकी गम्भीर मुद्रा ने अप्सराओं को भी जड़वत् कर दिया। कोई कुछ बोल न सकी। उनकी जिज्ञासा पर कुतूहल का हिम जमता चला गया।

ऐसे ही गुमसुम से कुछ क्षण और निकल गये।

फिर कुछ सहमी हुई और अपने बिखरे साहस का हर कण बटोरती हुइ उनमें से एक बोली—"कुछ जानने की धृष्टता कर सकती हूँ, महाराज?"

महाराज के अधर हिले नहीं, पर भंगिमा ने पूछा—"क्या?"

"यही कि आज रात्रि में ही आप उद्यान में क्यों चले आये?"

"अभी तो शुक्र का भी उदय नहीं हुआ है, राजन! लगभग डेढ़ प्रहर रात्रि शेष है।"—यह आवाज दूसरी अप्सरा की थी।

महाराज अपना दक्षिण चरण पुष्करिणी के जल में हिलाते हुए बोले,—"मैं ऐसी मनःस्थिति में हूँ, जिसमें रात और दिन में कोई अन्तर नहीं होता देवांगना।"—सबकी दृष्टि महाराज की आकृति पर टँग गयी। वे बोलते गये,—"··मुझे नींद नहीं आयी। मध्य रात्रि तक जागता रहा। विचार मस्तिष्क से टकराते रहे। नींद सामने खड़ी मुद्राएँ बदलती रही। आँख लगते ही एक दुःखद स्वप्न ने आ घेरा।"—महाराज क्षण भर के लिए चुप हो गये जैसे मन पर पड़े स्वप्न को उधेड़ रहे हों। फिर उन्होंने धीरे-धीरे बताया,—'····मैंने देखा, ऐरावत मुझे अपनी सूँड़ में लपेट रहा है। मेरा सिर मुझसे अलग हो कहीं और गिरा है, मैं कबंध मात्र रह गया हूँ। फिर भी रुधिर नहीं बह रहा है। चारों ओर मुझे घेर कर खड़े असुर अट्टहास कर रहे हैं।····फिर क्षण भर में सब कुछ लुप्त हो जाता है। मैं एकाकी तिमिरनद में डूबने लगता हूँ।···नभ में नक्षत्र निपात हो रहा है। चन्द्र चूर-चूर होकर बिखर गया है। आकाश टुकड़े-टुकड़े हो गया है।····ओह कितना भयानक!"—इतना कहते-कहते वह एकदम मौन हो गये। आगे की ओर पग बढ़ाया तो ऐसा लगा जैसे वह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वयं बिखर जायेंगे। एक अप्सरा ने आकर उन्हें सहारा दिया। एक कृत्रिम हँसी उन्होंने अधरों पर चिपका ली और बोल पड़े,—"इन्द्र में अभी पौरुष का अभाव नहीं है, वह किसी के सहारे की अपेक्षा नहीं करता।"

अप्सरा देवेन्द्र की भुजा छोड़ कर चुपचाप पीछे चली आयी। वे पुनः अपने स्वप्न की चर्चा करने लगे, "...मैं देख रहा हूँ कि मेरे अश्व उच्चैश्रवा पर शची सवार है और वह हँस रही है।...कितनी चुभती हुई भयानक हँसी है उसकी!"—वे कुछ रुककर सोचने लगे—"दुष्ट मातलि भी मुझ पर पत्थर फेंक रहा है।...नीच ...कृतघ्न... पापी।"—इन्द्र आवेश में थे।

"हे भगवान, क्या होने वाला है!" एक अप्सरा भयातुर हो बोल पड़ी।

"बड़ा अमंगल सूचक स्वप्न है।"—दूसरी ने कहा।

"अमंगल! अमंगल!! अमंगल!!! अरे अमंगल तो हमारे सिर पर मँडरा रहा है।"—वे जैसे खीझ उठे,—हम निरंतर असुरों से पराजित होते जा रहे हैं। लगता है, अब देवताओं का विनाश सन्निकट है।"—इन्द्र का अन्तर्मंथन अचानक छलक कर बाहर आया।

"यह क्या कह रहे हैं महाराज?"—अप्सराओं में से कई एक साथ बोल उठीं।

"मैं ठीक कह रहा हूँ, देवांगना!—अब देव सृष्टि अधिक दिनों तक टिक नहीं सकती। असुर हमसे प्रबल पड़ते जा रहे हैं।"—इतना कहते हुए पुष्करिणी के तट पर बने मणिजड़ित आसन से वे उठ खड़े हुए। उनके उत्तरीय का बाम पक्ष और नीचे लटक कर पुष्करिणी के जल का स्पर्श करता हुआ प्रमुदित कुमुदिनियों से उलझने लगा।

अप्सराएँ महाराज के पीछे खड़ी हो गयीं। इन्द्र का मस्तिष्क चकरा रहा था। व्यग्रता में वे पुनः टहलने लगे। इस बार उनकी गति पहले से तीव्र थी।

पारिजात के झुरमुट में बैठा कोई पक्षी मधुर स्वर में गा उठा, मानो वह महाराज की व्यग्रता को चिढ़ा रहा हो।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"किन्तु महाराज, असुर हम लोगों से किसी बात में श्रेष्ठ नहीं हैं, न बल में, न बुद्धि में और न विद्या में।"

देवाधिदेव कुछ समय तक शान्त थे। अन्तरिक्ष की ओर देखते हुए कुछ सोचते रहे, फिर बोले,—"नहीं देवि, ऐसा तो नहीं है। असुर सदा बल में हमसे बढ़-चढ़कर ही रहे हैं। अब विद्या में भी वे हमसे आगे हैं।"

"जब घड़ी अशुभ आती है, तब सारी बातें प्रतिकूल हो जाती हैं। आजकल अनिष्ठ नक्षत्र हम पर मँडरा रहे हैं। हमारे सारे प्रयत्न निष्फल होते जा रहे हैं।"—चिन्तन की गहरी रेखाएँ उभर आयी थीं उनकी आकृति पर।

"....तब हमें किसी और दधीचि को खोजना पड़ेगा।"—अप्सराओं में से एक बोली।

"....यहाँ वृत्रासुर के बध की समस्या नहीं है, वरन् देवताओं की रक्षा का प्रश्न है। देवत्व की अस्मिता का प्रश्न है।"

"अस्मिता हमारी सदैव बनी रहेगी।"—देवांगनाओं ने अपनी ध्वनि पर विश्वास आरोपित किया।... किन्तु इन्द्र उस विश्वास से बहुत दूर था। उसने निराशा में अपनी पिछली बात दुहरायी—"नक्षत्रों की गति हमारे अनुकूल नहीं है।"

"स्त्री की मनःस्थिति और पुरुष का भाग्य बदलते देर नहीं लगती महाराज!"—अनुभव से अधिक इठलाहट थी अप्सरा की वाणी में। उसने देवेन्द्र का मन हल्का करने के लिए ऐसा कहा था, किन्तु परिणाम उल्टा हुआ। वे सुनते ही झुँझला उठे।

व्यग्रता अपनी सीमा पर कुछ भी सुनना नहीं चाहती। वह मन और मस्तिष्क दोनों को अपने में उलझा लेती है। इन्द्र की ऐसी ही मानसिकता झुँझलाहट उगलने लगी,—"तुम लोग समझ नहीं सकती, बिल्कुल समझ नहीं सकती कि हमारी समस्या क्या है; हमारी परिस्थिति कितनी विषम है।"—इतना कहते हुए उनके सूखते गले में कोई वस्तु जैसे अटक-सी गयी। उन्होंने खाँसकर गला साफ किया। फिर बोले,—"जानती हो, असुरों के पास शुक्राचार्य हैं।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"हमारे पास भी तो वृहस्पति हैं।"

"किन्तु आचार्य वृहस्पति के पास वह वस्तु नहीं है, जो शुक्राचार्य के पास है।"

"वह क्या ?" —अप्सराओं का कुतूहल जागा।

"संजीवनी शक्ति।"—इन्द्र ने स्वयं अपने कथन की व्याख्या की,—"मरे हुए राक्षसों को शुक्राचार्य अपनी संजीवनी विद्या से जिला देते हैं।"—एक गम्भीर निश्वास छोड़ते हुए वे कहते गये।—"मृत होकर भी असुर अमर हो रहे हैं और हम अमृत पुत्र होकर भी निस्सहाय।"—हताशा की गहन छाया उस अन्धकार में भी उनकी आकृति पर उभरती ज्ञात हुई।

ब्राह्म मुहूर्त निकट था। शान्त सो रहे आकाश में तारे सुगबुगा रहे थे। पारिजात की भीनी-भीनी गन्ध नन्दन कानन में लगभग पसर गयी थी। चटकती कलियों से अठखेलियाँ करता मन्द समीरण बड़ी मादक गति से बह रहा था। फिर भी इन्द्र की व्याकुलता बढ़ती चली जा रही थी। अप्सराएँ सोच नहीं पा रही थीं कि वे क्या करें? एक टक मौन होकर देखना मात्र उनके वश में रह गया था।

व्यग्रता इन्द्र को टहला रही थी। कभी तीव्र, कभी मन्द। कभी वे जड़वत् खड़े हो जाते, अन्धकार में खोये क्षितिज की ओर देखने लगते। कभी-कभी उनका दाहिना हाथ मस्तक पर भी चला जाता था, मानो वे प्रस्वेद पोंछने की चेष्टा कर रहे हों।

अचानक वे आवेग में ही बोले—"जयन्त को बुलाओ।"

एक अप्सरा प्रासाद की ओर लपकी।

दक्षिण आकाश में कोई नक्षत्र अपनी ज्योति बिखेर कर पारिजात के पुष्प की भाँति चू पड़ा।

यज्ञशाला से शंख और पणव की ध्वनि फूटने लगी थी। उषाकाल का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मंत्रोच्चारण आरम्भ हो गया था। अग्निहोत्र अभी शुरू नहीं हुआ था, होने को था। तैयारियाँ चल रही थीं।

अप्सरा अन्तःपुर की ओर लपकी चली जा रही थी। अचानक उसे एक परिचारिका दिखायी दी। 'माधुरी'—उसने पुकारा।

माधुरी उलटती प्रत्यंचा की भाँति झटके से बलखाती खड़ी हो गयी : "महाराज कुमार जयन्त को स्मरण कर रहे हैं।"—अप्सरा ने कहा।

"किन्तु इस समय तो कुमार सो रहे हैं।"

"क्यों ? अभी तक जगे नहीं ?"

"कह तो रही हूँ कि अभी सो रहे हैं।"—माधुरी कुछ ऐंठकर बोली और बलखाती आगे निकल चली।

"बड़ी दुर्विनीत है। ठीक से उत्तर तक नहीं देती।"—अप्सरा अमर्ष में उबल पड़ी।

माधुरी कर्णचुम्बी नेत्रों से मुस्करायी और उस पर उपेक्षित वक्र दृष्टि डालती विचित्र ढंग से बढ़ गयी।

अप्सरा अन्तःपुर में पहुँची। कुमार के शयन कक्ष का द्वार खुला था। दूर से ही मालविका पंखा झलती दिखायी दे रही थी।

उसने धीरे से करतल ध्वनि की, जिससे वह मालविका को अपनी ओर आकृष्ट कर सके। हुआ भी ऐसा ही। वह अधरों पर अँगुली धरे चुप रहने का संकेत करती हुई कक्ष के बाहर निकल आयी।

"क्यों, कुमार सो रहे हैं क्या ?"

"जी, हाँ।"

"स्वास्थ्य तो ठीक है न ?"

"हाँ, ठीक ही है।... किन्तु बहुत देर रात गये, वह सो सके हैं... और वह भी जब माधुरी ने कादम्बरी के कई चषक पिला दिये तब !"

"क्यों ? प्रमदा-प्रमोद में उलझे रहे ?"—अप्सरा मुस्करायी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"नहीं। वे कुछ चिन्तित दिखाई दे रहे थे।....बार-बार युद्ध की बातें करते रहे।"—मालविका ने कहा। अप्सरा कुछ सोचने लगी। कुछ मूक क्षण सरकते चले गये। प्रकोष्ठ से आते दीपशिखा के मद्धिम प्रकाश में मालविका ने देखा कि अप्सरा की मुख मुद्रा बदल रही है।—"अच्छा, तो आजकल कुमार की सेवा में माधुरी है।"—अप्सरा ने पूछा।

"जी हाँ।"—मालविका हँस पड़ी। शीघ्र ही उसकी हँसी रहस्यमय मुस्कराहट म सिमटने लगी।

"तभी आजकल उसके पग धरती पर नहीं पड़ते।....लगता है उसने अभी से ही छान ली है।"

"क्यों? छानने की क्या आवश्यकता? क्या यौवन के ज्वार में कादम्बरी से कम मादकता होती है?"—मालविका पुनः मुस्करायी।

"किन्तु देवि, उमड़ते यौवन और ज्वार के समुद्र ने कब अपनी मर्याद का ध्यान रखा है?"—मालविका का उन्मुक्त हास अप्सरा के अधरों का स्पर्श करता हुआ निकल गया। उसकी आकृति का तनाव कुछ शिथिल पड़ा। मालविका ने बात आगे बढ़ायी—

"इस समय कुमार को जगाना तो ठीक नहीं लगता, किन्तु ज्योंही उनकी नींद टूटेगी, मैं आपका सन्देश कहूँगी।"—सोचित अभिवादन के बाद मालविका कक्ष में जाकर सोते हुए कुमार को पंखा झलने लगी।

अप्सरा उद्यान की पुष्कारिणी की ओर लौट पड़ी थी। उसने शची को यज्ञशाला की ओर जाते देखा। उनके पीछे अन्य परिचारिकाएँ भी थीं। पट्ट-महिषी के आगे एक ब्रह्मचारी पूजन का स्वर्ण थाल लिए चल रहा था। उसके भी आगे मधुर मन्द स्वर में रजत घंटिका बजाता एक और परिचर था। घंटिका ध्वनि महारानी के आगमन के प्रति सावधान कर रही थी। लोग मस्तक झुकाते हुए अगल-बगल हटते जा रहे थे।

महारानी की आकृति पर जागरण का नव उल्लास था। उनके गौर वर्ण से लिपटा पीताम्बर कौमुदी की दुग्ध धवलता से निर्मित किसी पुत्तलिका को स्वर्ण पत्रों में समेटे था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अप्सरा ने देखा, महारानी यज्ञशाला की सीढ़ियाँ चढ़ रही हैं। "क्या मैं उन्हें महाराज की मनःस्थिति का परिचय कराऊँ ?... पर यह तो मुझसे कहा नहीं गया है। मैं महाराज के आदेश की सीमा से परे क्यों होऊँ ? चलकर सीधे-सीधे उन्हीं से कह दूँ कि राजकुमार अभी सो रहे हैं।"—लगभग इसी निष्कर्ष के साथ अप्सरा आगे बढ़ी।

दो ही चार डग जाने के बाद उसके चरण जैसे रुक-से गये। वह मानसिक दुविधा की स्थिति में दिखायी दी।' एक क्षण के लिए रुकी और फिर सोचती हुई यज्ञशाला की ओर लौट पड़ी।

"महारानी की जय हो।.... इस सेविका का अभिवादन स्वीकार हो।"—अप्सरा विनत भाव से झुकते हुए बोली।

पार्श्व से आती इस अप्रत्याशित ध्वनि के कारण महारानी एकदम मुड़ीं और प्रश्नवाचक मुद्रा में हो गयीं। अप्सरा ने कम शब्दों और अधिक संकेतों से महाराज की मनःस्थिति से उन्हें अवगत कराया। वह व्यग्र हो उठीं। गंगा की धारा-सा निनादित यज्ञशाला का पवित्र वातावरण एकदम गम्भीर हो गया।

"तो राजकुमार अभी सो रहा है ?"—महारानी ने कुछ सोचते हुए कहा।

"जी हाँ, उन्हें रात्रि में बहुत देर बाद नींद आयी है। लगता है, वे युद्ध के सम्बन्ध में ही चिन्तित थे।"

"अच्छा।"—उनकी गम्भीरता बढ़ती गयी। वह अपना हाथ मलती रहीं। अधर हिले नहीं, पर लगा वह कुछ बोल रही हैं।

एक क्षण में निर्णय लिया। उन्होंने यज्ञ कुण्ड को प्रणाम किया और उद्यान की ओर चल पड़ीं। अप्सरा उनके पीछे छाया की तरह हो चली। कोई और परिचारिका साथ नहीं थी।

उषा की प्रथम अरुणिमा ने आकाश का स्पर्श कर लिया था।

शची ने दूर से ही देखा, महाराज अकेले अशोक के नीचे स्फटिक शिला

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर बैठे हैं। उनके चरणों के निकट ही सोमपान का स्वर्णचषक ढुलका पड़ा है। अपनी गति की चरम सीमा पर चलित चक्र की भाँति वे नितान्त स्थिर दिखाई दे रहे थे। परिचारिकाएँ उनके पीछे कुछ दूरी पर मूर्तिवत् खड़ी थीं।

महाराज की दृष्टि पहले शची पर नहीं पड़ीं, पर उन्हें किसी का आभास हुआ। उन्होंने पीछे मुड़कर देखा, अप्सरा मौन खड़ी थी। "क्यों, जयन्त आया ?"—अप्सरा ने बिना कुछ कहे शची की ओर संकेत किया।

"... तो क्या यही जयन्त है ?"—महाराज की वाणी में व्यग्रता मिश्रित व्यंग्य था। उनके अधरों के बीच एक सचेष्ट मुस्कराहट की चमक उभरी थी। पर महारानी गम्भीर बनी रहीं। उन्होंने उसी गम्भीरता में उत्तर दिया, "जयन्त अभी सो रहा है।....मैंने सोचा, क्या बात है ?... स्वयं चली आयी।"

"किन्तु यह समय सोने का नहीं है पट्टमहिषी ! देवताओं को जागना चाहिए। अपने भविष्य की चिन्ता करनी चाहिए।"—इसके आगे वह कुछ और भी कहना चाहते थे, पर चुप हो गये।

"विलम्ब से ही नींद आने के कारण वह अभी सो रहा है। जागते ही आपकी सेवा में उपस्थित हो जायेगा।"—शची ने पूर्व कथन दुहराया।

देवाधिदेव मौन थे। कोई किसी से बोल नहीं रहा था। इस घुटन भरी चुप्पी का हर क्षण विलक्षण था। धरती पर गड़ी सबकी निगाहें जैसे कुछ खोज रही थीं।

मौन भंग किया शची ने ही। उन्होंने महाराज का ध्यान यज्ञशाला की ओर आकृष्ट करते हुए कहा—"महाराज, यज्ञकुण्ड आपके हवि की प्रतीक्षा कर रहा है।"

"क्यों, अभी अग्निहोत्र समाप्त नहीं हुआ ?"

"जबतक आपके कर से हवि नहीं पड़ेगी, तबतक कैसे हो सकता है, महाराज ?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"किन्तु अब मैं हवि नहीं दूँगा। होताओं से कहो अब मैं अग्निहोत्र से वंचित रहूँगा। मेरे सारे कर्मकाण्ड आज से समाप्त कर दिये जायें। अब मेरी मन्त्रों से आस्था जाती रही। ऋषियों से कहो कि इन्द्र कर्मच्युत हो गया। देवताओं से कहो कि अब इन्द्र तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकता। वरुण, कुवेर, यम, सोम, आदित्य, प्रजापति से कहो कि अब तुम असुरों की शरण में जाओ। उनका यशगान करो। उनकी कृपा के पात्र बनो। अब इन्द्र तुम्हारा अधिष्ठाता नहीं है। अब तो उसका पराक्रम, उसका शौर्य, उसकी कीर्ति, उसकी तपस्या—सबका क्षय हो चुका है।....इन्द्र अब केवल मरणधर्मा जीवमात्र है।"—देवाधिदेव इस समय अत्यधिक आवेग में थे।

शची स्तब्ध हो गयी। अपने प्रियतम की ऐसी व्यग्रता उसने कभी नहीं देखी थी। वह चुपचाप महाराज के बामपार्श्व की ओर उसी स्फटिक शिला पर बैठ गयी। उसने परिचारिकाओं को निकट बुलाकर कुछ अस्फुट वाणी में कहा—'जाओ, अग्निशाला में कहो, महाराज आज कुछ अस्वस्थ हैं। प्रधान पुरोधा की हवि से ही अग्निहोत्र समाप्त कर दिया जाय।"

परिचारिकाओं में से दो तुरन्त अग्निशाला की ओर बढ़ीं। शेष पीछे हट कर चुपचाप महाराज को निहारती रहीं।

महाराज की व्याकुलता दाहिने पदत्राण के अग्रभाग से धरती पर कुछ अस्पष्ट आकृतियाँ बना रही थी। इस प्रकार अनेक मूक क्षण एक के बाद एक निकलते चले गये। फिर शची ने बड़ी आत्मीयता से कहा,—"महाराज, सोम ग्रहण करेंगे।"

"··· नहीं, नहीं। आज मेरी अशान्ति सोम की परिधि से बाहर निकल गयी है।"—व्यग्रता में भी उन्होंने मुस्कराने की असफल चेष्टा की। शीघ्र ही उनकी व्याकुलता एक बार फिर छलक पड़ी—"मेरे सम्मुख प्रत्येक मार्ग अवरुद्ध दिखायी देता है, शची। मैं इस समय उत्ताल तरंगाघातों में पड़ी एक नौका के समान हूँ।"—इतना कहते-कहते इन्द्र व्याकुलता के अतिरेक में खड़े हो गये और निरुद्देश्य टहलते हुए कुछ बड़बड़ाने-से लगे।—"····शुक्राचार्य ··? मैं क्या करूँ? असुर गुरु को संजीवनी विद्या का बल है। वह मरे हुए राक्षसों को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तुरन्त जिला देता है।....फिर हम क्या कर सकते हैं? हमारी शक्ति व्यर्थ है।... देवताओं का अब कल्याण सम्भव नहीं।"—महाराज बड़बड़ाते रहे। उनके मस्तक की रेखाएँ गम्भीर होती गयीं।

अब वे धीरे-धीरे पुष्करिणी के निकट आ गये थे। उनकी दृष्टि नव प्रफुल्लित कमलों पर पड़ी। कुछ वायु के झोकों से और कुछ भ्रमरों के स्पर्श से वे बड़ी मस्ती से झूम रहे थे। सूर्य की रश्मियाँ पुष्करिणी के चारों ओर मण्डित स्वर्ण की आभा को जल में बिखेर रही थीं। यह सौन्दर्य भले ही औरों के लिए लुभावना रहा हो, किन्तु इसका बिम्ब महाराज के अस्थिर मन पर बड़ा ही भयावह पड़ रहा था। वे एकदम सिहर से उठे। उन्हें लगा सम्पूर्ण पुष्करिणी में आग लग गयी है। पुष्प झुँलस रहे हैं। भ्रमर पीड़ा से कराह रहे हैं। उनके मुख से निकल पड़ा,—"अरे, यह तो सारा कमल ही जल जायेगा।"

शची ने तुरन्त समझ लिया कि पतिदेव की व्यग्रता अब विक्षिप्तता की ओर बढ़ रही है। वह उन्हें बाहों का सहारा देकर शरद् प्रकोष्ठ की ओर ले चलीं।

नन्दन कानन में उत्तर पश्चिम के कोण में शरद् प्रकोष्ठ है। अत्यन्त मनोरम है। इसके वाम भाग में कृत्रिम धवल पर्वतमाला है, जिससे निरन्तर निर्झरणी झरती रहती है। इसी प्रकोष्ठ के दक्षिण भाग में एक विशाल जलाशय है। निर्झरिणी का सारा जल इसी जलाशय में संग्रहीत होता है और यहाँ से उद्यान के अन्य भागों में जाता है।

जलाशय में श्वेत कमल हैं और हैं राजहंसों के अनेक जोड़े। निर्झरिणी का सतत् कल-कल निनाद, जल की शीतलता और सम्पूर्ण वातावरण की धवलता ने ही इसे शरद् प्रकोष्ठ की संज्ञा दे दी है। रात्रि की स्निग्ध ज्योत्सना में दुग्ध स्नात सम्पूर्ण प्रकृति रजतवर्णी हो जाती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकोष्ठ के अन्तरंग में भी धवलता एवं शीतलता का पूरा ध्यान रखा गया है।

भीतर प्रविष्ट होते ही देवाधिदेव मणिमण्डित गद्देदार विशाल मंचक पर ढुलक गये। सम्मुख के वातायन के ऊपरी भाग में जड़ी-मणियों से टकराकर सूर्य की रश्मियाँ इन्द्रधनुषी आभा बिखेर रही थीं।

शची चिन्तित मुद्रा में पग की ओर बैठ गयीं और परिचारिकाएँ विजन झलने लगीं।

इसी बीच जयन्त भी घबराया हुआ आया। उसे पहले से ही आज की परिस्थिति का ज्ञान हो चुका था। आते ही उसने पहले पिता जी का और फिर माता का चरणस्पर्श किया। पुनः वह मंचक के पैताने चुपचाप खड़ा हो गया।

"कुमार, आज बहुत पहले से ही मैं तुम्हें बुला रहा था।····तुमसे कुछ मन्त्रणा करना चाहता था।"—उनकी दृष्टि जयन्त की ओर से हटकर गवाक्ष की ओर गयी। लगा, जैसे वह पुनः कुछ सोचने लगे हैं।

"विलम्ब के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ, महाराज।····महाराज कौन····?"—वह कुछ पूछते-पूछते महाराज की मुद्रा देखकर एकदम रुक गया।

शची ने मंचक के बगल में रखे सिंहासन की ओर संकेत किया। जयन्त सरक कर उस पर आसीन हुआ।

"युद्ध की स्थिति से तो तुम परिचित ही होगे, जयन्त। लगता है इस बार असुरों की ही विजय होगीं।"—इन्द्र का टूटा स्वर और अधिक लड़-खड़ाने लगा।

"हाँ महाराज, हमारा पराक्रम सार्थक होता दीख नहीं पड़ता।" जयन्त ने पिता की निराशा पर एक परत और चढ़ायी।"

"किन्तु हमें करना क्या चाहिए?"

"यही तो समझ नहीं पा रहा हूँ तात!"—इस समस्या का समाधान खोजने के लिए क्यों नहीं मंत्रिपरिषद को बुलाया जाय।"—जयन्त ने कहा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"मन्त्रिपरिषद को बुलाने के पहले यह आवश्यक है कि किसी निष्कर्ष पर पहुँच जाऊँ।"

"किन्तु तात, मंत्रिपरिषद आहूत करने की सलाह तो मैं किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए ही दे रहा हूँ।"

महाराज हँसे, —"जयन्त ! तू सचमुच बड़ा भोला है। तुझे शासन का अनुभव नहीं। किसी समस्या के समाधान की स्पष्ट रूपरेखा बनाये बिना मंत्रिपरिषद् का आह्वान करने का तात्पर्य है, मंत्रियों के समक्ष विचारहीन असहायों की भाँति उपस्थित हो जाना। जानते हो ऐसी स्थिति का क्या परिणाम होगा ?"

'...............'

"लोग समझेंगे कि इन्द्र शक्ति शून्य होने के साथ-साथ विचार शून्य भी हो गया है। मंत्रिपरिषद ऐसे इन्द्र को कब तक स्वीकार करेगी।···· ·· समझते हो, राजा की निष्कर्ष बुद्धि ही मंत्रिपरिषद के विचार का आधार होती है।···· मंत्रिपरिषद का सूत्रधार मैं हूँ; जब मुझे ही दिग्भ्रम होगा, तब भला मंत्रिपरिषद की नौका किस घाट लगेगी ?"

"जब आपको ही समस्या का समाधान ढूढ़ना है, तब मंत्रिपरिषद् का क्या महत्व ?"——इस बार शची बोली।

"नहीं; इसका तात्पर्य यह नहीं है। समस्या का समाधान मैं भले ही न ढूढ़ूँ, पर समाधान के लिए दिशा तो मुझे ही देनी होगी। मैं नेता हूँ। मंत्रिपरिषद् पर नेतृत्व मैं करूँगा, न कि मुझपर मंत्रिपरिषद् नेतृत्व करेगी।"

"जैसा आप सोचें, पर कोई बात मेरी समझ में नहीं आयी।"—शची ने कहा।

"तुम और राजनीति, हाँ··· हाँ··· हाँ।"—महाराज जोर से हँसे।— "नारी के लिए राजनीति बौने के लिए चन्द्रमा है।"

सम्पूर्ण नारी जाति पर किया गया यह व्यंग्य यद्यपि शची को अच्छा नहीं लगा। असामान्य स्थिति न होती तो वह अवश्य इसका उत्तर देती; किन्तु

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसने देखा कि इतने लम्बे घुटन में महाराज पहली बार हँसे हैं। व्यग्रता के मरु में उद्यान लहराया है। वह इस हरियाली पर तुषारापात के पक्ष में नहीं थीं। अतएव चुप थीं। महाराज कुछ प्रकृतिस्थ होते दिखायी दिये।

कुछ ऐसा यत्न करना चाहिए कि युद्ध कुछ दिनों के लिए टल जाए।"—वातों का क्रम नये सिरे से जयन्त ने आरम्भ किया।

"मैं भी ऐसा ही सोचता हूँ।"—इन्द्र वोले।

"तो महामात्य को बुलाऊँ ?"

"क्यों इसमें महामात्य क्या करेंगे ?"

"वह भी अपनी राय देंगे।"—वोलने की इच्छा न होते हुए भी शची के मुख से निकल पड़ा।

महाराज पुनः हँस पड़े। उन्होंने कुछ गम्भीर होकर कहा,—"तुम परिस्थिति को समझ नहीं पा रही हो शची। नीति तो यह कहती है कि हमें अपनी इस असहाय स्थिति को छिपाना चाहिए। जानती हो, मेरी व्यग्रता और असफलता की जरा सी भी गन्ध अगर दूसरों को मिल जायेगी तो क्या होगा ?"

महाराज का प्रश्न भी स्वयं उत्तर देने के लिए था। वे वोलते रहे,—"... देवता और अधिक व्यग्र हो जायेंगे। सम्पूर्ण देव सृष्टि में आतंक छा जायेगा।... असुर फूले नहीं समायेंगे। उनकी शक्ति द्विगुणित हो जाएगी।... और तब हमारी पराजय और अधिक निकट होगी। अभी तो स्थिति अधिक खराव नहीं है। उसे संभाला जा सकता है।"—इन्द्र की मानसिक स्थिति पहले से अधिक सामान्य लग रही थी।

...."किन्तु महाराज आपकी व्यग्रता का ज्ञान प्रासाद के लगभग सभी को हो गया है। आज आपने यज्ञ में अपनी हवि नहीं दी। प्रधान पुरोहित भी आपकी असंतुलित मानसिक स्थिति से अवगत हैं। प्रहरी, प्रतिहारी, परिचारिकाएँ—आदि वहुत कुछ समझ गये हैं, महाराज।"—शची ने बताया।

"हाँ महाराज, नींद खुलते ही मालविका ने सारी बातें मुझे बता दी और माधुरी ने तो आपके स्वप्न की भी चर्चा की।"—जयन्त बोला।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इन्द्र गम्भीर हो सोचते रहे। धधकती हुई व्यग्रता और ज्वाला जितनी दबायी जाती है उतनी ही उफनती है, तो क्यों नहीं उसका स्वयं उद्घाटन कर दिया जाय, किन्तु सबके सामने नहीं, वरन् मंत्रिपरिषद के समक्ष।

दिन ढलते-ढलते लगभग सभी 'सुधर्मा' में उपस्थित हो चले थे। सुधर्मा इन्द्र के मन्त्रणा कक्ष का नाम है। महाराज ने आते ही बिना किसी औपचारिकता के अपना व्यग्रता भरा भाषण आरम्भ किया,—पारिषदों, मैंने मन्त्रिपरिषद् की आपात बैठक वड़ी विषम स्थिति में बुलायी है।·· लगता है इस बार हम असुरों को पराजित कर नहीं पायेंगे। हमारा सारा युद्ध कौशल निरर्थक होता जा रहा है। हम विनाश के कगार पर खड़े हैं। जैसे डूबता हुँआ व्यक्ति अपनी सहायता के लिए चीखता—चिल्लाता है, अपने स्वजनों को बुलाता है। ठीक वैसी ही मन:स्थिति में मैंने आप लोगों को आमन्त्रित किया है।

"आप डूबेंगे तो क्या हम बचायेंगे?"—प्रजापति ने कहा।

"हम सब एक ही कर्म की डोर से बँधे हैं, महाराज। डूबेंगे तो सब साथ ही डूबेंगे।"—यह आवाज वरुण की थी।

"हमारे डूबने का तात्पर्य है, देव सृष्टि का डूबना।"—इन्द्र अपनी बात पूरी करें इसके पूर्व ही विश्वास से बोझिल एक गम्भीर नारी स्वर उस हताश वातारण में तैर गया,—"··· किन्तु देव सृष्टि कभी नहीं डूबेगी।····वह अमर है, अमर रहेगी।"—इन्द्र ने मुड़कर देखा सुधर्मा के पिछले द्वार से शची चली आ रही थी।

सभी पारिषद् उसकी आवाज सुनकर ही खड़े हो गये। यह निश्चित था कि यदि कोई और अवसर होता तो शची कभी मंत्रिपरिषद् की बैठक में अनाहूत उपस्थित न होती, पर इस समय महाराज की व्यग्रता उसे खींच लायी थी। चक्रवात में फँसी तरणी को तट की ओर खींचते हुँये उसने बड़े विश्वास से कहा,—"आखिर इस पराजय में हम देवताओं का क्या दोष?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"तब इसमें किसका दोष कहा जायेगा ?"—इन्द्र मुस्कराये,—"सफलता का श्रेय भले ही औरों को बाँट दिया जाय, पर किसी कर्म की असफलता का श्रेय कर्मी के पल्ले ही पड़ता है, शची।"—महाराज के नेत्रों की नीलम-घाटी अनुभव से चमक उठी।

शची चुप होने नहीं आयी थी, उसने नितान्त सामान्य भाव से, पर बड़े दृढ़ स्वर में कहा,—"किन्तु इस पराजय का अपयश देवों के मत्थे नहीं वरन् उनके गुरु वृहस्पति के मत्थे जायेगा।"—सुधर्मा अवाक् हो शची को सुनती रही,—"हमारा मनोबल भले ही कुछ टूटा हो, पर हमारे सैनिकों का मनोबल आज भी ऊँचा है। उनका पराक्रम आज भी असुरों से कहीं अधिक है। देवों के शौर्य की दुन्दुभि आज भी रणक्षेत्र में बजती है।... किन्तु मरे असुरों को जब उनके गुरु शुक्राचार्य अपनी संजीवनी विद्या से जिला देते हैं तब देवता क्या कर सकते हैं ?"

"देवता कर भले ही कुछ न सकें, पर नष्ट तो हो सकते हैं।"—निराशा से उबरता हुआ इन्द्र पुनः उसमें डूबने लगा। बात चारो ओर उड़ती हुई जहाज के पक्षी की भाँति फिर जहाज पर आ गयी।

शची का तर्क था कि यह देवगुरु की पराजय है, उनकी विद्या को चुनौती दी गयी है। इस सन्दर्भ में उन्हें सोचना और मार्ग ढूँढ़ना चाहिए। इन्द्र का कहना था कि भले ही यह गुरु विद्या की पराजय हो, पर इससे हम प्रभावित हैं। हमें स्वयं कोई रास्ता निकालना चाहिए।

"तब क्यों नहीं, हम सब मिलकर शुक्राचार्य से आग्रह करें कि वे हमारा शिष्यत्व स्वीकार करें ?"—सविता ने कहा।

इन्द्र के शुष्क अधरों पर एक संक्षिप्त हंसी उभरी,—"आप क्या समझते हैं, वे हमें अपना शिष्य स्वीकार कर लेंगे।"—क्षण भर के अन्तराल के बाद उनकी निराशा और गाढ़ी हो शब्दों में टपक पड़ी—"पराजित का मित्र होना भी लोग स्वीकार नहीं करते सविता, गुरु होना तो दूर की बात है।"

"...फिर भला वे असुरों को छोड़ेंगे क्यों ?"—प्रजापति ने देवाधिदेव के स्वर में स्वर मिलाया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"पल भर के लिए, मान लीजिये, वे असुरों को छोड़ भी दें, हमें स्वीकार भी कर लें, पर इतिहास क्या कहेगा ?···कि देवताओं ने पराजय का मुख देखने से अपने गुरु को ही छोड़ देना अच्छा समझा।"—इन्द्र बोले।

"हमारे इतिहास का अस्तित्व हमारे अस्तित्व पर है देव। जब हमीं नहीं, तब हमारा इतिहास क्या ?"––वरुण ने अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए इन्द्र के आदर्श को नकारा। सुधर्मा कुछ क्षणों के लिए एक उदास मौन में डूब गयी। किसी किनारे लगाने के प्रयास में उसका हर पारिषद अपने भीतर ही हाथ पैर मारता रह गया।

"एक बात हो सकती है ?"—डूबते प्रजापति के हाथ में जैसे तट की रेत आ गयी। वह अचानक बोल पड़ा।

"क्या ?"—सबकी दृष्टि प्रजापति की ओर खिंची।

"क्यों नहीं, हम सब मिलकर एक अप्रत्याशित आक्रमण असुराचार्य की कुटिया पर करें और पल भर में उनका वध कर डालें। न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी।···· उन्होंने अपनी संजीवनी विद्या अभी किसी को सिखायी नहीं है। शुक्राचार्य के साथ ही उनकी यह संजीवनी विद्या भी समाप्त हो जायेगी।"—प्रजापति के इस कुटिल विचार से कुछ ही लोग आशान्वित हुए। कुछ के मुख पर अब भी मौन चिपका रह गया।

"आचार्य की हत्या ?"—इन्द्र की आकृति पर घृणा और आश्चर्य दोनों के रंग उभरे। "आचार्य अवध्य होता है प्रजापति।····ऐसा जघन्य विचार तुम्हारे मन में आया कैसे ?"···· जो जाति आचार्य के वध की कल्पना कर सकती हो, उसका विनाश अवश्य सम्भावी है।"—व्यग्रता की झंझा में उड़ते हुए भी इन्द्र अपने आदर्श की डोर छोड़ने के पक्ष में नहीं थे।

सुधर्मा पर एक बार फिर पाला मार गया। सभी मौन रह गये, किन्तु शची प्रजापति के पक्ष में अब भी मुखरित थी,—"यहाँ देव सृष्टि के अस्तित्व का प्रश्न है नाथ ?"

"···और यहाँ देवादर्श के अस्तित्व का प्रश्न है देवि !"—इन्द्र बोलते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रहे,—एक ओर देव सृष्टि है, दूसरी ओर देव आदर्श।·· फसल नष्ट होने पर भी उसके कुछ बीज धरती अपने में छिपाकर रख लेती है। अनुकूल वातावरण में वह पुनः अंकुरित होने लगते हैं। वैसे ही हमारे विनाश के बाद भी हमारे बीज को काल शक्ति अपने आँचल में छिपाकर रख लेगी।····और देव सृष्टि कभी न कभी पुनः पल्लवित हो जायेगी, पर यदि देवताओं का आदर्श नष्ट हो गया, तो कोई भी शक्ति उसे पुनर्जीवित नहीं कर सकती।''—शची की ओर से उन्होंने पुनः प्रजापति की ओर दृष्टि घुमायी,—''प्रजापति! इसे अच्छी तरह समझ लो कि नखदंतहीन होकर भी सिंह रह सकता है, विषहीन होने पर भी सर्प रह सकता है, पर आदर्शहीन होने पर देव सृष्टि नहीं रह सकती।''

''अब शुक्राचार्य का वध हमारे आदर्श के अनुकूल नहीं है, तब इस देव सृष्टि को नष्ट ही हो जाने दीजिए।''—सविता के स्वर में आक्रोश था।

सदन की डाँवाडोल स्थिति को वरुण ने सँभाला,—''यह समस्या न तो हमारे शौर्य से सम्बन्धित है और न रणनीति से; और न इसका सम्बन्ध हमारी भवितव्यता से ही है!··· यह समस्या तो मुख्य रूप से हमारे गुरु की, या यों कहिए उनके ज्ञान की समस्या है।····तब इसमें व्यर्थ हमें मस्तिष्क मारने से क्या लाभ? इसे पूर्णरूप से अपने गुरुदेव पर ही छोड़ देनी चाहिए।''

समस्या का समाधान न निकल पाने पर भी कुछ समय के लिए टल गयी। निश्चय हुआ कि आचार्य वृहस्पति से कहा जाय कि देवताओं की पराजय आपकी पराजय है। इस बार यह युद्ध देवताओं और असुरों के बीच नहीं है, वरन् मुख्य रूप से आप और शुक्राचार्य के बीच है। शुक्राचार्य अपनी संजीवनी विद्या का खुलकर प्रयोग कर रहे हैं····और आपके पास वह विद्या नहीं है।''

मंत्रिपरिषद का निष्कर्ष सर्वसम्मत था, पर देवाचार्य से यह कहा कैसे जाय?····और कौन कहे?····क्यों नहीं उन्हें इस समय बुला लिया जाय?''

''जब उन्हें मंत्रिपरिषद में विशेष आमंत्रित नहीं किया गया तब उन्हें इस समय बुलाना उनके सम्मान के अनुकूल नहीं है।''—इन्द्र ने कहा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सम्भवतः सविता कुछ कहना ही चाहता था। इन्द्र ने उसे देख लिया और बोल पड़े,—"वे हमारे चाकर तो हैं नहीं कि उन्हें मंत्रिपरिषद में जब चाहे तब बुला लिया जाय।… अरे, आचार्य की एक मर्यादा होती है।"

अन्ततः यही निश्चय रहा कि महाराज जब भी उचित समझें गुरुदेव को मंत्रिपरिषद के विचार से अवगत करायें।

महाराज की व्यग्रता महाराज को ही सौंपते हुए बैठक समाप्त हुई। पारिषद जब सुधर्मा से निकले पूर्णिमा का चन्द्र नभ में विहँस रहा था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

□□□

जयन्त जब अश्व से उतरा तब उसने देखा आचार्य पुत्र कच स्नान कर चला आ रहा है। उसके दाहिने हाथ में कमण्डलु और बाँयें की बगल में मृग चर्म है। मात्र अधोवस्त्र से परिवेष्ठित, उत्तरीय विहीन उसके उन्मुक्त तन पर उषा की आभा और अधिक भभक रही थी। उसकी सुगठित शरीर यष्टि राजभवनों की सुख-सुविधाओं को चुनौती देती हुई, मानो उद्घोषणा कर रही थी कि तपस्चर्या में निर्मित जीवन लौह से पुष्ट और स्वर्ण से प्रदीप्त होता है।

जयन्त को देखते ही वह मुस्कराया। सम्भवतः यही उसका अभिवादन था। जयन्त ने झुक कर प्रणाम किया। वह निकट आता गया। उसके अधरों से प्रस्फुटित ध्वनि धीरे-धीरे स्पष्ट होती गयी।

निकट आने के बाद भी वह सूर्य आराधना के मन्त्र दुहराता रहा और भगवान भास्कर को करबद्ध मौन प्रणाम करने के बाद बोला,—"कहो राजकुमार, आज सवेरे-सवेरे कैसे चले ?"

आचार्य से मिलने आया हूँ।"—जयन्त ने कहा।

"क्यों, उन्होंने बुलाया था ?"

"जी नहीं, मैं उन्हें स्वयं बुलाने आया हूँ।"

"बुलाने आये हो ?"—कच ने आश्चर्य से जयन्त को देखा,—"क्या बात है ?"

"........महाराज ने उन्हें बुलाया है।"—जयन्त का उत्तर अत्यन्त संक्षिप्त था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"तो राजाज्ञा लेकर आये हो ?"—कच मुस्कराया और स्वाभिमान से बोला,—"जानते हो राजकुमार ? आचार्य के आश्रम में राजाज्ञा प्रवेश नहीं कर सकती ।"

जयन्त की मुद्रा अचानक बदली । स्पष्ट लगा जैसे उससे कोई भूल हो गयी है । "क्षमा कीजिए । तात ने आचार्य को स्मरण किया है ।"

कच हँस पड़ा । उसके उन्मुक्त हास में जयन्त की सलज्ज मुस्कराहट उड़-सी गयी ।

कुटी के बाहर ही एक मंचक पर उसे बैठाकर कच भीतर गया । जयन्त आश्रमपालित मृग शावकों का कल्लोल देखता रहा । अचानक उससे एक नारी स्वर टकराया,—'जीवेत शरद् शतम् ।' उसने मुड़कर देखा, आचार्य पत्नी तारा आशीर्वाद दे रही थीं ।

जयन्त ने झुककर उनके चरणस्पर्श किये । अपने हाथ के मृण्पात्र में रखे नवनीत को जयन्त की ओर बढ़ाते हुए तारा बोली,—"इसे ग्रहण करो राजकुमार ।"—उसके कथन में वात्सल्य का ममत्व और मिठास थी ।

जयन्त नवनीत ग्रहण करने लगा । तारा वहीं बैठ गयी । बात आरम्भ करते हुए वह बोली, —"स्वस्थ तो हो राजकुमार ? आज तुम्हारी आँखों में अरुणिमा है ।"

"नहीं, कोई विशेष बात नहीं है । रात को कुछ कम सो पाया हूँ ।"—जयन्त बड़े सामान्य भाव से बोला ।

"क्यों ?"—वह मुस्करायी,—"राजमहलों में भी अब नींद कम आती है ।"

"नींद कम ही नहीं आती माता जी, यों कहिए राजभवन कभी-कभी जागता ही रह जाता है ।"—जयन्त की गम्भीरता तारा की मुस्कराहट से अछूती रह गयी ।

यों बातें तो जयन्त ने कम कीं, पर उसने प्रासाद की व्यग्रता का आभास उन्हें करा दिया । यह अनुभव कर कि अभी आचार्य का अग्निहोत्र शेष है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समय अधिक लग सकता है जयन्त ने अपनी इस छोटी-सी भेंट का उपसंहार किया और तारा से कहा,--"आचार्य जी को पूजन समाप्त कर लेने दीजिए तब उनसे कहिएगा कि महाराज ने साग्रह आपको स्मरण किया है। यदि आचार्य किसी कारणवश न पधार सकेंगे, तो महाराज स्वयं सूर्यास्त के पूर्व यहाँ उपस्थित होंगे।"

तारा का चरण स्पर्श कर जयन्त लौट पड़ा। उसका अहं आचार्य के महत्व को प्रासाद के ऊपर स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था। कदाचित् इसलिए वह आश्रम में घुटन का अनुभव कर रहा था। उसका मन बार-बार उससे पूछ रहा था,--"यह कच क्या कहता है? हमारी ही वृत्ति पर जीवित रहने वाले इन आश्रमों में हमारी आज्ञा प्रवेश नहीं पा सकती है। यह कैसी विडम्बना है?

"यह विडम्बना नहीं, वरन् सामाजिक व्यवस्था है।·· यह व्यवस्था है जिस पर तुम्हारा देवत्व टिका है, जिस पर तुम्हारा राजत्व टिका है।··· इन आश्रमों की स्वायत्तता को मत छेड़ना अन्यथा यह भभक उठेंगे,···और उन लपटों के घेरों में तुम्हारा प्रासाद भी आ जायेगा।"—पर यह आवाज किसकी है? कहाँ से आयी है? कौन मुझसे कह रहा है?—एक साथ इतने प्रश्न हवा में उछल पड़े। किन्तु किसी का भी समाधान जयन्त खोज नहीं पाया। उसका अश्व अरण्य पथ से होता चला जा रहा था। दम तोड़ते सर्प-सी पड़ी पगडण्डी उस निर्जन में साँय-साय कर रही थी। उसे अनुभव हुआ जैसे मेरा अन्तर्द्वन्द्व अब बाहर आ गया है। वह क्षणभर के लिए अश्व रोक धरती पर कूद पड़ा।

सामने नील मृगों का झुण्ड भागा चला जा रहा था। इतने सारे नील मृग! यदि कोई और स्थिति होती तो वह निश्चित ही आखेट में लग जाता, पर इस समय मात्र आँखें उलझ कर रह गयीं। मन कहीं और उलझा, आँखें कहीं और।··· तब भला तन कर्त्तव्य शून्य हो जाये तो आश्चर्य क्या?

इसी समय बैलगाड़ियों का एक समूह पश्चिम से आता दिखाई दिया। वह ध्यान से देखने लगा। स्पष्ट था कि ये गाड़ियाँ दूर से आ रही हैं। कुछ सोचकर जयन्त घोड़े पर चढ़ा और उस ओर बढ़ा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"रोक दो, इन वाहनों को ।"—जयन्त की कड़कती हुई आवाज जंगल से टकरायी, किन्तु गाड़ियाँ आगे बढ़तीं रहीं ।

"मैं कहता हूँ अभी रोकों इन वाहनों को !"—दह पुनः तड़पा ।

किन्तु वाहन रुके नहीं, उनकी गति मन्द अवश्य हो गयी ।—"लगता है कोई दस्यु है ।" पर्ण आच्छादित बैलगाड़ी से नारी स्वर उभरा, किन्तु उनमें भय का कम्पन नहीं था ।

फिर कुछ स्वर्ण मुद्राएँ उनके भीतर से फेंकी गयीं,—"अपना कर ले लो और मार्ग छोड़ दो ।"––एक आदेशात्मक ध्वनि सुनायी पड़ी जिसमें न किसी प्रकार की हिचक थी और न संकोच ।

उनमें से कुछ स्वर्ण मुद्रायें धरती पर गिरीं और कुछ जयन्त के मुख पर । उसे चोट भी लगी । वह झल्ला उठा—"इतनी धृष्टता ! अभी मैं बताता हूँ ।" कहते ही उसने कमर से असि निकाली और पर्ण आच्छादित बैलगाड़ी की ओर लपका ।…तब तक पीछे की बैलगाड़ी से कुछ सैनिक कूद पड़े,—"हैं…हैं, यह क्या कर रहे हो ?"

जयन्त रुक गया, पर उसकी आवाज अब भी कड़क रही था,—"जो मुझे करना चाहिए, वही कर रहा हूँ ।—"यह धरती हमारी है और हम तुम्हें आगे बढने नहीं देंगे ।"

स्थिति तनावपूर्ण होती गयी, किन्तु इसी बीच सैनिकों ने जयन्त का परिचय पूछा और उसने बड़े स्वाभिमान से अपना परिचय दिया ।

"अच्छा तो आप राजकुमार हैं,….दस्यु नहीं हैं ।"—पर्णाच्छादित बैलगाड़ी से इठलाता नारी स्वर पुनः उभरा और फिर गम्भीर कहकहों में डूब गया ।

"मेरे परिचय देने के बाद भी मेरा यह अपमान ।"—देवाधिदेव के पुत्र की हँसी उड़ाई जाय यह उसे सह्य नहीं था । वह खिलखिलाहट सौगुनी तेज हो उसे चुभने लगी । उसके आक्रोश ने पुनः जोर मारा,—"मेरी यह उपेक्षा मुझे जरा भी सह्य नहीं ।" आवेश में उसने असि को शून्य में हिलाया और बोला,—"तुम सब मरने के लिए तैयार हो जाओ ।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस बार वे सभी बेलगाड़ियाँ एक साथ हँसने लगीं। अट्टहास उस निर्जन में बड़ी देर तक गूंजता रहा। जयन्त को ऐसा लगा जैसे सारा जंगल उस पर हंस रहा है! उसका मष्तिस्क चकराने लगा। वह मौन होकर ओठ चबाता रहा। उसे अनुभव हुआ जैसे वह स्वयं टूट कर बिखर जायेगा।

जब हंसी कुछ थमी, तब फिर वही नारी स्वर सुनायी पड़ा,—"....आप हमें मार कर क्या करेंगे?....हम पुनः जी उठेंगे। किन्तु यदि आप मारे गये तो शायद देवताओं के इतिहास में भी जीवित रह नहीं पायेंगे।" अब जयन्त के मस्तिष्क में तड़ित तरंग-सा कुछ कौंध गया। कौन है ये, जो हमारे जीवन के ही नहीं, अपने मृत्यु के अस्तित्व को भी स्वीकार नहीं करते? उसने अब स्वयं पर नियन्त्रण किया और सामान्य होते हुँए बोला,—"कौन हो तुम लोग?"

सैनिक मुस्कराये,—"हम वही हैं, जो आप नहीं हैं।"

"पहेली मत बुझाओ। स्पष्ट बताओ कि तुम कौन हो?"

"हम असुर आचार्य शुक्र के अंगरक्षक हैं।,,

"क्यों?...आचार्य को अंगरक्षकों की आवश्यकता कब से पड़ने लगी?"–जयन्त की कृत्रिम मुस्कराहट में चकित होने का कोई भाव नहीं था।

"....जब से सुधर्मा आचार्य के वध की बात सोचने लगी।"—सैनिक अत्यन्त गम्भीर हो बोला। जयन्त आवाक् रह गया। सुधर्मा के विवाद का समाचार इन्हें कैसे मिला? निश्चिंत है, असुरों की गुप्तचर व्यवस्था सुरों से कहीं अच्छी है। वह सोचता रहा और चिन्ता की अतल गहराई में डूबता गया।

"क्या सोच रहे हो?...क्या हम लोग आगे बढ़ें?"—सैनिकों में से एक ने पूछा।

"नहीं, बिल्कुल नहीं। यह धरती हमारी है। इस पर मैं तुम्हें एक पग भी आगे बढ़ने नहीं दूँगा।"—जयन्त ने कहा।

इस बार एक अत्यन्त वृद्ध व्यक्ति बैलगाड़ी से उतरा। कपाल, दाढ़ी और श्मश्रु के रजत शुभ्र बालों के बीच मुस्कराती दन्त विहीन उसकी पोपली

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आकृति इतनी प्रसन्न थी मानो वातावरण का सारा हास्य आकर उसके बालों पर ज़म गया हो। उसने उतरते ही पूछा,—"क्या कहा? यह धरती तुम्हारी है? क्या मरने के बाद भी तुम्हारे साथ जायेगी?"

"कभी किसी के साथ गयी है कि मेरे साथ जायेगी?"

"तब यह तुम्हारी कहाँ से हुई?···तुम्हारी वास्तविक वस्तु तो वही है, जो किसी स्थिति में तुम्हारा साथ न छोड़े।"—बूढ़ा मुस्कराता रहा।

मैं सोचने लगा, आखिर ऐसी कौन-सी वस्तु है जो मरने के बाद भी मेरे साथ जा सकती है।—मेरी मूकता उस तनाव को ढंकने का प्रयास करने लगी। बूढ़ा स्वयं बोला,—"इस दृष्टि से शायद तुम्हारी कोई भी वस्तु तुम्हें अपनी न दिखायी पड़े।··· धराधाम, राजपाट तो सब यही रह जायेगा। यहाँ तक कि·· ये तुम्हारे हाथ-पाँव, तुम्हारी आँखें, यह धड़कता हुआ तुम्हारा हृदय—सम्पूर्ण शारीरिक संरचना—इनमें से कोई वस्तु तुम्हारे साथ नहीं जायेगी।····तब तुम्हें इनसे इतना मोह क्यों?"

जयन्त कुछ बोल नहीं पाया। बूढ़ा एकटक उसे देखता रहा। ऋषि तुल्य बड़ी-बडी आँखों से ओज की जैसे चिनगारियाँ छूट रही थीं। जयन्त ने दबे स्वर में कहा—"····पर असुर तो ऐसा नहीं सोचते। वे एक पग भी धरती का मोह नहीं छोड़ पाते। वैभव और विलास के पीछे पागल हैं।"

"उन्हें पागल ही रहना चाहिए।"—वृद्ध ने मुस्कराते हुए कहा।

"क्यों?"

"क्योंकि वे असुर हैं। इसी प्रवृत्ति पर तो उनका असुरत्व टिका है।···· किन्तु तुम सुर हो। तुम्हारी अस्मिता तपस्या और त्याग पर आधृत है।"—बूढ़ा आचार्यों जैसा आप्त वचन बोलता रहा। उसके उपदेश का जयन्त पर कोई विशेष भाव नहीं पड़ा, पर उसके प्रति उसकी श्रद्धा अवश्य बढ़ चली। यह कौन है? उसने जानना चाहा। शब्द अपना काम करें इसके पहले ही उसकी भंगिमा बदली। एक सैनिक ने प्रयोजन समझ लिया, और बड़ी श्रद्धा से वृद्ध का परिचय देते हुए बोला—"यह हमारे वरेण्य हैं। शुक्राचार्य के गुरु भाई, कलत्र।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देवमूल के होते हुए भी कलत्र ने असुराचार्य के आश्रम को ही अपना निवासस्थान क्यों बनाया ? ऐसी ही कई जिज्ञासाएँ मन में उठती गयीं। जयन्त बदली हुई दृष्टि से उन्हें देखता रहा। उसने बड़ी शिष्टता से पूछा,—"क्या मैं जान सकता हूँ कि इस समय आपने किधर और किस प्रयोजन से प्रयाण किया है ?"

"हम मूजवान पर्वत की ओर जा रहे हैं।"—कलत्र ने बताया।

"मूजवान पर्वत की ओर ?"—जयन्त फिर सोचने लगा,—"‥पर प्रयोजन का उल्लेख तो आपने किया ही नहीं।"

"प्रयोजन तो स्पष्ट है कुमार।"—इतना कहकर कलत्र हँस पड़ा,—"संसार जानता है कि मूजवान पर्वत पर ही सोम के बिरवे उगते हैं। ‥उन्हीं से सोम रस निकालने जा रहा हूँ।"

"‥‥तब सोम रस के लिए इतने वाहनों की क्या आवश्यकता ?"

"बहुत अधिक रस एकत्र करना है।"

"क्या होगा इतना रस ?"—प्रश्नों के बीच से नया प्रश्न उग आया। जयन्त की जिज्ञासा बढ़ने लगी।

"असुराचार्य इष्टापूर्त सोम यज्ञ करने वाले हैं।"—कलत्र की ध्वनि ने जयन्त के मस्तिष्क को चक्र की भाँति घुमा दिया। "‥‥कौन-सी बड़ी उपलब्धि होने वाली है आचार्य को, जो यह यज्ञ करने जा रहे हैं।"—आशंका व्यक्ति को दवाने के पूर्व ही उसके अहं को चबा जाती है। अब जयन्त पानी हो गया था। उसके असि की नोक धरती देख रही थी। जहाँ बिखरी हुई स्वर्ण मुद्राएँ निरभ्र आकाश में नक्षत्र की भाँति चमक रही थीं। उसकी आभा जयन्त की दृष्टि में गड़ती गयी।

"स्वर्ण को हृदय में रखने से हाथ में रखना कहीं अच्छा है कुमार! इन्हें उठा क्यों नहीं लेते ?"—कलत्र के इस व्यंग्य पर अन्य सैनिक भी हँस पड़े। पर्ण आच्छादन को भेद कर नारी अट्टहास उस आरण्यक नीरवता को झकझोर बैठा। जयन्त को लगा जैसे हर कोई उस पर हँस रहा है, उसकी मूर्खता पर, वैभव के प्रति उसकी लिप्सा पर, स्वर्ण के प्रति उसकी आसक्ति पर।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चढ़ते हुँए सूर्य के प्रकाश में भी उसने स्वयं को एक धुँधलके में घिरा पाया। कुछ क्षण उसे अवश्य सँभलने में लगे। "इष्टापूर्त यज्ञ के लिए तो आचार्य को स्वयं सोम एकत्र करना चाहिए था।"—जयन्त ने शास्त्रीय प्रश्न उठाया।

"....कोई ऐसा निश्चित विधान तो नहीं है। यह कार्य उनकी सन्ततियाँ भी कर सकती हैं।"—कलत्र बोले।

"क्या आचार्य के आत्मज पधारे हैं?"—जयन्त ने पूछा।

"वे देवासुर संग्राम में सन्नद्ध हैं।';—

"तब ?"—जयन्त कुछ बोले इसके पूर्व ही पर्ण आच्छादित वाहन से एक अनिंद्य सुन्दरी फुदक पड़ी। अनिंद्य शब्द उस नवयौवना के आकर्षण को व्यक्त करने में सर्वथा अशक्य! यही समझिए कि चाँदनी में नवनीत मिलाकर ब्रह्मा ने उसे बनाया था। मालती लता-सी गदरायी उसकी देह कदम्ब पुष्प की भाँति पुलकित थी। उसने एक चुभन भरी दृष्टि जयन्त पर डाली, मानो रतिरानी के नेत्रों में बैठकर कामदेव ने अपने बाण चलाये हों।

"मैं हूँ आचार्य की दुहिता देवयानी।"—उसने विचित्र ढंग से इठलाते हुँए कहा। जयन्त उसे देखता रह गया। मधुलोलुप नेत्र जो कुछ दृश्य था उसे चूसने और जो कुछ अदृश्य था उसे खोजने में लग गये। जयन्त की इस मानसिक परवशता पर उसने मुस्कराहट का इन्द्रजाल फिर फेंका।

एक संक्षिप्त अन्तराल के बाद उसने फिर कहा,—"बोलो युवराज, क्या चाहते हो?"

जयन्त क्या कहे? उसके स्वाभिमान के तरकस के सारे तीर पिघलने लगे थे। उसकी अहमन्यता लुंज-सी हो सिमटने लगी थी। उसने 'कुछ नहीं' न कहकर नकारात्मक ढङ्ग से सिर हिलाया। वह फुदुक कर वाहन पर सवार हो गयी। खिलखिलाहट बिखेरती बैलगाड़ियाँ आगे बढ़ीं। एक के बाद दूसरी उसके सामने से निकलती गयीं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक स्वप्न था जो सरक गया। एक दृश्य था जो अदृश्य हो गया। जयन्त लुटालुटा-सा खड़ा था। उसकी चेतना तब लौटी जब उसका अश्व अनजाने हिनहिना उठा।

प्रासाद में पहुँचते ही वह अश्व से चुपचाप उतरा। सामने ही उद्यान में जयन्ती खड़ी थी। वह उससे कुछ नहीं बोला। कुछ क्षणों तक उसे देखता अवश्य रहा। उसका मानस देवयानी की आकृति जयन्ती पर चिपकाने की कुचेष्टा करता रहा,··· और अन्त में अपनी सफलता पर खीझ कर अर्ध विक्षिप्तों-सा वह महाराज के कक्ष की ओर बढ़ा। एक परिचारक उसके घोड़े को अश्वशाला की ओर ले चला। "लगता है, कुछ गड़बड़ है।"—दूसरा परिचर बोला।

"लगता है आचार्य के यहाँ से अपमानित होकर लौटा।"

"ऐसा भी हो सकता है कि नाग की मणि ही कहीं खो गयी हो।"—परिचर इतना कहकर विचित्र ढंग से मुस्कराया। जयन्त के स्वभाव पर किया गया उसका यह व्यंग्य गहरा होने के साथ ही साथ स्पष्ट भी था। उसने स्वयं स्पष्ट किया,—"मणि से मेरा तात्पर्य उसके मन से है। लगता है, वह कहीं और तो नहीं फेंक आया। बड़ा मन फेंक जो ठहरा।"—जयन्त के स्वभाव से परिचित दोनों परिचारक खुलकर हँसे, पर उनकी हँसी अधरों में उस समय अचानक बन्द हो गयी, जब जयन्ती को उन्होंने अपने निकट आते देखा।

"क्या कह रहे थे ?—जयन्ती ने परिचारकों से कुछ तीखे स्वर में पूछा।

"कुछ नहीं राजकुमारी जी।—उन्होंने स्वयं को छिपाया,—"सोचता हूँ, राजकुमार तो उदास हैं ही, अश्व भी कुछ उदास लगता है।··· वह हिनहिनाना भी भूल गया है।"—धरती की ओर देखते हुए दोनों परिचारक अपनी मुस्कराहट भी पीते रहे और ऊपर से गम्भीरता ओढ़े मौन थे। ऐसा नहीं था कि जयन्ती ने परिचारकों का व्यंग्य न समझा हो, पर वह अपने भाई की प्रकृति से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अच्छी तरह परिचित थी। कुड़बुड़ाकर भी कुछ बोल नहीं पायी। सीधे महाराज के कक्ष की ओर बढ़ी।

"हमें जल्दी ही कुछ न कुछ करना चाहिए।""बात बहुत आगे बढ़ चुकी है।"—महाराज के समक्ष जयन्त बोल पड़ा। उसका यह सन्दर्भहीन वाक्य कोई समझ नहीं पाया। शची और इन्द्र दोनों उसे प्रश्नवाचक मुद्रा से देखते रहे। वह कहता गया,—"यदि इष्टापूर्त सोम यज्ञ पूरा हो जायेगा तो क्या होगा?"

मन किसी भी अनजाने सन्दर्भ को अपने अनुसार ही बैठा लेता है। इन्द्र ने सहज ही समझ लिया कि यह यज्ञ देवाचार्य ही करने जा रहे हैं। सम्भव है, इसकी उपलब्धि स्वरूप शुक्राचार्य की संजीवनी विद्या का कोई समाधान निकल सके।

इसमें घबराने की क्या बात है?""गुरुदेव अपना कर्त्तव्य ही कर रहे होंगे।"—इन्द्र ने आश्वस्त होते हुए कहा।

"अरे, उस समय गुरुदेव क्या करेंगे, जब सब कुछ नष्ट ही हो जायेगा।"—वह व्यग्र ही नहीं हुआ, वरन् अपने पिता की धारणा पर खीझ उठा,—शुक्राचार्य एक के बाद एक सिद्धियां प्राप्त कर रहे हैं, और हमारे आचार्य अपनी सन्ध्या पूजा में ही लीन हैं।" फिर भी आप कहते हैं कि अपना कर्त्तव्य तो करेंगे ही।"

जयन्त की झुंझलाहट ने इन्द्र के मानस को झँकझोरा और उसे विवश किया कि वह वास्तविकता पहचानें।""और फिर उसने मार्ग में जो घटा था वह सब कह सुनाया। शची चकित-सी सब सुनती रही। विनाश से विनाश की आशंका कहीं अधिक भयावह होती है। शुक्राचार्य के इष्टापूर्त सोम यज्ञ की सूचना मात्र से शची काँप उठी थी।

"और महाराज आप जानते हैं?"—जयन्त चिन्तातुर स्वर में बोलता रहा—"प्रासाद की इन दीवारों में भी कान उग आये हैं। हमें इनसे भी सावधान रहना चाहिए।"

"तुम्हारा तात्पर्य?"—महाराज का कूतूहल जागा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"यहाँ की हर बात उन तक पहुँच जाती है, यहाँ तक कि मंत्रिपरिषद में शुक्राचार्य के वध के सम्बन्ध में चले विवाद का भी उन्हें भान हो गया है।"

"आश्चर्य है। यह बात उन्हें कैसे ज्ञात हुई ?··· हमारे बीच में ही कोई असुर तो नहीं है।"—इतना कहकर इन्द्र मौन हो गये। उनका मन राजभवन के एक-एक कर्मचारी को अपनी कल्पना में छूने और टटोलने लगा।

"क्या यह सम्भव है कि देवताओं के मध्य कोई दानव छिप सके ?"—इन्द्र की बढ़ती हुई शंका को कम करते हुए शची ने कहा।

"राहू का सूर्य और चन्द्रमा के बीच छिप सकना क्या सम्भव था ?"—जयन्त ने समुद्र मंथन के सन्दर्भ में ही प्रश्न उठाया।

"जब भाग्य प्रतिकूल होता है तब सारे अनिष्ठ सम्भव होने लगते हैं देवि।"—इन्द्र का स्वर निराशा में डूबा था,—"····किन्तु हमें सजग रहना चाहिए। घट यदि चू रहा है, तो कहीं न कहीं उसमें छिद्र अवश्य होगा।"—फिर उन्होंने बड़ी सावधानी से अपनी उलझन को समेटते हुए करतल ध्वनि की। एक परिचारक कक्ष में आया। उसे उन्होंने महामात्य को अविलम्ब बुला लाने का आदेश दिया।

जयन्त चुपचाप इन्द्र के समक्ष एक छोटे से मंचक पर बैठ गया। समय के इस लघु अन्तराल को भी उस घुटन भरे मौन ने कितना विशाल कर दिया था ?

महामात्य के कक्ष में प्रविष्ट होते ही, निस्तब्धता को तीर की भाँति चीरती इन्द्र की ध्वनि सुनायी पड़ी,—"ज्ञात हुँआ है कि हमारी साधारण से साधारण बात भी असुरों के यहाँ पहुँचा दी जाती है।"

"पहुँचा दी जाती है ?"—उन्हें काटो तो खून नहीं। पसीने-पसीने हो गये वह। घबराहट में उनके मुख से एक शब्द भी नहीं निकला।

इन्द्र के नेत्रों से जैसे चिनगारियाँ छूट रही थीं।—"उस दिन सुधर्मा की गोपनीय मन्त्रणा का प्रत्येक शब्द शुकाचार्य को मालूम हो गया है।····बताइए, क्या किया जाये ?"

पीपल के पत्ते-सा महामात्य का सारा शरीर काँप उठा। उन्होंने हाथ जोड़ते हुँए कहा—"महाराज क्षमा करें।····मैं बिलकुल अनभिज्ञ हूँ।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"यह अनभिज्ञता तुम्हारी ईमानदारी की भले ही रक्षा कर ले, पर अयोग्यता को तो प्रामाणित करती ही है।"––चुभन भरी हँसी के बीच इन्द्र ने कहा,—"ऐसे अयोग्य व्यक्ति को महामात्य के पद पर रखकर मैं अपने सिंहासन को खतरे में नहीं डाल सकता।"

महामात्य के पैर के नीचे की धरती सरकने लगी। उनका मस्तिष्क चकराने लगा। वह 'त्राहिमाम्' कहता हुआ वहीं भूमि पर बैठ गया। यदि कोई साधारण कर्मचारी होता तो वह इस परिस्थिति में निश्चित ही दण्डवत लेट जाता। फिर भी शची उसकी गरिमा की रक्षा करते हुँए बोली,—"नीचे क्यों बैठते हैं महामात्य, आप मंचक पर बैठें।"

मृतक की नाड़ी की भाँति वातावरण कुछ समय तक एकदम गुमसुम था। फिर महाराज ने कुछ सोचते हुए महामात्य से कहा,—"जरा सोचकर बताइए कि ऐसे कितने लोग हो सकते हैं जिन पर शत्रु शिविर में सूचना पहुँचाने का सन्देह किया जा सकता है।"

महामात्य सोचते रहे। उनकी आकृति पर आड़ी तिरछी अनेक रेखाएँ बनती और मिटती रहीं। "कैसे बताऊँ महाराज ?"—उन्होंने धीरे से कहा।

"यदि अब नहीं बतायेंगे, तो क्या यह इन्द्र जब समाप्त हो जायेगा तब बतायेंगे ?"—महाराज का अमर्ष उबाल खा बैठा।

कुछ कहने के पहले महामात्य की दृष्टि जयन्त की ओर गयी। उसे लगा जैसे जयन्त के विस्फारित नेत्र उसे निगल जायेंगे। उन्होंने सहम कर उधर से दृष्टि हटा ली और चुपचाप धरती की ओर देखने लगे।

स्पष्ट ज्ञात हुँआ कि महामात्य कुछ कहना चाहते हैं, पर गहरी द्विविधा में हैं। "घबराइए मत महामात्य, जिस पर शंका हो निस्संकोच कहिए।"—शची बोली।

"अभयदान दें, महाराज !"—वह गिड़गिड़ाया, पर जयन्त की ओर कनखियों से फिर देखा।

"मेरे हित की बात कहने में भी आपको अभयदान चाहिए ?…आखिर बात क्या है ?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"कुछ ऐसी ही स्थिति है महाराज।"—महामात्य कहते हुए भी जयन्त की आकृति का भाव ताड़ता रहा। "....औरों पर तो मेरा जरा भी सन्देह नहीं है, पर एक परिचारिका के सम्बन्ध में.....।"—वह कहते-कहते रुक-सा गया, जैसे किसी ने उसके मुख पर हाथ रख दिया हो।

"परिचारिका ने ?.. तो पूरी बात कहते क्यों नहीं ?... पहेली बुझाने की चेष्टा मत कीजिए।"

"महाराज, लोग माधुरी के विषय में ऐसी चर्चा करते हैं।"—उन्होंने एक झटके में सारा रहस्य उड़ेल कर जयन्त की ओर से एकदम मुँह फेर लिया।

"क्या कहा माधुरी ने ?.. यह आप कैसे कह सकते हैं ?—"चकित होने के साथ ही जयन्त क्रोध में लाल हो उठा।

"गुप्तचरों ने आपसे कई बार कहा और आपने मुझसे एक बार भी नहीं कहा।"—महाराज का स्वर कुछ ऊँचा हुआ।

"कैसे कहता महाराज ? राजकुमार के निकट वह जो थी।"

"मेरी मृत्यु भी यदि राजकुमार के निकट रहती तो क्या आप मुझे सावधान नहीं करते ?"

महामात्य मौन रह गए। विचित्र चुप्पी थी। जयन्त महामात्य की ओर देखता हुआ चुप था और शची, इन्द्र तथा जयन्त की ओर।

थोड़ी देर बाद इन्द्र की वक्र दृष्टि स्वर में बदल गयी,—"अच्छा तो यहाँ दीपक के नीचे ही अँधेरा है।"

"यदि अँधेरा ही दीपक को प्रिय होगा तो आप क्या करेंगे ?"—यह अचानक आयी आवाज जयन्ती की थी। जिसने अभी-अभी कक्ष में प्रवेश किया था। सबकी दृष्टि उस ओर घूमीं। वह मुस्करा रही थी।

जयन्त को लगा, पर्ण आच्छादित देवयानी के वाहन से एक बार फिर अट्टहास फूट पड़ा है और वह उसकी ऊर्मियों में डूबता जा रहा है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वासना एक कसौटी है। अग्नि स्वर्ण को परखती है और वासना पुरुष को। जयन्त स्वयं उस कसौटी पर कसा जाकर निकृष्ट सिद्ध हुआ था। उसे सब कुछ सर्मपित कर प्रेम का अभिनय करनेवाली माधुरी इतनी जघन्य होगी, वह कभी सोच भी नहीं सकता था। वह अपने कक्ष में पड़ा था। इस समय वह एकदम अकेला था। आँखें मूँदे पश्चात्ताप की आग में धीरे-धीरे सुलग रहा था।

बादलों से लिपटा दिन का तीसरा प्रहर उतरने लगा। ग्रीष्म की जलती हवा पागलों की भाँति चक्कर काट रही थी। जयन्त के खुले वातायनों के पंख घायल पक्षी की तरह फड़फड़ाते रहे, फिर भी वे आँखें बन्द किये पड़ा था। उसे यदि किसी के आने की आहट भी लगती, तो भी वह अपने नेत्र न खोलता, वरन् माधुरी के विश्वासघात की असह्य दुर्गन्ध का अनुभव करता और विक्षिप्त सा बड़बड़ाने लगता।

"निकल जा यहाँ से नीच! दुष्टा! मैंने कभी सोचा नहीं था कि तू ऐसी होगी।"—उसे अनुभव हुआ जैसे कोई महिला कक्ष में आयी है।

"मुझ पर व्यर्थ में क्यों लाल-पीले हुए जा रहे हो? मेरी यही नीचता है न कि मैंने कहा था कि अँधेरा ही दीपक को प्रिय होता है।"—जयन्ती बोलती गयी,—"मैंने कौन-सी गलत बात कही थी।""क्या वह सत्य नहीं है कि संसार में दीप का अस्तित्व तभी तक है, जबतक अँधेरा है।"

जयन्त समझ गया कि यह माधुरी नहीं जयन्ती है। उसकी आँखें खुल गयी थीं, फिर भी वह चुपचाप सुनता रहा और अन्त में पश्चात्ताप भरे स्वर में बोला,—"""मुझे क्षमा करो, जयन्ती। मेरी आँखें मुँदी थीं। मैंने सोचा माधुरी है।"

"तुम्हारी आँखें तो सदा मुँदी ही रहीं और आज भी मुँदी हैं। अन्तर बस इतना है कि पहले सब कुछ देखते हुए तुम्हारी आँखें बन्द थीं, किन्तु आज तुम मात्र एक माधुरी को देखने के लिए ही आँखें बन्द किये हो।"—जयन्ती की ध्वनि जयन्त के घायल मर्म को छू गयी। वह असह्य पीड़ा से कराह उठा,—"तू बहन होकर भी मुझे पहचान नहीं पा रही है। मैं वासना से नहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विश्वासघात से छला गया हूँ।.... फिर भी तू मेरे घाव पर नमक छिड़क रही है।"

"छलिया दो दोनों ही हैं, भइया! वासना पहले छलती है और विश्वास-घात बाद में। यदि तेरी वासना ने माधुरी को इतना मुँह न लगाया होता, तो शायद वह विश्वासघात न कर पाती।"—जयन्ती ने कहा।

जयन्त चुप था। उसकी चेतना जयन्ती के कथन से सत्य का प्रतिशत निकाल रही थी।.... किन्तु वह बड़े कलात्मक ढङ्ग से बोलती गयी,—"... पर इस प्रकार निष्क्रिय पड़े रहने से क्या लाभ होगा?—यह सत्य है कि जबतक अंधेरा है तभी तक दीपक का अस्तित्व है, किन्तु जिस क्षण दीपक संसार का सारा अन्धकार पीने में समर्थ हो जायेगा वह उसी क्षण सूर्य हो जायेगा।.... इसलिए सूर्य बनने की चेष्टा करो।"

जयन्त को पहली बार लगा कि जयन्ती मुझ पर व्यंग्य बाण ही नहीं चला रही है, वरन् मेरे घावों को भी सहलाना चाहती है। .. किन्तु वह कहना क्या चाहती है, वह कुछ समझ नहीं पाया, बोला,—"तू तो काव्य बोल रही है जयन्ती! आखिर तेरा तात्पर्य क्या है?"

"पीड़ित को सहलाने की क्षमता काव्य या संगीत में ही होती है भइया।"—जयन्ती हँसी। फिर उसने स्वयं को स्पष्ट किया,—"मेरा तात्पर्य तो सीधा-सा है कि तुम्हें एक न एक दिन सूर्य होना है, अर्थात् इन्द्र होना है। पिता जी कब तक सिंहासन सँभालते रहेंगे? .. इसलिए तुम्हें अभी से ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि अँधेरे की छाया भी तुम्हारे पास न आ सके।"

जयन्त ने समझ लिया कि जयन्ती की काव्य बुद्धि माधुरी के कलुष को ही अंधकार से अभिहित कर रही है। उसने सोचा, मैं उसे दूर हटा सकता हूँ, पर इससे अधिक और क्या कर सकता हूँ? वह सोचता रहा और अचानक बोल पड़ा—विश्वास करो जयन्ती, अब माधुरी के पंख भी मेरे पास फड़क नहीं सकते।"

"यदि वह होगी तब न पंख फड़कने का प्रश्न उठेगा!....अरे चिड़िया थी फुर्र हो गयी।"—जयन्ती ने कहा। बात भी साफ हो गयी कि महामात्य के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रहस्योद्घाटन के बाद से ही माधुरी की खोज की जाने लगी है, पर वह कहीं नहीं मिली। प्रासाद का कोना-कोना छान डाला गया, पर उसकी दुर्गन्ध के अतिरिक्त कुछ भी हाथ नहीं आया।

जितना जयन्ती ने बताया उससे कहीं अधिक जयन्त की सजगता ने समझ लिया, पर वह कर क्या सकता था? नगर, ग्राम, पुर, अरण्य—अब वह कहीं भी पायी नहीं जा सकती थी। अवश्य ही उसकी कल्पना में दिखायी पड़ी कि वह किसी असुर शिविर में मादक द्रवों में डूबकर विष उगल रही है।

"प्रासाद के सभी कर्मचारियों की उपस्थिति गिन ली गयी है। केवल माधुरी ही गायब है।"—जयन्ती ने दूसरी सूचना दी।

जयन्त चुप था। एक लुटे हुए पथिक की भाँति उसका मन हाहाकार कर रहा था।

"भइया यह बता सकते हो कि उसकी और किससे अधिक पटती थी?"—जयन्ती ने पूछा।

"इस प्रश्न का सही उत्तर तो गुप्तचर विभाग ही दे सकता है।"—जयन्त ने कहा!

"उसका तो कहना है कि तुमसे अधिक कोई उसका अपना नहीं था।"—एक कुटिल मुस्कराहट के बीच जयन्ती कहती गयी—"उस पर उड़ेले गये तुम्हारे अपार स्नेह में औरों के प्रति इतनी जलन थी कि कोई भी उसके निकट नहीं आया।"

जयन्त चुप था, पर जयन्ती उसे निरन्तर देखती रही, मानो जो कार्य उसकी रसना नहीं कर पा रही थी उसे वह आँखों से कर देना चाहती थी।···फिर भी बिना बोले रह न सकी,—"···वह किसी और के निकट क्यों जाती?···गुप्तचरी करनेवालों को व्यक्ति से नहीं सूचनाओं से प्रेम होता है।"

जयन्त के मानस में माधुरी की विभिन्न भंगिमाएँ उभरीं। मुस्कराती हुई माधुरी। सब कुछ समर्पण के लिए प्रस्तुत माधुरी। आलिंगन पाश में आबद्ध माधुरी। परिरम्भ कुम्भ की मदिरा पीती और पिलाती माधुरी। संभोग के लिए आतुर माधुरी, जैसे वह मात्र मेरी थी मैं उसका था। जब वह होती तब

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संसार में हम दोनों के अतिरिक्त और कोई नहीं होता। यदि होता, तो केवल अँधेरा होता, रात होती, पतंगों को चुपचाप निगलती दीपक की लौ होती और होती चषकों में भरी हुई कादम्बरी।

जयन्त सोचता गया,—यह रंगीन रातें एक छलना थीं और माधुरी पिशाचिनी। जो मेरा रक्त नहीं, वरन् मेरी गोपनीयता चूसती थी और इन्द्र-जालिक माया उगलती थी। जिसमें देवताओं का अस्तित्व उलझता गया।

जयन्त के इस स्वप्निल मौन पर जयन्ती बोल पड़ी,—"क्या सोचने लगे भइया ?"

"सोचता हूँ, वह कौन-सी परिस्थिति थी जिसमें शिव का तीसरा नेत्र खुला था और कामदेव भस्म हो गया था।"—अब उसे अपने भाई की मनःस्थिति का अनुमान लगाने में कठिनाई नहीं हुई। वह उसके मन को हल्का करने की नीयत से बोली,—"अब उस परिस्थिति का पता लगाकर क्या करोगे?…अब तो काम भस्म हो गया है?"—इतना कहने के बाद वह बड़ी देर तक शीतल हँसी उड़ेलती रही, पर जयन्त का मन जलता ही गया।

गुप्तचर विभाग का कहना है कि हमें सतर्क रहना चाहिए। यदि माधुरी ने प्रासाद में अपना कोई निजी कर्मक नहीं बनाया होगा, तो वह अवश्य किसी न किसी रूप मे यहाँ आयेगी।"—जयन्ती ने बात को नया मोड़ दिया।

"अब उसकी छाया भी यहाँ नहीं आ सकती।"—जयन्त बड़े विश्वास से बोला।

"सिंह और गुप्तचर अपने मारे हुए शिकार के पास अवश्य आते हैं।"—इस बार जयन्ती की हँसी उसके नेत्रों से बाण की तरह छूटी। जयन्त बेतरह विंध गया। वह इस व्यंग्य को सँभाल नहीं पाया और एकदम झुँझला उठा,—"जयन्ती, मैं समझता हूँ कि मैं उसका शिकार हो गया हूँ, मैं मारा गया हूँ, पर साथ ही तू भी समझ कि वह जयन्त अब मर चुका है।" यह दूसरा जयन्त है, जो उस नागिन को यदि पाये तो कच्चा चबा जाये।"

"…और उसका विष ?" जयन्ती चुप रहने वाली कहाँ थी।

"…शंकर की भाँति गले में रख लूँगा।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"तब तो तू नीलकण्ठी हो जायेगा,"''और मैं तेरे लिए एक चन्द्रमुखी ला दूँगी।"—इतना कहकर वह जयन्त से लिपट कर हँसने लगी।

वातायन के बाहर आकाश से लिपट कर बादल भी पसीजने लगा था।

जब गुरुदेव राजभवन में प्रविष्ट हुए, सन्ध्या ढुलकने वाली थी। बादल छँट गये थे, किन्तु हवा अब भी तेज बह रही थी। आचार्य वृहस्पति के विभ्राट स्कंध पर पड़े उत्तरीय के दोनों छोर आपस में टकरा रहे थे।

प्रतिहारी ने दौड़कर महाराज को गुरुदेव के आगमन की सूचना दी। गुरुदेव तबतक उद्यान की ओर बढ़ चुके थे। मालती की भीनी गन्ध से लिपटा नन्दन कानन उस समय आचार्य के लिए अचानक आशंका से भर उठा जब एक पक्षी उनके सिर पर चोंच मारकर उड़ता निकल गया। उन्होंने मुड़ कर उस पक्षी की ओर देखा और किसी अप्रत्याशित घटना के प्रति चिन्तित हो उठे। बालों से भरी उनकी आकृति काँप उठी। सिर के जंगल में भूकम्प आ गया।

"जानते हो यह पक्षी कौन है?"—उन्होंने पीछे मुड़कर कच से पूछा।

कच उस पक्षी की ओर ही देखता रह गया। वह निरभ्र आकाश में कावा काटता चला जा रहा था।

आचार्य ने बड़ी गम्भीर ध्वनि में कहा—"जब यह पक्षी किसी के सिर में चोंच मारता है तो किसी अनिष्ट की सूचना मिलती है।"

आचार्य चिन्तन की मुद्रा में मौन आगे बढ़ते रहे। सबसे पहले जयन्ती ने उनका अभिवादन किया। कुछ ही क्षणों बाद महाराज भी शची के साथ आते दिखायी दिये। "क्षमा करना राजन्! मुझे पहुँचने में कुछ विलम्ब हो गया।" —आचार्य बोले।

"अरे,"''क्षमा माँग कर आप लज्जित न करें।"—इन्द्र ने कहा,—"मैंने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF.

समझ लिया कि आप किसी कार्य में फँस गये हैं। ... मैं तो सोच ही रहा था कि आपकी सेवा में उपस्थित होऊँ।"

"....ऐसी कौन-सी बात आ गयी कि आप मुझसे मिलने के लिए इतने व्यग्र हो उठे?"—आचार्य ने मुस्कराते हुए पूछा।....किन्तु, महाराज कुछ नहीं बोले। कुशल-क्षेम पूछने की औपचारिकता निबाहते हुए वे प्रासाद के अंतरंग कक्ष की ओर बढ़ते गये।

आचार्य के आगमन का समाचार धीरे-धीरे राजभवन में रेंग गया। सन्ध्या का अग्निहोत्र आज फिर महाराज के अभाव में प्रधान पुरोधा की हवि से ही समाप्त कर दिया जायगा। यह सूचना भी यज्ञशाला में पहुँचा दी गयी। महामात्य ने अन्तरंग कक्ष के चारों ओर सैनिकों को सतर्क रहने का आदेश दे दिया। कौन जाने कोई और माधुरी कहीं छिपी बैठी हो।

महामात्य ने भी अन्तरंग कक्ष में पैर तक नहीं रखा। वहाँ केवल महाराज, शची और जयन्ती के अतिरिक्त आचार्य के साथ उनका पुत्र कच था। दूध से जला मट्ठा भी फूँक कर पीता है। इस समय इन्द्र व्यक्ति से अधिक हवा से भी शंकित था। कदाचित् इसलिए परिचारक और प्रतिहारियों को दूर हटा कर द्वार वन्द कर दिया गया था।

आचार्य के आगमन की सूचना के बाद भी जयन्त अपने कक्ष में ही पड़ा रह गया। उसे लग रहा था कि पश्चात्ताप की जिन अदृश्य दीवारों के बीच वह बन्दी है, उसके द्वार पर अब भी माधुरी खड़ी है। वह उस पर घृणा से थूकता है, पर उसे वह वहाँ से हटा नहीं पाता।

महाराज ने संक्षिप्त भूमिका के बाद सारी बातें विस्तार से आचार्य को समझायीं। उन्होंने सब कुछ गम्भीरतापूर्वक सुना और अन्त में कुछ दबे-दबे से बोले,—राजन्! इसमें मैं क्या कर सकता हूँ?"—उनके स्वर में विवशता थी, पराजित मन की हताशा थी।

"... किन्तु मन्त्रि परिषद् का विचार है कि इसमें आचार्य को ही कोई मार्ग ढूँढ़ना चाहिए।"

"क्यों, मन्त्रि परिषद् को मार्ग स्वयं नहीं सूझा?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'मन्त्रि परिषद् कहती है कि यह समस्या हमारी नहीं है और न देवासुर संग्राम की है, वरन् यह समस्या दो आचार्यों की विद्या-बुद्धि के शीत युद्ध की है। इसका समाधान आचार्य को ही खोजना चाहिए।"

आचार्य एकदम मौन हो गये। सम्मुख दीपशिखा को अपलक निहारते रहे। उन्हें लगा जैसे सारी परिस्थिति उसी दीप शिखा की तरह लपलपा रही हैं और देव सृष्टि पतंग की भाँति एक के बाद एक भस्म होती जा रही है।.... आचार्य पाषाणवत् बैठे रहे।

वे अचानक उस समय सिहर से उठे जब महाराज की ध्वनि उनसे पुनः टकरायी,—"इस सन्दर्भ में आपको कोई-न-कोई मार्ग तो निकालना ही चाहिए।"

"....इस देवासुर संग्राम को आपकी मन्त्रिपरिषद् ने दो आचार्यों के बीच का संग्राम घोषित कर दिया।....अद्भुत है उसकी बुद्धि।"—आचार्य ने मन्त्रिपरिषद् के निर्णय पर व्यंग्य तो कर दिया, किन्तु उनका मन उनकी वाणी के साथ नहीं था। वह अनुभव कर रहा था कि मन्त्रियों का निष्कर्ष ठीक था। एक विचित्र असन्तुलित मनःस्थिति में वे मौन बैठे रहे। उनके दबे स्वर की भाँति उनकी आकृति का भाव भी दबता जा रहा था।

किन्तु कच की मनःस्थिति एकदम इसके विपरीत थी। उसका विचार था कि यदि देवों की हार मात्र इसलिए हो रही है कि उनके पास शुक्राचार्य ऐसा गुरु नहीं है तो पिताजी को इस पराजय का अपयश स्वीकार करना चाहिए और स्पष्ट कहना चाहिए कि सचमुच यह मेरी असमर्थता है, जिसका परिणाम आप भोग रहे हैं।.. किन्तु वह कुछ बोल नहीं पाया। उसका मन मसोस रहा था। जिसका गला किसी ने दबा दिया हो उस निस्सहाय व्यक्ति की भाँति वह कभी अपने पिता की ओर और कभी इन्द्र की ओर देख रहा था।

इधर इन्द्र आचार्य का सीधा उत्तर देना चाहते थे। फिर भी वे कुछ कहने के लिए उद्यत से लगे। शची ने धीरे से उनका हाथ दबाकर चुप रहने का संकेत किया, क्योंकि उसे लग रहा था कि जैसे कच कुछ कहना चाहता है। वह अपने प्रत्येक शब्द को शालीनता में डुबोती हुई बोली,—"....आचार्य जी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के विचारों से तो हम अवगत हुए।....क्या हम आचार्य कुमार के भी विचार जान सकते हैं?"

कच के लिए यह अप्रत्याशित था। उसे कभी कल्पना नहीं थी कि उससे भी विचार व्यक्त करने के लिए कहा जायेगा। पर वह बोलना चाहता ही था असमंजसता के झीने पट के भीतर से ही उसकी वाणी मुखर हुई,—"बड़ों की बात में मैं छोटा क्या बोल सकता हूँ?"

"कभी-कभी छोटे लोग ही बड़ों के मार्गदर्शक हो जाते हैं।"—शची ने कहा।

कच की आकृति पर निर्भीकता का रंग चढ़ा। वह छूटते ही बोला,—"मेरे विचार से तो तात को अपनी पराजय स्वीकार करनी चाहिए।"

शची ने इन्द्र की ओर देखा। शायद वह यह कहना चाह रही थी कि मैंने आपको बोलने से रोक कर ठीक ही किया था न।... महाराज कच की स्पष्ट-वादिता पर अवाक् रह गये। जयन्ती तो पहले ही से उसे देख रही थी, अब उसके नेत्र और विस्फारित हो गये। उसे लगा कि कच की देह-यष्टि जितनी आकर्षक है, उसका अन्तस् उतना ही निर्मल।... अब वह उसे आँखों से नहीं, वरन् मन से निहार रही थी।

"तुम्हारी बात मानी भी जा सकती है।"—आचार्य का स्वर लड़-खड़ाया,—"....किन्तु मैं क्या करूँ?....अब शुक्राचार्य से लड़ाई लड़ने चलूँ?"

"हम उनसे लड़ नहीं सकते।... उनकी विद्या हर नहीं सकते, पर उसे सीख तो सकते हैं।"—कच ने कहा।...और अब बातों का सिलसिला पिता पुत्र के बीच में ही सिमट कर रह गया था। शेष केवल मूक श्रोता थे।

"... तो क्या समझते हो? शुक्राचार्य किसी को अपनी विद्या सिखा देंगे?... वह, वह गुड़ नहीं है जिसमें चींटे लग जायें।"

"तो मैं भी वह चींटा नहीं हूँ जो हर गुड़ से लगा करूँ।"—इस ढंग से कच ने कहा कि सबको हँसी आ गयी, किन्तु जयन्ती ने एक विचित्र झटके का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुभव किया। उसे लगा कि वह कच के निकट पहुँचते-पहुँचते एक व्यर्थ गुड़ की तरह फेंक दी गयी।

"तो तुम्हें विश्वास है कि तुम शुक्राचार्य से संजीवनी विद्या सीख लोगे?"— आश्वस्त होने के लिए आचार्य ने पुनः इस प्रश्न को दुहराया।

अपने पिता की सहजता पर कच को हँसी आ गयी। उसने बड़े विश्वास से कहा,—"कोई भी विद्या गुरु की कृपा से अधिक, शिष्य की आस्था से सीखी जाती है।....और मुझमें उसकी कमी नहीं हैं।"

"कुछ विचित्र-सा लगता है, शुक्राचार्य आपको कैसे अपनी विद्या देंगे? वे असुरों के आचार्य और आप हम देवों के आचार्य पुत्र!"—इन्द्र की चिन्ता यथार्थ के धरातल पर थी। फिर भी कच जरा भी टस से मस नहीं हुआ। उसमें पहले जैसी ही दृढ़ता थी।—"वे देंगे नहीं, पर मेरी आस्था विद्या ले लेगी।"—कच ने कहा।

उलझी हुई समस्या यद्यपि सुलझी नहीं, फिर भी उसका एक सिरा इन्द्र की पकड़ में आया—"अच्छा हो आचार्य की असमर्थता की पूर्ति उनका पुत्र ही करे।....इतिहास ऐसे आचार्य पुत्रों पर गर्व करेगा।"—इन्द्र बोले।

"....और कहीं शुक्राचार्य को यह रहस्य ज्ञात हो गया कि देवताओं की विजय के लिए कच विद्या चुराने आया है, तब जानते हो उस चोर को क्या दण्ड दिया जायेगा?"—प्रश्न पूछ कर भी आचार्य स्वयं बोले,—"इतिहास तुम्हारी इस मूर्खता पर हँसेगा।"

"मैं जानता हूँ, इस चोर को मृत्यु दण्ड दिया जायेगा।"—कच ने कहा— "....फिर भी इतिहास उस पर हँसेगा नहीं, वरन् गर्व करेगा कि पुत्र अपने पिता की असमर्थता की वेदी पर उत्सर्ग हो गया।"

समर्थता विवेक की परीक्षा लेती है और असमर्थता धैर्य की। अपने प्रति बार-बार असमर्थ शब्द का प्रयोग, वह भी अपने पुत्र के ही मुख से सुनकर आचार्य कुछ विचलित से होने लगे। उनकी आकृति का भाव कच ठीक से पढ़ नहीं पाया, वह पहले जैसी दृढ़ता में बोलता गया—"इस पर तात को अधिक व्यग्र नहीं होना चाहिए, क्योंकि—मान लीजिए—यदि मैं इस सत्कर्म

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में मारा भी गया, तो भी मेरी पारिवारिक परम्परा तो चलेगी ही।....मेरा भाई भरद्वाज तो रहेगा ही।....और यदि सफलता मिली तो?''

"तब तो इतिहास ही बदल जायेगा।"—अधूरे वाक्य को पूरा किया शची ने।

हारा मन थके राही की भाँति वहुत दूर तक चल नहीं पाता। अब इस विचार पथ पर आचार्य और अधिक आगे बढ़ नहीं पाये। वह मौन ही रह गये। स्वाभाविक था कि लोग इसे उनकी स्वीकृति समझ लेते। बातें अगली योजना की ओर मुड़ चलीं।

इसी बीच शुक्राचार्य के इष्टापूर्त सोम यज्ञ की भी चर्चा आयी। उसे भी आचार्य ने कोई महत्व नहीं दिया। उनकी प्रतिक्रिया साधारण थी,—"ऐसे यज्ञ तो होते ही रहते हैं?"

कच के साहसिक संकल्प के बाद भी इन्द्र की आकृति पर उत्साह की आभा दीख नहीं पड़ी। वे योजना के अगले सोपानों के सम्बन्ध में सोचते रहे।.... और जब उन्होंने अनुभव किया कि हर व्यक्ति की प्रश्नवाचक दृष्टि केवल मेरी आकृति पर टिकी है, तब बड़े टूटे मन से बोले—"बात तो ठीक है, पर कच शुक्राचार्य के यहाँ जाये, उन्हें अपना गुरु बनाने के लिए राजी करे और फिर संजीवनी विद्या सीखे।....यह सब इतनी लम्वी प्रकिया है कि तबतक तो असुर देवों का नाश ही कर डालेंगे।"

समाधान के गर्भ से यह दूसरी समस्या का जन्म था। अन्तरंग कक्ष जैसे आकाश से धरती पर उतरा। वातावरण गहरा हो गया। कुछ समय पूर्व छटपटाती हवा इस समय मर गयी थी। दीप शिखाएँ अकम्पित थीं।

"यदि आचार्य कुमार को संजीवनी विद्या सीखने भेजना है तो युद्ध को टालना ही पड़ेगा।"—इस बार जयन्ती की वैखरी फूटी। सबका ध्यान सहज ही उसकी ओर खिचा। कच की दृष्टि पहली बार कुछ विचित्र ढंग से उस पर पड़ी। देखने की इच्छा होते हुए भी जयन्ती की आँखें झुक गयीं। उसका सलज्ज व्यक्तित्व माता-पिता और आचार्य के समक्ष नयनों का आलिंगन संभाल नहीं पाया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"इसके सिवा कोई चारा नहीं है।"—कच ने कहा।

"....पर युद्ध टाला कैसे जायेगा ?"—इन्द्र ने चिन्ता व्यक्त की।

"यह तो मन्त्रि परिषद के विचार का विषय है।"—पहली बार आचार्य के मुख से हँसी फूटी।

अच्छा, मैं अभी महामात्य को बुलाता हूँ, शायद कोई मार्ग निकल ही आये।"—इतना कहकर उन्होंने करतल ध्वनि की। एक परिचारिका भीतर आयी। उन्होंने अविलम्ब महामात्य को बुलाने का आदेश दिया। फिर बड़ी विनम्रता से महाराज कच की ओर उन्मुख हो बोले,—"देखिए अब तक जो बातें हुई हैं, उन्हें हमें अत्यन्त गोपनीय ही रखनी चाहिए।... हमारा दुर्भाग्य यह भी है कि हमारे यहाँ की एक-एक बात असुरराज वृषपर्वा को मालूम हो जाती है।"—इस सिलसिले में उन्होंने माधुरी के सन्दर्भ का संक्षिप्त उल्लेख भी किया।

"....यह तो बड़ी कृतघ्नता है राजन्!...प्रेम में विश्वास और राजनीति में गोपनीयता के स्खलित होने पर कुछ नहीं बचता।"—बृहस्पति ने नीति-वाक्य कहा।

तब तक महामात्य का प्रवेश हुआ। उसे देखते ही महाराज ने कहा,—"कोई ऐसी युक्ति नहीं निकाली जा सकती कि युद्ध कुछ दिनों के लिए टल जाये।"

"यह कैसे हो सकता है ?"—महामात्य सोचने लगा। महाराज ने उन्हें बैठने का संकेत किया। उनकी आकृति के भाव से स्पष्ट लगा जैसे वे कुछ सोच नहीं पा रहे हैं।

"यदि उचित समझें तो आप इस विषय पर मन्त्रिपरिषद् आहूत कर लें।"—आचार्य ने कहा।

"मन्त्रि परिषद् क्या करेगी ?"—महामात्य मुस्कराये,—रणनीति कहती है कि हारने वाले का युद्ध स्थगित करने का प्रस्ताव पराजय स्वीकार कर लेने के बराबर ही है।....जानते हैं, इसका परिणाम असुरों पर क्या होगा ?

वाणी ने नहीं, पर सभी के नेत्रों ने प्रश्न दुहराया,—"क्या होगा ?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"महाराज का सिंहासन उनके लिए और निकट हो जायेगा।"

अपने सिंहासन पर विपत्ति की छाया का अनुभव करते ही इन्द्र व्यग्र हो उठे, क्योंकि स्वयं से अधिक उन्हें सिंहासन प्रिय था। वह लगभग बड़बड़ाने जैसे स्वर में बोले,—"नहीं ·· नहीं, ऐसा नहीं होना चाहिए।"

"देव सृष्टि का विनाश भले ही हो जाये पर तेरा सिंहासन न जाये।···· इन्द्र तेरी यह राजलिप्सा ही तेरे यश को चबा रही है।"—आचार्य का मन बोल उठा, पर वे चुप ही रहे। उनकी वाणी की दृढ़ता मात्र इतना कह सकी,—"युद्ध टालने के अतिरिक्त और दूसरा मार्ग भी तो नहीं।"

फिर मौन का संक्षिप्त अन्तराल। कुछ घना लगता अन्धकार। सबके मस्तक पर रेखाएँ उभरी हुईं। बहुत हाथ-पैर मारकर निराशा की अतल गहराई से एक सूत्र खोज कर निकालते हुए महामात्य बोले,—"एक बात हो सकती है। ·· हम असुरराज वृषपर्वा के पास युद्ध स्थगन का प्रस्ताव न भेज कर एक सन्देश भेज दें कि इन दिनों देवाधिदेव अस्वस्थ हैं। अब वे कुछ दिनों के लिए युद्ध क्षेत्र में नहीं जा सकेंगे।"

"तब इसका क्या प्रभाव होगा?"—इन्द्र ने तत्क्षण पूछा।

"इसका प्रभाव होना चाहिए युद्ध का स्थगन!"—दक्षता एवं अनुभव से बोझिल मुस्कराहट उनके अधरों पर खिली। वे बोलते गये,—" ·· क्योंकि रणनीति कहती है कि भले ही विजय सम्भावित हो, यदि शत्रु रुग्ण हो जाता है और वह समरांगण में नहीं आता, तो युद्ध बन्द कर देना चाहिए।"—महामात्य की आकृति पर नयी आभा ने जन्म लिया। आचार्य ने भी उसकी बुद्धि की सराहना की। किन्तु उन्होंने सन्देह व्यक्त किया,—"क्या आप समझते हैं कि आपकी इस युक्ति से वृषपर्वा युद्ध बन्द कर देगा?"

"मुझे तो विश्वास है आचार्य! ·· क्योंकि वह असुर अवश्य है, पर अनीतिक नहीं है।"

"यदि मान लो इन दीवारों से छनकर उनके पास समाचार पहुँच जाये कि मेरी रुग्णता की बात झूठी है, तब क्या होगा?"—संशय की माधुरी इन्द्र के मन से अभी हटी नहीं थी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"तब वही होगा, जो होना चाहिए।"—महामात्य हँस पड़ा, किन्तु शीघ्र ही उसे आभास हुआ कि मैं सामान्य शिष्टाचार से दूर जा रहा हूँ। उसने अपनी स्वाभाविक हँसी रोकी और गम्भीर हो बोला,—"सफलता शंकित मन के निकट कभी नहीं आती राजन्!"

इन्द्र के अहं को यह अच्छा नहीं लगा कि महामात्य उन्हें नीति की शिक्षा दें। वे झुँझलाते हुए तिक्त स्वर में बोले,—"नैतिक शिक्षा देने का कार्य आचार्य तक ही सीमित रहने दें महामात्य!···आप मेरी अस्वस्थता का समाचार वृषपर्वा के यहाँ ले जाने की तैयारी करें।"

"किन्तु महाराज, मेरे समाचार ले जाने से कोई लाभ नहीं होगा।"—बड़े विनीत भाव से महामात्य ने कहा।"

"क्यों?"

"यदि मैं समाचार लेकर जाऊँगा तो हो सकता है असुरराज मुझसे न मिले।···आपका महामात्य हूँ। मेरी पहुँच उनके महामात्य तक ही होगी। मैं जोर भी नहीं दे सकता कि मैं महाराज से मिलकर ही समाचार कहूँगा।···ऐसा करने में सन्देह की भी सम्भावना अधिक है।"

"क्यों?···मेरी अस्वस्थता का समाचार महामात्य को देने से काम नहीं चलेगा?"—इन्द्र ने अत्यन्त सहज भाव से कहा।

"महामात्य को सूचना देने पर उस पर विचार होने लगेगा। मीन-मेष निकाला जाने लगेगा।"—क्षण भर के लिए वे कुछ सोचकर रुके, फिर बोले,—"महामात्य के पास आयी कोई भी सूचना विचार की परिधि के भीतर ही रहती है और महाराज के पास सीधे पहुँचा समाचार शीघ्र ही निष्कर्ष का रूप ले लेता है।"

"विचार और निष्कर्ष में परिणात्मक अन्तर तो है ही, गुणात्मक अन्तर भी हैं।"—आचार्य ने कहा,—"महामात्य ठीक कहते हैं राजन्!"

"··· तो यह समाचार किससे भेजा जाये?···आप ही लोग बताइये।"—इन्द्र ने पूछा।

"मेरे विचार से तो राजकुमार इसके लिए सबसे उपयुक्त व्यक्ति हैं।"—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

महामात्य ने कहा,—"यदि आप उचित समझें तो उनके साथ दो-चार अंग रक्षक भी भेज दीजिए।"

"क्यों? उसके साथ आप नहीं जा सकते?"—पता नहीं क्यों महाराज महामात्य को अवश्य भेजने के पक्ष में थे, पर उनका कहना था, मेरे जाने से काम बनने के स्थान पर बिगड़ सकता है, इस बार भी उन्होंने ऐसी ही बात कही,—"मेरे जाने पर तो पहले की ही स्थिति रहेगी। मैं महामात्य का अतिथि होकर ही लौट आऊँगा। फिर राजकुमार जायें या न जायें। कोई परिस्थिति में अन्तर नहीं पड़ता।"

इस बार शची ने भी महामात्य की बात का समर्थन किया। महाराज लगभग झुँझला उठे,—"आप लोग जयन्त, जयन्त तो कहते हैं, पर जयन्त है कहाँ?....पता नहीं वह जाना भी चाहेगा या नहीं।"

फिर जयन्त की अनुपस्थिति और उसकी मनःस्थिति की संक्षिप्त सूचना देते हुए जयन्ती ने बताया कि वह अपने कक्ष में विश्राम कर रहा है।

कच एकदम उठ खड़ा हुआ। "वह जायेगा क्यों नहीं?"—वह बोला। फिर जयन्ती की ओर देखकर उसने कहा—"आप मुझे उसके पास ले चलिए।"

कच में आयी इस अचानक तत्परता के पीछे युवा मन की अकुलाहट थी। युवा पीढ़ी का मनोविज्ञान था। वह सोच रहा था कि जब तात की असमर्थता का दायित्व मैं ओढ़ रहा हूँ तब इन्द्र की पराजय के दायित्व से उनका पुत्र क्यों भागता है?"

कक्ष से निकल कर कुछ दूर आगे बढ़ने के बाद ही उसने जयन्ती से कहा,—"....ये बूढ़े तो कगार के वृक्ष हैं। कब काल का प्रवाह आये और इन्हें बहा ले जाये। भविष्य तो हमीं लोगों का है। यदि हम ही सचेष्ट नहीं होंगे तो पुरानी मान्यताओं को मरे बन्दरिया के बच्चे की तरह छाती से चिपकाये ये बूढ़े क्या करेंगे?"—कच के इस आवेगपूर्ण कथन में भी एक चुलबुलाहट थी, जो जयन्ती को बहुत अच्छी लगी।

उसकी सुडौल आकृति पर ऊपर से जड़ी एक जोड़ी बड़ी-बड़ी आँखें इस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बीच कई बार जयन्ती की ओर मुड़ चुकी थीं, केवल अपने कथन की प्रतिक्रिया जानने के लिये, किन्तु जयन्ती को उन आँखों में अपना ही मन दीख पड़ा। उसे लगा जैसे उनमें उसके प्रति एक ललक है, एक तृष्णा है। वह स्वतः अनुभव करने लगी कि वह कच के बहुत निकट सरकती चली जा रही है।

उसने कच के कथन के प्रति अपनी कोई प्रतिक्रिया तो व्यक्त नहीं की, पर भीतर ही भीतर कुछ सोचती और मगन होती रही। अब वह उद्यान पार कर अन्तःपुर के दूसरे पक्ष की ओर बढ़ रही थीं। रात बढ़ती जा रही थी थी। स्थान-स्थान पर जलते दीपक की लौ एक प्रहर पुरानी पड़ चुकी थी। विशाल उपशाला में कोई नहीं था। ऊपर गवाक्ष में बैठे कपोत के जोड़े गुटुर गूँ····गुटुर गूँ करते धुधलके में भी दिखायी पड़ रहे थे। चलते-चलते ही जयन्ती कुछ क्षणों तक उन्हें अपलक देखती रही। फिर पता नहीं कैसे उसका दाहिना हाथ कच के वृषभ-स्कन्ध की ओर बढ़ चला। स्पर्श होते ही वह चौंक पड़ा मानो उसके नस-नस में तड़ित दौड़ गयी हो। "दूर रहो।"—वह झिझका।

जयन्ती को उससे ऐसी आशा नहीं थी, फिर भी वह मुस्कराती रही। "क्या हो गया कि चौंक पड़े।" उसकी मनःस्थिति ने वाणी ली।

"मेरे लिए नारी का स्पर्श भी वर्जित है।····और फिर कुमारी का ··।"—उसकी ध्वनि में तीखापन था, अजीब कड़ुवाहट थी।

"क्यों ?"—जयन्ती की सम्पूर्ण मुस्कराहट लगभग इस प्रश्न में सिमिट-सी गयी।

"····क्योंकि मैं ब्रह्मचारी हूँ।"

"तभी बड़े लड़ाकू मालूम होते हो।"—जयन्ती एक बार फिर इठलायी।

"क्या कहा, लड़ाकू ?···तुम्हारा तात्पर्य ?"

"यही कि ब्रह्मचारी बड़े लड़ाकू होते हैं।····रात भर अपने से लड़ते हैं और दिन में दूसरों से।"—इतना कहकर जयन्ती खुलकर हँसी। इसी हँसी ने कच को जयन्ती का व्यंग्य समझा दिया। "यह रात ही है न ? मैं अपने से कहाँ, तुमसे लड़ रहा हूँ।"—कच बोला।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"जब तक व्यक्ति शय्या पर नहीं जाता तब तक उसकी रात नहीं होती।" —जयन्ती एक बार फिर खिलखिलायी।

"....तो यही समझो रात में मैं स्वयं को जीतता हूँ और दिन में तुम्हारे ऐसे लोगों को।"—कच के स्वर में विश्वास की कमी नहीं थी।

"मुझसे भले ही जीत जाओ, पर उससे नहीं जीत सकोगे।"—जयन्ती ने कहा। अब लोग जयन्त के द्वार तक पहुँच चुके थे।

"किससे ?"—द्वार में प्रविष्ट होते हुए कच ने पूछा।

"माधुरी से।"—जयन्ती बोली।

'माधुरी' शब्द सुनते ही जयन्त सोता-सोया एकदम उठ बैठा। "कहाँ है माधुरी ? कहाँ है वह नागिन ?"—वह दाँत पीसने लगा।

"घबराओ नहीं, जहाँ कहीं भी होगी मैं उस नागिन का विषदन्त उखाड़ लूँगा।"—कच ने कहा और बड़े अपनत्व से जयन्त का मस्तक सहलाने लगा। ममत्व का स्पर्श पा जयन्त का दाह बैठने लगा। कच भी उसी शय्या पर बैठ गया और जयन्ती सामने के मंचक पर।

मनःस्थिति और स्वास्थ्य से आरम्भ होकर बातों का आगे बढ़ता क्रम जयन्त को वस्तुस्थिति का ज्ञान करा गया। अन्त में उसे अपना दायित्व सौंपते हुए कच ने कहा—"महाराज की अस्वस्थता का समाचार लेकर असुरराज के यहाँ तुम्हें ही जाना होगा।"

"तुम भी चलोगे न ?"—उसने पूछा।

"नहीं, मेरे वहाँ जाने का कोई औचित्य नहीं है।"—इसके बाद कच ने उसके जाने के महत्व और परिणाम पर विस्तार से प्रकाश डाला। जयन्त सोचता रहा।

उसका मौन जब समय की एक सीमा का अतिक्रमण करने लगा तब कच ने पूछा—"क्या सोच रहे हो ?"

"असत्य समाचार देना खतरे से खाली नहीं है।"—उसने पुरानी बात दुहरायी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कच को हँसी आ गयी। उसने पूछा,—"कौन जानता है कि यह असत्य है।"

"हम आप न जानें, पर वहाँ समाचार पहुँच गया होगा।"—निश्चित था कि इतना कहते-कहते माधुरी की आकृति उसके मन में उभरी होगी।

कच ने अनुभव किया कि असुरों की गुप्तचर व्यवस्था से पूरा प्रासाद बुरी तरह आतंकित है। उसने उसे आश्वस्त किया,—"अब ऐसा सम्भव नहीं है। तुम भले ही सोते रहो, पर इन्द्र का प्रासाद जाग रहा है।"—इतना कहकर वह हँसा और जयन्त से लिपट गया।

थोड़ी देर बाद कच पुनः बोला,—"तुम महाराज के पुत्र अवश्य हो, किन्तु वृषपर्वा के यहाँ इन्द्र के दूत बनकर जा रहे हो।....दूत अवध्य होता है, इसलिए तुम्हारा कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता।"

"मान लो युद्ध कुछ दिनों के लिए टल ही जाता है, फिर क्या होगा?"—जयन्त ने पूछा।

"इसकी चिन्ता तुम मत करो।...आगे का दायित्व मेरे ऊपर है।...अच्छा अब सो जाओ। कल प्रातः सूर्योदय के पूर्व मेष लग्न में ही यात्रा आरम्भ कर देनी होगी।"—इतना कहकर कच बाहर निकलने को हुआ। फिर अचानक उसे जैसे कुछ याद हो आया। उसने सावधान करते हुए बड़े गम्भीर स्वर में कहा,—"देखो, सोते समय द्वार बन्द कर लेना, ऐसा न हो कि वह चली आये!"

"कौन?"—प्रश्न के साथ ही जयन्त का मुख खुला का खुला रह गया।

"अरे वही नागिन!"—उसका स्पष्ट संकेत माधुरी के लिए था। कच के नेत्रों में एक विचित्र भंगिमा थी। जयन्त कट कर रह गया।

हँसता हुआ कच जयन्ती के साथ द्वार के बाहर आया। रात गाढ़ी होने लगी थी। पूर्व के आकाश में चमकते हुए मंगल पर एक बादल का टुकड़ा आ गया था। उसकी ओर संकेत करते हुए कच ने जयन्ती से कहा,—"वह देखो, युद्ध का नक्षत्र बादलों में छिप रहा है। शकुन अच्छा है, अवश्य ही लड़ाई रुक जायेगी।"

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

□□□

सूर्य पश्चिम में वढ़ चला था। दिन डूबने को था।

जयन्त का रथ वृषपर्वा की राजधानी के निकट पहुँच चुका था। एक विचित्र कोलाहल सन्नाटे को चीरता चला आ रहा था। अवश्य कोई उत्सव होगा। असुरों के झुण्ड के झुण्ड राजपथ पर एकत्र हो रहे होंगे। जयन्त ने अपने रथ पर से ही धूल का गुब्बार उड़ते देखा, जैसे रौंदी गयी धरती की प्रेत आत्मा आकाश में चक्कर काटती हुई बढ़ी चली जा रही हो। हो सकता है, वहुत से घोड़े एक साथ दौड़ रहे हों या कोई शस्त्र प्रदर्शन हो रहा हो। जयन्त कुछ सोचकर रुक गया। उसके पीछे के रथ पर अंगरक्षक थे। उन्हें भी रुक जाना पड़ा। शीघ्र ही उनमें से एक उतर कर राजकुमार की सेवा में आया और विनीत भाव से वोला,—"जल की आवश्यकता है क्या महाराज ?"

राजकुमार ने नकारात्मक सिर हिलाया।

"तब रुकने का प्रयोजन जानने की धृष्टता कर सकता हूँ ?····"—शिष्टाचार में डूबा यह उसका दूसरा प्रश्न था।

राजकुमार लगभग अब भी चुप था। कुछ समय वाद वह सोचते हुए वोला,—"कोलाहल सुन रहे हो न ?····लगता है, कोई कार्यक्रम चल रहा है।"

"कार्यक्रम चलता है, तो चला करे।····इससे क्या ? हम तो वृषपर्वा के अतिथि हैं। हमें कौन रोक सकता है ?"—अंगरक्षक की ध्वनि में विश्वास था, पर जयन्त उस विश्वास को पकड़ नहीं पा रहा था। पराजय की भावना ने उसे लगभग निचोड़ लिया था। वढ़ते हुए कोलाहल से वह हतप्रभ होता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जा रहा था। देवताओं की डूबती हुई अस्मिता उसे धूल में उड़ती दिखायी पड़ रही थी।

अंगरक्षकों के कहने पर वह बढ़ चला, पर रथ की गति उसकी मन्द थी। ज्यों-ज्यों नगर निकट आता गया कोलाहल बढ़ता गया। अवश्य ही यह विजयोन्माद है ? मैं क्यों चला हूँ ? कौन सुनेगा कि पिता जी अस्वस्थ हैं ? वह सोचने लगा। बाहर की ही तरह उसके मस्तिष्क में भी गुबार उठने लगा। अन्धड़ में पड़ा व्यक्ति जैसे आँखें बन्द कर स्थिर हो जाता है, वैसे ही उसके मस्तिष्क ने भी आँखें बन्द कर लीं और स्थिर हो गया। रथ बढ़ता रहा।

कुछ दूर चलने के बाद उसे पता चला कि महाराज की सवारी निकल रही है। यह नित्य का कार्यक्रम है। असुरराज की सन्ध्या ऐसी ही कोलाहलमय होती है। दम तोड़ते हुए साहस ने अँगड़ाई ली। जयन्त की आकृति के फीके रंग पर एक प्रभा दौड़ गयी जब कि आकाश प्रभाहीन हो चला था।

अचानक एक असुर सैनिक ने जयन्त का रथ रोक दिया। शीघ्र ही अंगरक्षकों का रथ पीछे से आगे आया। "इस रथ को बढ़ने दो।"—अंगरक्षकों में से एक ने कहा।

"कौन होते हो तुम इस प्रकार की आज्ञा देने वाले ?"—सैनिक ने असि खींच ली। जयन्त के मन ने धीरे से कहा,—"अपने द्वार पर कुत्ता भी शेर होता है।" उसने बड़ी योग्यता से स्थिति सँभाली और बड़े सामान्य भाव से बोला,—"मैं महाराज से मिलना चाहता हूँ।"

"आप महाराज से मिलना चाहते हैं ?"—वह चकित हो देखने लगा,—"आप तो देवताओं जैसे लगते हैं।"

"लगता ही नहीं हूँ, वस्तुतः हूँ भी।"—जयन्त हँसा। उसकी आकृति से उभरते हुए आतंक पर एक उत्तरीय पड़ गया, जो सैनिक की मनःस्थिति को उलझा लेने के लिए कम नहीं था। "असुरराज के यहाँ इन देवताओं का क्या काम ?"—वह सोचने लगा।

"क्या सोचते हो ?"—जयन्त पुनः हँसा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

असुर सैनिक को झटका-सा लगा,—"कुछ नहीं।"—उसके मुख से निकल पड़ा, फिर सँभलते हुए बोला,—"मैं सोच रहा हूँ कि आपको किधर से भेजा जाये, क्योंकि इधर तो भीड़ बढ़ती ही जायेगी।"—फिर उसने एक दूसरे रास्ते की ओर संकेत कर रथ मोड़ने के लिए कहा।

जयन्त ने रथ मोड़ तो दिया, किन्तु उसका मन सोचता रहा,—जब रोज ही सवारी निकलती है, नित्य का ही यह कार्यक्रम है तब क्या बात है कि इतना कोलाहल है? सन्ध्या भ्रमण पर तो मेरे पिताजी भी निकलते हैं, पर ऐसा कुछ नहीं होता।

"क्या हम लोग सवारी नहीं देख सकते?"—जयन्त का कुतूहल प्रश्न बन गया।

"आप लोग इधर से ही जाइएगा न?····यदि देखने की इच्छा हो तो उस पहाड़ी पर से देख लीजिएगा।"—उसने तर्जनी से पूर्व की ओर संकेत किया।

"इतनी दूर से?"

"अरे, इतनी दूर से देखने के लिए भी लौह का हृदय होना चाहिए।"—एक रहस्य भरी मुस्कराहट असुर सैनिकों के अधरों की बीच इठला उठी।

जयन्त का रथ निर्दिष्ट पथ पर बढ़ चला। सैनिकों की मुस्कराहट अबूझ पहेली की तरह उसके नेत्रों के समक्ष जलती और बुझती रही। पहाड़ी के निकट पहुँचते ही जयन्त ने रथ छोड़ दिया और शिखर की ओर पैदल ही दौड़ा। उसके अंगरक्षकों ने भी ऐसा ही किया।

दूर से आने के कारण कोलाहल कुछ मन्द पड़ गया था किन्तु उसका घनत्व बढ़ गया था। अब जो कुछ दिखायी दिया उससे जयन्त ही नहीं, अंगरक्षक भी अवाक् रह गये। वृषपर्वा एक विशाल रथ पर बैठा था। उसी के बगल में शुक्राचार्य भी थे। पता नहीं क्यों वे आश्रम छोड़कर नगर में चले आये थे? रथ में अश्व या वृषभ नहीं जुते थे, वरन् जुते थे—देवगण। ऐसे देवता जो युद्ध में बन्दी बना लिये गए थे। उनकी संख्या सैकड़ों में थी। ये बन्दी केवल वृषपर्वा के रथ को ही नहीं खींच रहे थे, वरन् उसके पीछे लगे मंत्रिमंडल के रथ को भी उन्हें ही खींचना पड़ रहा था। वे बेचारे पसीने से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जा रहा था। देवताओं की डूबती हुई अस्मिता उसे धूल में उड़ती दिखायी पड़ रही थी।

अंगरक्षकों के कहने पर वह बढ़ चला, पर रथ की गति उसकी मन्द थी। ज्यों-ज्यों नगर निकट आता गया कोलाहल बढ़ता गया। अवश्य ही यह विजयोन्माद है? मैं क्यों चला हूँ? कौन सुनेगा कि पिता जी अस्वस्थ हैं? वह सोचने लगा। बाहर की ही तरह उसके मस्तिष्क में भी गुबार उठने लगा। अन्धड़ में पड़ा व्यक्ति जैसे आँखें बन्द कर स्थिर हो जाता है, वैसे ही उसके मस्तिष्क ने भी आँखें बन्द कर लीं और स्थिर हो गया। रथ बढ़ता रहा।

कुछ दूर चलने के बाद उसे पता चला कि महाराज की सवारी निकल रही है। यह नित्य का कार्यक्रम है। असुरराज की सन्ध्या ऐसी ही कोलाहलमय होती है। दम तोड़ते हुए साहस ने अँगड़ाई ली। जयन्त की आकृति के फीके रंग पर एक प्रभा दौड़ गयी जब कि आकाश प्रभाहीन हो चला था।

अचानक एक असुर सैनिक ने जयन्त का रथ रोक दिया। शीघ्र ही अंगरक्षकों का रथ पीछे से आगे आया। "इस रथ को बढ़ने दो।"—अंगरक्षकों में से एक ने कहा।

"कौन होते हो तुम इस प्रकार की आज्ञा देने वाले?"—सैनिक ने असि खींच ली। जयन्त के मन ने धीरे से कहा,—"अपने द्वार पर कुत्ता भी शेर होता है।" उसने बड़ी योग्यता से स्थिति सँभाली और बड़े सामान्य भाव से बोला,—"मैं महाराज से मिलना चाहता हूँ।"

"आप महाराज से मिलना चाहते हैं?"—वह चकित हो देखने लगा,—"आप तो देवताओं जैसे लगते हैं।"

"लगता ही नहीं हूँ, वस्तुतः हूँ भी।"—जयन्त हँसा। उसकी आकृति से उभरते हुए आतंक पर एक उत्तरीय पड़ गया, जो सैनिक की मनःस्थिति को उलझा लेने के लिए कम नहीं था। "असुरराज के यहाँ इन देवताओं का क्या काम?"—वह सोचने लगा।

"क्या सोचते हो?"—जयन्त पुनः हँसा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

असुर सैनिक को झटका-सा लगा,—"कुछ नहीं।"—उसके मुख से निकल पड़ा, फिर सँभलते हुए बोला,—"मैं सोच रहा हूँ कि आपको किधर से भेजा जाये, क्योंकि इधर तो भीड़ बढ़ती ही जायेगी।"—फिर उसने एक दूसरे रास्ते की ओर संकेत कर रथ मोड़ने के लिए कहा।

जयन्त ने रथ मोड़ तो दिया, किन्तु उसका मन सोचता रहा,—जब रोज ही सवारी निकलती है, नित्य का ही यह कार्यक्रम है तब क्या बात है कि इतना कोलाहल है? सन्ध्या भ्रमण पर तो मेरे पिताजी भी निकलते हैं, पर ऐसा कुछ नहीं होता।

"क्या हम लोग सवारी नहीं देख सकते?"—जयन्त का कुतूहल प्रश्न बन गया।

"आप लोग इधर से ही जाइएगा न?···यदि देखने की इच्छा हो तो उस पहाड़ी पर से देख लीजिएगा।"—उसने तर्जनी से पूर्व की ओर संकेत किया।

"इतनी दूर से?"

"अरे, इतनी दूर से देखने के लिए भी लौह का हृदय होना चाहिए।"—एक रहस्य भरी मुस्कराहट असुर सैनिकों के अधरों की बीच इठला उठी।

जयन्त का रथ निर्दिष्ट पथ पर बढ़ चला। सैनिकों की मुस्कराहट अबूझ पहेली की तरह उसके नेत्रों के समक्ष जलती और बुझती रही। पहाड़ी के निकट पहुँचते ही जयन्त ने रथ छोड़ दिया और शिखर की ओर पैदल ही दौड़ा। उसके अंगरक्षकों ने भी ऐसा ही किया।

दूर से आने के कारण कोलाहल कुछ मन्द पड़ गया था किन्तु उसका घनत्व बढ़ गया था। अब जो कुछ दिखायी दिया उससे जयन्त ही नहीं, अंगरक्षक भी अवाक् रह गये। वृषपर्वा एक विशाल रथ पर बैठा था। उसी के बगल में शुक्राचार्य भी थे। पता नहीं क्यों वे आश्रम छोड़कर नगर में चले आये थे? रथ में अश्व या वृषभ नहीं जुते थे, वरन् जुते थे—देवगण। ऐसे देवता जो युद्ध में बन्दी बना लिये गए थे। उनकी संख्या सैकड़ों में थी। ये बन्दी केवल वृषपर्वा के रथ को ही नहीं खींच रहे थे, वरन् उसके पीछे लगे मंत्रिमंडल के रथ को भी उन्हें ही खींचना पड़ रहा था। वे बेचारे पसीने से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लथपथ थे। स्लथ थे। उनमें से कोई-कोई तो गिर पड़ता था। तब पार्श्व में चल रहे असुर सैनिक उन पर कशाघात करते थे, तब वे छटपटाते थे, जल से निकाली मछली की तरह। "हे प्रभू, यह कितना निर्मम है।"—जयन्त बोल नहीं पाया, पर उसे लगा उसके अस्तित्व पर यह प्रहार हो रहा है।

वह दूर से देख रहा था। कुछ बन्दियों के तन पर रक्त चुकचुका आया था। पृष्ठभाग का प्रस्वेद भी लाल हो गया था। मार्ग के दोनों ओर एकत्र भीड़ महाराज तथा असुर गुरु का जयजयकार कर रही थी। बीच-बीच में रथ में जुते देवताओं पर ढेले भी पड़ रहे थे। इससे यदि किसी देवता का सिर फूटता, वह विचलित होता तो उस कोलाहल में एक क्रूर अट्टहास नाच उठता था।

देवताओं की ऐसी दुर्दशा जयन्त से देखी नहीं गयी। उसकी आँखों में खून उतर आया। शिराओं में रक्त उबलने लगा, फिर भी वह मूक द्रष्टा था। ज्वालामुखी भीतर ही भीतर धधक रहा था, पर लावा उगल न सका।

अंगरक्षक भी आपे से बाहर हो रहे थे। उनमें से एक तो प्रत्यंचा चढ़ाने लगा। "यह क्या कर रहे हो?"—जयन्त ने बड़े शान्त भाव से उसे रोका।

"...पर महाराज, अब देखा नहीं जा रहा है।"

"उस असुर सैनिक ने क्या कहा था?"—जयन्त ने अपनी आकृति पर एक बनावटी मुस्कराहट चिपका ली,—"कहा था न कि इसे देखने के लिए लौह हृदय चाहिए।" ...और वह एक नाटकीय हँसी हँस पड़ा तथा उस अंगरक्षक की पीठ ठोंकते हुए बोला,—"हिम-सा पिघल जाने वाला हृदय कभी आग नहीं उगल सकता मित्र! ...चलो और अपनी अग्नि को सुरक्षित रखो।"

सभी उदास आकृतियाँ पहाड़ी से उतरने लगीं, मानो राख में लिपटे अंगारे ढुलकते चले आ रहे हों। ...अब रथ पर सब आकर सीमिट गये या विषम परिस्थिति की अदृश्य मंजूषा में बन्द हो गये।

जयन्त ने कुछ कहा तो नहीं, पर उसकी हर भंगिमा यह कह रही थी कि स्वयं का सन्तुलन बनाये रखो। इस समय हमारा जरा-सा भी उतावलापन,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हमारी छोटी-सी भूल देवताओं का वर्तमान नष्ट कर देगी, भविष्य निगल जायेगी।

रथ बढ़ता चला। थोड़ी दूर जाकर वह राजपथ में मिल गया। सवारी तो निकल गयी थी, पर गुबार अब भी था। लोग उछल-कूद रहे थे। अचानक जयन्त को देखते ही वे अभद्र मुद्राएँ बनाने लगे। कोई 'हो हो' करता। कोई अँगूठे दिखाता और कोई रथ के सामने नाचने ही लगता। ऐसी स्थिति में विवश होकर रथ रोक देना पड़ा, तभी एक कर्कश ध्वनि कानों से टकरायी,—"हारते राजा का सन्धि प्रस्ताव मरते व्यक्ति से हाथ मिलाना है।....हा-हा।" एक खिलखिलाहट भीतर तक चुभ गयी।

इसी बीच किसी ने खींच कर एक नीलोत्पल जयन्त के कपोलों पर 'चप' से मारा। उसने मुड़कर देखा, दूर पर खड़ी एक प्रगल्भ युवती अपनी वेणी समेट रही थी। जयन्त ने चुपचाप उधर से दृष्टि हटा ली। बंधे जल में पत्थर मारने पर भी जल शान्त ही रहा।

जयन्त ने अनुभव किया कि मेरे आने का समाचार तड़ित तरंग-सा सारे नगर में दौड़ गया है। लोग आभास करने लगे हैं कि मैं सन्धि का प्रस्ताव लेकर आया हूँ। विजयोन्माद के समक्ष सन्धि का प्रस्ताव पर्वत से गिरते निर्झर को थमने की सलाह है। भला इस पर कौन ध्यान देता है। जयन्त हर एक की उपेक्षा एवं परिहास का पात्र बनता जा रहा था। इतना निरादर उसने जीवन में कभी नहीं सहा था। कदाचित् इसी भय से तो महामात्य नहीं आया?—उसने सोचा, पर अब इसे सोचने से लाभ क्या था?

जयन्त जब राज प्रासाद के मुख्य द्वार पर पहुंचा, सन्ध्या अपना अंचल समेट चुकी थी। अन्धकार बढ़ चला था। कोलाहल फनफनाकर मदारी की पिटारी में बन्द हो गया था।

चाकर विहीन प्रतीक्षालय में उन्हें टिका दिया गया था।

"महाराज, अब सहन के बाहर है।"—एकान्त देखकर एक अंगरक्षक बोला।

"तो क्या कर सकते हो तुम?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"मार या मर सकता हूँ।"

"तुम्हारे मरने से वे देवगण दासत्व से मुक्त हो जायेंगे ?"—जयन्त ने वृषपर्वा के रथ में जुते देवताओं के सन्दर्भ में कहा। वे अब भी उनकी आँखों के सामने तड़प रहे थे।

राजकुमार का यह प्रश्न अनुत्तरित ही रह गया। विवशता भरा मौन सबकी अधरों पर अँगुली धरे बैठा रहा। सब चुप थे, चुप रह गये। अन्धकार गाढ़ा हो चला, किन्तु अभी तक कोई प्रतीक्षालय में दीया जलाने भी नहीं आया।

"हम इसी अंधेरे में रहेंगे क्या ?"—एक अंगरक्षक ने पूछा।

"हमें इस अन्धकार से ही ज्योति किरण ढूँढ़ कर निकालनी है।"—जयन्त ने कहा। फिर एक गम्भीर चुप्पी उस अंधेरे से लिपट गयी।

कुछ देर बाद दीप जलाने वाले तीन व्यक्ति आये। एक काष्ठ सोपान लगाता। दूसरा उस पर चढ़ता और जलाता। तीसरा मात्र निरीक्षण करता। पहला दीप जलते ही दिखायी पड़ा, तीनों मुस्करा रहे हैं। बाण जैसी चुभती मुस्कराहट जयन्त अपने धैर्य कवच पर झेलता रहा।

दीप जलाने वाले भी चले गये। अब मात्र दीपक की काँपती लौ रह गयी थी। कितनी घुटन थी उस मन्द प्रकाश में! "स्वागत-सत्कार करना तो दूर था, कोई बात करने वाला भी नहीं।....आखिर कहाँ आ गया हूँ मैं ?"—जयन्त की अहमन्यता कब तक दबायी जा सकती थी, पर वह कर ही क्या सकता था ? यदि उठकर अब चलना भी चाहे, तो भी असम्भव था। असमर्थता चारो ओर से घिरती चली आ रही थी।

थोड़ी देर बाद उपाहार और मदिरा आयी। दिन भर के भूखे थे, उन्हें तो गिद्ध की तरह टूट पड़ना चाहिए था। फिर भी ग्रहण करने में कोई उत्साह नहीं था। ऐसा लगा जैसे बन्दियों के लिए जलपान आया हो।....किन्तु मदिरा थी, मनस्ताप को बुझा देने में शायद समर्थ हो। चषकों में उड़ेली जाने लगी। घुटन को कल-कल में डूबोने की चेष्टा की गयी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सबसे पहले महामात्य ने आकर स्वागत की औपचारिकता वरती। "सन्धि की शर्तें क्या हैं?"—उसने पूछा।

"मैं सन्धि के लिए नहीं आया हूँ।"—जयन्त ने कहा।

"सन्धि के लिए नहीं आये हैं।"—वह चकित ही नहीं हुआ, वरन् उसे आघात-सा लगा,—"महाराज को तो यही सूचना दी गयी है।" उसने कहा और सोचने लगा,—"फिर महामात्य किसलिए पधारे हैं?"—उसने पूछा।

जयन्त ने चारों ओर दृष्टि घुमायी। "यहाँ आपको छोड़ कोई महामात्य नहीं है।"—जयन्त वोला।

"....तो क्या आप सुरपति के महामात्य नहीं हैं?"—असुर महामात्य का मुँह खुला का खुला रह गया। उसने अनुभव किया कि दोनों सूचनाएँ असत्य निकलीं। "क्या आप संधि का प्रस्ताव लेकर आये महामात्य नहीं हैं?"—यह आवाज एक वार फिर उसके भीतर उभरी, पर गले तक आते-आते दब गयी। उसकी आकृति की भंगिमा भय से काली पड़ने लगी। वह बड़ी शिष्टता से वोला,—"मैं आपका परिचय जान सकता हूँ?"

"मैं सुरपति का पुत्र जयन्त हूँ।"

इतना सुनना था कि वह काँप उठा, बुझते लौ के धुएँ की तरह। "क्षमा कीजिएगा, वहुत बड़ी भूल हो गयी।"— कहते हुए वह चला गया। कहा नहीं जा सकता कि इसके बाद कितने पल बीते होंगे। अचानक कुछ लोगों के आने की आहट लगी। वृषपर्वा के साथ कई लोग प्रतीक्षालय में प्रविष्ट हुए।

"क्षमा करना राजकुमार, मैं बड़े धोखे में था।"—उसने बड़े विनीत भाव से झुकते हुए कहा,—"आप मेरे साथ अतिथि कक्ष में चलें।"—वृषपर्वा ने स्वयं जयन्त का हाथ पकड़ा और उसे ले चला। उसके अंग शिथिल थे। पैर लड़खड़ा रहे थे। आवाज भर्राई हुई थी। मुँह से मदिरा की गन्ध आ रही थी।

"उन मूर्खों ने मुझे गलत सूचना दी।....आपके साथ उचित व्यवहार न किया जा सका, इसका मुझे दुःख है।"—अतिथि भवन के सुसज्जित प्रकोष्ठ में आकर उसने कहा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"पर मुझे कोई दुःख नहीं है। गलतियाँ सबसे हो सकती हैं।"—जयन्त नितान्त सामान्य भाव से बोला। स्पष्ट लगा, अब उसकी आवाज तनाव से मुक्त हो रही है।

"आपके लिए भले ही यह कोई बात न हो, पर मेरे लिए तो गम्भीर बात है।....और कितनी गम्भीर है। इसे देखना हो तो मेरे साथ आइए।"—सेवक सेविकाएँ, प्रहरी-प्रतिहारी, सबके सब खड़े के खड़े रह गये, पर असुरराज जयन्त को ले चला। पीछे-पीछे उसके अंगरक्षक भी हो लिये।

प्रासाद के मुख्य भाग से निकल कर उपशाला में होते हुए अस्थायी कारागाह की ओर लोग बढ़े। दोनों ओर काल कोठरियों में पड़े देवता कराह रहे थे। कोई जल के लिए चीख रहा था। किसी से चोट की असह्य वेदना सही नहीं जा रही थी। बड़ा हृदय विदारक दृश्य था। उनमें से कुछ ने सम्भवतः जयन्त को पहचाना भी हो, पर जयन्त था कि हृदय पर पत्थर रखकर सबसे आँखें बचाकर चला जा रहा था। अंगरक्षकों के मन की क्या गति हुई होगी भगवान ही जाने।

"आप युद्ध क्षेत्र में कभी गये हैं?"—वृषपर्वा ने जयन्त से पूछा।

"जी नहीं।"

"....और इन लोगों को भी युद्ध का अनुभव नहीं है।"—अंगरक्षकों के सम्बन्ध में यह असुरराज का दूसरा प्रश्न था।

"नहीं। ये सभी राजप्रासाद को ही अपनी सेवा अर्पित करते हैं।"—जयन्त ने कहा।

"तभी आप लोगों को हमारे गुप्तचर पहचान नहीं पाये।....इसी से तो उनकी यह दशा हो रही है।"—असुरराज हँस पड़े। कारुणिक वातावरण में यह अट्टहास जले पर नमक था, पर इससे वृषपर्वा को क्या लेना-देना। किसी की छटपटाहट बढ़े तो बढ़ा करे।

हम लोग आगे बढ़ते चले जा रहे थे। बन्दीगृह का प्रशस्त प्रांगण समाप्त हुआ। एक ऊँचे चतुस्तर पर पहुँचते-पहुँचते किसी एक व्यक्ति की अनवरत चीखें सुनायी पड़ने लगीं। स्पष्ट लगा कोई कोड़े से बराबर पीटा जा रहा है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"वह देखो।"—इतना कहकर वहीं के एक गवाक्ष से उन्होंने दिखाया। दृश्य दण्ड प्रकोष्ट का था। यह प्रकोष्ट धरती के भीतर बनाया गया था, शायद इसलिए कि दण्डित व्यक्ति की चीत्कार बाहर न सुनायी पड़े। पर इस समय तो पुष्ट प्राचीरों को छेदकर भी चीखें निरन्तर छटपटा रही थीं। जयन्त ने गवाक्ष से देखा, एक व्यक्ति के हाथ-पैर बँधे थे और कुछ व्यक्ति उस पर बराबर कोड़े बरसा रहे थे। कई स्थानों पर तन छिल गया था। निश्चित ही इसे देवता ही होना चाहिए था, किन्तु यह तो असुर है। असुरराज के यहाँ असुरों की ऐसी पिटायी, उसे अपने नेत्रों पर विश्वास ही नहीं हुआ। वह घूर-घूर कर देखता रहा। "आखिर इसका अपराध क्या है ?"—जयन्त बोल पड़ा।

"यही कि यह आप लोगों के सम्बन्ध में ठीक सूचना न दे सका।"—इतना कहकर असुरराज ने उसका परिचय दिया कि यह हमारे यहाँ गुप्तचर विभाग का अमात्य है।

"अमात्य को इतना कठोर दण्ड ?"—जयन्त विचलित हुआ।

"क्यों छोटे लोग ही दण्ड के भागी हो सकते हैं, बड़े नहीं ?" वृषपर्वा मुस्कराया—"जितना बड़ा अधिकारी होगा उसी अनुपात में दण्ड को कठोर होना चाहिए।"

"क्या आप इसे क्षमा नहीं कर सकते ?"

असुरराज जोर से हँस पड़ा। मैरेय में डूबी उसकी खिलखिलाहट अधिक कर्कश हो गयी थी,—"क्षमा करना तो देवताओं का काम है, हम असुर कभी अपराधी को क्षमा नहीं करते।"

"....यदि यह मार खाते-खाते मर गया तो ?" जयन्त के इस कथन पर वृषपर्वा और जोर से हँसा—"मरना....हाँ....हाँ .. हाँ। अब असुर मर नहीं सकते।....हमारे पास शुक्राचार्य हैं।"—निश्चित रूप से इस बार वह जयन्त के अज्ञान पर हँसा था।

जयन्त जब अतिथिशाला में लौटा तब हर ओर अन्धकार निगलती दीप शिखाएँ लपलपा रही थीं। पूरा कक्ष जगमगा रहा था।

पहले की सारी उपेक्षा नये आवभगत से धुल-सी गयी थी। जयन्त अलग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कक्ष में था और उसके अंगरक्षक अलग कक्ष में। असुरराज के वैभव एवं ऐश्वर्य के सम्बन्ध में वह अनेक बार और अनेक मुखों से सुन चुका था, किन्तु आज देखकर चमत्कृत था। कक्ष की प्राचीरों पर अद्भुत चित्रकारी थी, पर सभी मुद्राएँ कामोत्तेजक और विलासिता से भरी हुईं। उन्हीं चित्रों में एक अर्धनग्न युवती का चित्र था। वर्षा में चंपक की वृक्ष की भाँति गदराई देहयष्टि एक अबोध युवक से लिपटी थी। आँखें उसी ओर उलझ गयीं। उसे लगा माधुरी उस पर छा रही है।

चषक में गौड़ीय उड़ेलते हुए एक सेविका मुस्करायी—"चित्र पर इतनी आसक्ति?" जयन्त हड़बड़ा-सा गया—"मैं तो देख रहा था कि अद्भुत कलाकृति है।" मुस्कराते हुए उसने झेंप मिटायी।

"तो आप कला के पारखी हैं?"—सेविका हँस पड़ी।

"हो सकता है, इस चित्र में किसी और की आकृति दिखायी पड़ी हो।"—खिलखिलाहट से लिपटी यह दूसरी आवाज थी।

जयन्त भीतर ही भीतर कट कर रह गया। उसने चषक उठाकर अधरों से लगाया। घूँटें गले के नीचे सरकने लगी। वातावरण यों ही रंगीन था। अब रंगीनतर से रंगीनतम की ओर बढ़ा। सेविकाओं की मुस्कराहटों से भी मादकता टपकने लगी।

पहले तो वह सोचता था कि वृषपर्वा से पिता की अस्वस्थता की बात कैसे कहूँ? कब कहूँ? पर अब वह सब भूल चुका था। मस्तिष्क पर मदिरा छाती जा रही थी, वह भी भाँति-भाँति की मदिरा, रंग-रंग की मदिरा, स्वाद-स्वाद की मदिरा। गौड़ी, माध्वी, कादम्बरी–जिसका चाहो उसका चषक उठा लो।.... जिस सेविका पर वह दृष्टि डालता वह अप्सरा दिखायी देती। वह लगभग भूलने लगा कि वह असुरराज के यहाँ है।

"अब मुझे नींद आ रही है।"—वह लड़खड़ाते स्वर में बोला और पर्यंक पर ढुलक गया। सेविकाओं ने आँखों ही आँखों में कुछ बातें कीं और उनमें से दो सुन्दर नेत्रों ने वासना में बुझीं छुरी उस पर चलायी। वह पर्यंक पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

झुकी और लगभग जयन्त के कपोलों तक अधर ले जाकर बोली—"तुम्हें सोने के ही लिए मैंने पिलाया है क्या ?"

उसे ऐसा लगा जैसे कोई नागिन उससे प्यार करने को उतावली हो। वह नशे में ही बड़बड़ाया—"नहीं, नहीं कुछ नहीं।....तुम सब यहाँ से बाहर चली जाओ।"—और फिर मुँह दीवार की ओर करके उसने आँखें मूँद ली।

सबकी सब देर तक खड़ी रही, एक दूसरे को देखती हुई। संकेत से बातें भी की होंगी और बाहर निकल आयीं। अतिथि भवन की उपशाला से आगे बढ़ते हुए इतना ही सुनायी पड़ा,—"इतना पी लेने के बाद भी उसकी चेतना व्यवस्थित है। आखिर महाराज से क्या कहा जायेगा ?"

"कह दिया जायेगा कि कोई सूचना प्राप्त न हो सकी।"

इसके बाद पूरी अतिथिशाला शान्ति ओढ़कर सो गयी। समय खिसकने लगा।

रात्रि का तीसरा प्रहर बीत चुका था। पुरवैया अँगड़ाई ले रही थी। जयन्त की खर्राटें उसके कक्ष के बाहर भी सुनायी पड़ रही थीं। यद्यपि वह भेजी गयी थी, फिर भी उत्साह में नहीं थी। उसके पग लड़खड़ा रहे थे, न तो निद्रा के दबाव से और न मैरेय की मादकता से वरन् एक अपराधी की भाँति वह सहमी-सहमी थी। शिरीष के पुष्प की तरह हल्का और नीले कुहरे की तरह झीना उसका अंचल बार-बार फिसल जाता था और उसका उन्मुक्त यौवन पूरी मादकता के साथ आक्रामक हो उठता था।... किन्तु आक्रमण करे भी तो किस पर ? उस सन्नाटे पर ? गुमसुम अँधेरे पर ?... या स्वयं अपने भीतर छिपे चोर पर ?

वह जयन्त के कक्ष के बाहर कुछ देर तक खड़ी रही। साहस करके वह भीतर भी गयी, किन्तु शीघ्र ही वह बाहर निकल आयी। उसका अतीत ही जैसे उसे पीछे ढकेल रहा है,—पर वह क्या करती ? असुराज के विचार से वही एक ऐसी थी जो जयन्त से कुछ उगलवा सकती थी। अपनी पूरी कला और छलना के साथ उसे उसकी सेवा में उपस्थित होना था। इस बार वह दृढ़ता के साथ भीतर घुसी थी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जयन्त खर्राटे भर रहा था। पात्रों में अब भी कुछ न कुछ मैरेय पड़ी थी। उसकी गन्ध से सारा कक्ष बोझिल और मदिर हो गया था। कुछ पात्र धरती पर भी ढुलके पड़े थे। वह कुछ समय तक सुप्त जयन्त को निहारती रही। फिर उसके पर्यंक पर बैठ गयीं। भद्र-अभद्र उसने कई चेष्टाएँ कीं, जिससे उसकी नींद खुल जाये, पर वह सोता रहा। अन्त में उसने वह मणिजड़ित चौकी गिरा दी, जिसपर मदिरा के पात्र थे। पूरा कक्ष झनझना उठा। जयन्त की भी नींद टूट गयी। वह आँखें मीचता हुआ उठ बैठा। "कौन ?"—उसके मुख से निकला।

जैसे उसे विश्वास ही न हो, किन्तु उसकी चेतना ने क्षण भर में पहचान लिया,—"अरे यह तो वही दुष्टा है।" वह हड़बड़ाकर पलंग पर उठने को हुआ तब वह बलखाती हुई उसके अंक में आ गयी जैसे नागिन डसकर उलट जाये। वह लगभग निर्वसन थी।

"तू फिर डसने आयी, नींच कहीं की।"—इतना कहते ही उसने जोर से उसे ढकेला। वह सामने दीवार से टकरायी और पास रखे दीयट पर गिरते-गिरते सम्भली।

जयन्त ने उठकर उसे एक हाथ और जमाया, पर उसी संघर्ष में उसके उरोज जयन्त के वक्ष से टकराये। एक विचित्र-सी सिहरन हुई, पर इस समय वह फिसलने वाला नहीं था। वह दाँत पीसते हुए गरजा,—"बोल, यहाँ क्या लेने आयी है ?"

"कुछ लेने नहीं, देने आयी हूँ।"—इस स्थिति में भी उसने मुस्कराने की चेष्टा की।

अब तक जयन्त के दोनों हाथ उसके गले पर पहुँच चुके थे।—"क्या देना चाहती है बोल ?" उसने उसका गला दबाया,—"जो लेना चाहते हो ले लो।"—वह अब भी मुस्करा रही थी।

"मैं तो तेरा प्राण ही लेना चाहता हूँ।"—क्रोध में ओठ चबाते हुए वह इतनी तेज चीखा कि बगल के कक्ष में भी जाग हो गयी। अंगरक्षक दौड़े हुए आये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसका गला लगभग दब चुका था। वह अस्पष्ट ध्वनि में बोली—"जैसे इस समय दूत होकर आप अवध्य हैं·· वैसे ही आप की सेविका होकर मैं भी अवध्य हूँ।"

"मैं इस समय अवध्य का ही वध करूँगा।"—जयन्त का क्रोध सीमा से बाहर था। वह गला दबाये जा रहा था। माधुरी एकदम नहीं बोल पा रही थी। केवल उसके गले से 'ओ ओ' ध्वनि निकल रही थी।

"अरे, यह क्या कर रहे हैं, राजकुमार?"—अंगरक्षकों में से एक आगे बढ़ा,—"इस समय इसका वध करने में पाप लगेगा।" उसने उसे छुड़ाते हुए कहा।

"पापी का वध करने में कोई पाप नहीं लगता।"—जयन्त ने उसे छोड़ तो दिया, पर उसका क्रोध बनैले वृषभ-सा फुफकारता रहा।

वह छूटकर अपने वस्त्र समेटती हुई कक्ष के एक कोने में खड़ी हो गयी। "पहचानते हो इसे?" जयन्त का क्रोध ही अंगरक्षकों से पूछ बैठा और उसने स्वयं ही उत्तर दिया,—"यही है वह माधुरी, कृतघ्ना! दुष्टा! नीच!"—वह अब भी काँप रहा था।

अंगरक्षकों ने माधुरी को गौर से देखा, पहचाना, मानो वासना स्वयं प्रगल्भ हो गयी हो। वह ठुकराये जाने के बाद भी चिपक जाना चाहती हो। उन्होंने उसे बाहर निकाला और राजकुमार को शान्त किया। अंगरक्षकों में से दो वहीं रह गये और दो बाहर निकल आये। वह माधुरी के जाते हुए देखते रहे। धीरे-धीरे जाती हुई माधुरी के प्रत्येक अंग का रस जैसे उनके नेत्र चूस लेना चाहते हों।

एक ने दूसरे के कान में कहा,—"मित्र, है बड़ी जोरदार।"

"यदि ऐसी न होती तो सुरपति के अंतःपुर में कैसे पहुँचती?"—इतना कहकर उसने अपने मित्र के कन्धे पर हाथ मारा और कक्ष में लौटने को हुआ, पर पहला ज्यों-का-त्यों खड़ा देखता रहा। "भीतर चलेगा कि यों ही खड़ा रहेगा?"

"कैसे चलूँ?····मेरी आँखें तो उससे चिपकी हुईं चली जा रही हैं।"—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दोनों खुलकर हँसे। निश्चित ही यह हँसी कक्ष में भी पहुँची। तभी तो राजकुमार के पुकारने की कर्कश आवाज आयी। दोनों धीरे से मुँह लटकाये कक्ष में पहुँचे।

"क्यों हँस रहे थे ?"—राजकुमार ने एक तीक्ष्ण दृष्टि डालते हुए कहा।

पहले तो वे सकपकाये पर एक क्षण बाद ही उन्होंने बात बना ली,—"हँस रहा था कि वह कितनी निर्लज्ज है कि इतना सब होने पर भी वह आपकी सेवा में उपस्थित हुई।

"आखिर कौन-सा मुँह लेकर आयी होगी ?"—दूसरा बोला।

"उसका मुँह पहले जैसा ही था।"—राजकुमार के इतना कहते ही सबके सब मुस्करा पड़े।

राजकुमार चुप था। फिर भी उसका मन कह रहा था कि जयन्ती ने ठीक कहा था कि सिंह और गुप्तचर अपने आखेट के पास एक बार अवश्य आते हैं।

इस घटना के बाद अतिथि भवन पहले से कहीं अधिक गम्भीर हो गया था। मैरेय में डूबी प्रभात की अरुणिमा ने जब जयन्त के कक्ष में प्रवेश किया तब वह लगभग प्रकृतिस्थ हो चुका था। अपने अंगरक्षकों से बातें कर रहा था। बातें बन्दी बनाये गये देवताओं की स्थिति पर चल रही थीं, किन्तु भाषा के स्थान पर मात्र संकेतों और कुछ शब्दों से काम अधिक लिया जा रहा था, क्योंकि बीच-बीच में कोई-न-कोई सेवक या सेविका किसी बहाने कक्ष में आ ही जाते थे। यद्यपि वे आते थे अनुमति लेकर ही, फिर भी उनकी हर चेष्टा सन्देह से भरी रहती थी।

इसी सन्दर्भ में एक अंगरक्षक ने कुछ संकेत भी किया, किन्तु उसके उत्तर में राजकुमार ने जो कुछ कहा, उसका सारांश था कि जो गुप्तचर व्यवस्था हमारे अन्तःपुर तक प्रविष्ट कर गयी थी, वह भला यहाँ मेरा पीछा कैसे छोड़ सकती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अचानक सूचना मिली कि महाराज पधार रहे हैं। सारा अतिथि भवन सनसना उठा। प्रहरी अपने स्थानों पर सन्नद्ध हो गये। अंगरक्षक अपने कक्ष में लौट आये। सम्भव है, कोई गुप्त मंत्रणा हो। शंकित मन हर स्थिति में भयाक्रान्त रहता है। जयन्त सोचने लगा कि मदिरा के नशे में मैं कुछ उगल तो नहीं गया, किन्तु वह कुछ समझ नहीं पाया। शून्य में हाथ पैर मारता रहा।

आते ही वृषपर्वा ने जयन्त को अंक से लगा लिया। "आपको कोई कष्ट तो नहीं था, हो सकता है, हमारे सत्कार में कोई त्रुटि रही हो। क्षमा प्रार्थी हूँ।" —एक सांस में वे इतना कह गये।

उद्वेलित मन शान्त हुआ। जयन्त ने हल्का अनुभव किया। उसने औपचारिकता का उत्तर भी वैसी ही औपचारिकता से दिया, "भला, आपके राजभवन में कोई कष्ट हो सकता है ?"

थोड़ी देर बाद चक्कर काटती हुई बात निश्चित विन्दु पर आयी,—"···· आखिर आपने कष्ट कैसे किया ?"

"पिताजी, आजकल अस्वस्थ हैं।"—जयन्त की ध्वनि थोड़ी दबी थी।

"भगवान उन्हें स्वस्थ करे।··प्रार्थना से अधिक हम कर ही क्या सकते हैं ?" कुछ रुक कर उसने पुनः कहा,—"यदि असुरों के चिकित्सक से आप चिकित्सा कराना चाहें तो मैं अपने वैद्यराज को भेज सकता हूँ।"

जो मार्ग साफ दिखायी देता था, वह कंटकाकीर्ण होने लगा। सम्भवतः आगे का रास्ता भी कुछ धुंधला दिखायी पड़ने लगा। जयन्त का गम्भीर होना स्वाभाविक था। ऐसा तो नहीं कि वृषपर्वा को वास्तविकता का ज्ञान हो गया हो और वह वैद्यराज को भेज कर असलियत को उघेड़ना चाहता हो। वह मन और मस्तिष्क पर पूरा नियंत्रण रखते हुए बोला,—"चिकित्सा तो हो ही रही है।··· तात पहले से कुछ ठीक भी हैं, पर चिकित्सकों का कहना है कि पूर्ण स्वस्थ होने में अभी समय लगेगा।"

"क्या हो गया है, आपके तात को ?"

"ज्वर निरन्तर बना रहता है।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"यह युद्ध का ज्वर तो नहीं है ?"—एक कुटिल मुस्कराहट असुरराज के अधरों पर उभरी।

जयन्त का अहं एक और चोट खा गया, फिर भी वह तिलमिलाया नहीं, वरन् बड़ी तेजस्विता से बोला—"....देवताओं को युद्ध का ज्वर कभी नहीं आता असुरराज, वरन् उनका पराक्रम स्वयं युद्ध पर ज्वर बन कर छाता रहा है।"

"बहुत अच्छे।"—वृषपर्वा हँस पड़ा,—"तुम्हारे ऐसे पुत्र पर किसी भी पिता को गर्व हो सकता है।"—फिर वह कुछ सोचने लगा,—"अच्छा, जब तक तुम्हारे तात स्वस्थ नहीं हो जाते मैं युद्ध में नहीं जाऊँगा।"

"फिर भी युद्ध चलता रहेगा ?" जयन्त का विवेक लड़खड़ाया। वृषपर्वा हँस पड़ा, उसने कहा,—"क्यों, मेरे और देवाधिदेव के न जाने से युद्ध क्यों रुकेगा ? यह युद्ध इन्द्र और वृषपर्वा के बीच तो है नहीं, वरन् यह असुरों और सुरों के बीच का संग्राम है।....वह तो चलता ही रहेगा और तब तक चलेगा जब तक दोनों का अस्तित्व शेष है।"

जयन्त चुप रह गया। उसे ऐसा लगा जैसे बड़ी चेष्टा से बनाया कोई स्तम्भ अररा कर गिर रहा हो। उसके धूल कण धुएँ की तरह उसकी आँखों के सामने छाने लगे। उसने आँखें बन्द कर लीं।

"क्या सोचने लगे ?"—असुरराज ने मुस्कराते हुए पूछा।

जयन्त ने पुनः विवेक से काम लिया—"सोचता हूँ, सभी अमात्य तो तात की सेवा में लगे हैं।....जटिल समस्या है ?"

"क्या जटिल समस्या है ?....तात के सेवा की ?....माधुरी को भेज दूँ ?"—वृषपर्वा हँसा। जयन्त कट कर रह गया। इन व्यंग्य प्रहारों से उसे लगभग निश्चित हो चला था कि असुरराज हमारी वास्तविकता जानते हैं।

शीघ्र ही वृषपर्वा की मुद्रा बदली। वह बोला,—"तो क्या अमात्यगण भी युद्ध में नहीं जा सकेंगे ?"

"जी नहीं।"—जयन्त का स्वर दबा-दबा सा था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"....तब क्या युद्ध बन्द कर दिया जाय ?"

"इसे तो आपको निश्चित करना है।"—जयन्त को लगा कि गहन अन्धकार में भी कोई किरण है।

"इसे मैं निश्चित नहीं कर सकता वत्स।... इसके लिए मुझे मंत्रि-परिषद बुलानी पड़ेगी।"

"यह तो औपचारिकता मात्र है। मंत्रि-परिषद तो वही निर्णय लेगी जैसा आप चाहेंगे ?"

"कभी-कभी असुरों की मंत्रि-परिषद का निर्णय हमारी इच्छा के प्रतिकूल भी होता है।"

"आपकी इच्छा के प्रतिकूल निर्णय लेकर क्या मंत्रि-परिषद जीवित रह सकती है ?"

"मैंने पहले ही कहा है न कि असुरों के पास जीवित रहने या मरने की अब कोई समस्या नहीं है।"—इस बार वृषपर्वा जोर से खिलखिलाया। जब उसकी हँसी थमी तब उसने कहा,—"....परिषद में मैं अपनी इच्छा व्यक्त करता हूँ और हमारे मंत्री गण सम्पूर्ण असुर समाज की इच्छा व्यक्त करते हैं। ....असुरराज से असुर समाज तो महान् है न ?"—हँसते हुए इतना कहकर वृषपर्वा उठ खड़ा हुआ और मंत्रि-परिषद के निर्णय की प्रतीक्षा करने के लिए कहकर चला गया।

सन्ध्या अन्धकार में सिमिटती जा रही थी। राज-प्रासाद लगभग खाली हो चला था क्योंकि नित्य की भाँति आज भी महाराज की शोभायात्रा निकल रही थी, बन्दी देवताओं को त्रासित करने वाली। अधिकांश लोग उधर ही चले गये थे। अतिथि भवन के एक प्रहरी के निर्देश पर जयन्त भी सान्ध्य भ्रमण के लिए

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आम्रकुंजों की ओर निकल आया था। साथ में अंगरक्षक भी थे।··· किन्तु सभी मौन चिन्तित। पता नहीं, असुरों की मंत्रि-परिषद क्या निर्णय ले ले ?

टहलते-टहलते वह गहन अमराइयों में बढ़ता गया। अचानक उसे एक नारी स्वर सुनायी दिया,—"आप लोग इधर मत आइए ?"—और मुस्कराती हुई एक सुन्दरी आगे आकर खड़ी हो गयी।"—जयन्त ने स्वयं को उपेक्षित अनुभव किया,—"क्यों ? यह तो अतिथि भवन का ही उद्यान है। यहाँ मेरा आना भी वर्जित ?"

"आपको मैंने नहीं रोका।"

"तब तुमने किसको रोका ?"

"मैंने आपलोगों को कहा था, आपको नहीं।"—वह बड़ी मादकता से इठलायी,—"आप अंगरक्षकों को छोड़कर आ सकते हैं।"

जयन्त ने एक बार अंगरक्षकों की ओर देखा, फिर उस युवती की ओर। सामने अमराई की चहकती मोहकता भी थी। कई विपरीत खिचावों के बीच वह स्थिर हो गया था। वह मूक खड़ा रहा। अंगरक्षकों को आभास हुआ कि राजकुमार संकोच का अनुभव कर रहे हैं। "जाइए न, राजकुमार देख आइए।"—एक वरिष्ठ अंगरक्षक बोल पड़ा।

जयन्त अमराई की ओर बढ़ा और सुन्दरी प्रतिहारी अंगरक्षकों की ओर। उसने अपने दोनों हाथों से दो अंगरक्षकों के हाथ पकड़े और बोली,—"आपलोग इधर आइए।" वह अंगरक्षकों को दूसरी ओर ले चली।

आम्रवन में थोड़ी ही दूरी पर एक पुष्करिणी थी। उनमें अनेक सुन्दरियाँ जल क्रीड़ा कर रही थीं। उनके किल्लोल दूर से ही जयन्त को खींचने लगे। पास आने पर उसकी आँखें उनसे चिपकने लगी। तन और वस्त्रों में अद्वैत स्थापित करता गीलापन अर्धनग्न यौवनों को और अधिक विषाक्त कर रहा था।

यौन सम्बन्धी वासना के सन्दर्भ में जयन्त में जन्मजात दुर्बलता थी। लगता है, उसकी इस दुर्बलता को असुरराज ने पकड़ लिया था, नहीं तो अतिथि भवन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के परिचर आम्रवन की ओर भ्रमण करने के लिए आखिर जयन्त को प्रेरित क्यों करते ? स्पष्ट था कि सारा षडयन्त्र पहले से ही रचा गया था।

जयन्त आगे बढ़ता गया, बढ़ता गया। वह पुष्कारिणी के किनारे मंत्र मुग्ध सा खड़ा रहा। उसकी आँखें भौंरे सा उन जल कुसुमों पर फिसलती और रस लेती रहीं। इसी बीच एक निकुंज से खिलखिलाहट उभरी,—"क्या सोच रहे हो राजकुमार ?"

यह जानी पहचानी आवाज थी। उसने पीछे मुड़कर देखा। इठलाती हुई माधुरी अपना जाल फिर फेंक रही थी। उसे झटका सा लगा,—"तू फिर यहाँ आ गयी ?"

"बधाई देने आयी हूँ, राजकुमार।"

"कैसी बधाई ?"

"मंत्रि-परिषद ने युद्ध बन्द करने का निर्णय ले लिया है।"

"....तो इसमें बधाई की कौन सी बात है ?"

"आखिर आप इसीलिए पधारे हैं न ? आपको अपने प्रयत्न में सफलता मिली। ... फिर भी बधाई की कोई बात नहीं है ?"

".... ....नहीं, मैं तो मात्र तात की अस्वस्थता का समाचार देने आया था।"—जयन्त ने कहा। वह बड़े विचित्र ढंग से हँस पड़ी, मानो बता रही हो कि तुम झूठ बोलते हो। जयन्त ठगा सा उसे देखता रह गया। वह उसके निकट खिसकती चली आयी और कन्धे पर हाथ रखकर धीरे से जयन्त के दाहिने कान में बोली,—"क्या ऐसा नहीं हो सकता कि देवासुर संग्राम सदा के लिए समाप्त हो जाये।"

"माधुरी क्या कह रही है ? क्यों कह रही है ? .... यह किसी नये षड्यन्त्र का आरम्भ तो नहीं है ?" जयन्त समझने की चेष्टा करने लगा।

माधुरी ने पुनः पुष्करिणी की ओर संकेत किया,—"उसे पहचानते हो ?" उसका संकेत एक अनिद्य सुन्दरी की ओर था। "मुझसे सुन्दर है, न ?" नारी मन में बहुधा उठने वाले एक सहज प्रश्न ने वाणी ले ली। वह हँस पड़ी। जयन्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसे देखता रह गया। वह जल से निकल कर सीढ़ियों पर बैठी थी। उसके पग अब भी पानी में हलकोरे मार रहे थे। झीने वस्त्रों से बँधे उनके उन्नत उरोज जैसे उसे फाड़कर बाहर निकल आना चाहते थे····और उसकी चंचल आँखें ? मानो पुष्करिणी से निकाल कर नासिका की दोनों ओर जड़ ही गयीं दो मछलियाँ कुछ खोजने के लिए व्याकुल हों।

जयन्त उसे देखने लगा, उसने भी उसे देखा।—"अब पहचाना तुमने इसे ?"—माधुरी ने पुनः पूछा और स्वयं ही उत्तर भी दिया,—"यही है, असुरराज की दुहिता शर्मिष्ठा।"

जयन्त की दृष्टि में अब कुतूहल उतर आया था। माधुरी अब भी मुस्कराती रही। उसने एक मादक भंगिमा के साथ पूछा,—"तुम इससे परिणय करोगे ?····देवासुर संग्राम शायद सदा के लिए समाप्त हो जाये।"

जयन्त जैसे अंगार से छू गया। उसका अन्तर एकदम तिलमिला उठा। अवश्य इसमें कोई रहस्य है। चाल है। धोखा है। पहले तो मैं अपने अंगरक्षकों से अलग किया गया, फिर यहाँ लाया गया। जहाँ चारों ओर जाल है, दल-दल है, वासना का, मादकता का, मेरी दुर्बलता का।"

सबलता अपने अज्ञान में और दुर्बलता अपने अनुभव में मारी जाती है। जयन्त ने ज्यों ही अपनी दुर्बलता का अनुभव किया, वह नष्ट होने लगी। धीरे-धीरे जयन्त अब धरातल पर आया। उसके अन्तर ने उसे धिक्कारना आरम्भ किया,····"तुम कितने नीच हो, जघन्य हो। एक ओर बन्दी हुए देवगण दासों से भी गया बीता जीवन बिता रहे हैं, नरक की यातनाएँ भोग रहे हैं।···· ····इस समय वे राजमार्गपर वृषपर्वा और उनके अमात्यों का रथ खींच रहे होंगे, कोड़े खा रहे होंगे और तुम प्रेम व्यापार चला रहे हो।"

वह एकदम व्यग्र हो उठा। वह बड़बड़ाया,—मेरे अंगरक्षक मुझसे अलग कर दिये गये,····और मैं यहाँ पड़ा हूँ।····अवश्य कोई रहस्य है। इतने बड़े दायित्व को लेकर मेरे पैर जब स्वयं उखड़ने लगते हैं, मैं धरती छोड़ने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लगा हूँ, तब उन अंगरक्षकों को फिसलते कितनी देर लगेगी ?... "हे भगवान्, वे कहीं उलटा-सीधा न बक दें ?"

घबराहट अब उसे एक क्षण भी वहाँ रुकने देना नहीं चाहती थी। वह अप्रत्याशित ढंग से चीख उठा,—"नहीं, नहीं,....अब मैं इस जाल में फंसने वाला नहीं हूँ।"....और वह भाग खड़ा हुआ। माधुरी अपने स्वप्न को बिखरता हुआ देखती रह गयी।

आम्रवन से निकलते ही जयन्त ने अंगरक्षकों को खोजना आरम्भ किया, पर वहाँ कोई नहीं था। उसने दो एक आवाज भी लगायी, पर पहाड़ी से टकराकर उसकी ही प्रतिध्वनि बहुत देर तक गूँजती रही।

"लगता है, सब के सब मर गये क्या ?"—जयन्त का क्रोध बड़बड़ाया।

"यदि मर भी गये होंगे तो आप घबराये नहीं।"—वह महिला प्रहरी इठलाती हुई बोली,—"उन्हें जिलवा दिया जायेगा।"

जयन्त जैसे झुलस-सा गया। शुक्राचार्य का बल क्या मिल गया कि हर व्यक्ति देवताओं पर व्यंग्य ही कर रहा है। वह तड़पा,—"ठिठोली मत करो।.... बताओ वे कहाँ है ?"

"मैं तो उन्हें प्रमोदवन की ओर ले जाकर छोड़ आयी थी।.... ... मैं क्या जानूँ कि वे कहाँ रह गये।"—उसके स्वर पर जयन्त के क्रोध का जरा भी प्रभाव नहीं था।

जयन्त प्रमोदवन की ओर लपका और निकुंजों में घुसता चला गया। एक स्थान पर वह ठिठक-सा गया। उसे कुछ लोगों के बातें करने की आहट लगी।

"अब हम में तुम में कोई विशेष अन्तर नहीं रह गया है।"—अनजान स्वर उसके कानों से टकराया।

"वह कैसे ?"—फिर कुछ पात्रों के खनकने की भी ध्वनि आयी। आभास हुआ कि मदिरा का भी क्रम चल रहा है।

"हम मरणधर्मा थे, अब अमर होने लगे हैं। तुम लोग मात्र अमर कहे जाते हो"—वह हँसा। ....अब हम सब अमरों के वर्ग में ही हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"हमारा सदा से एक वर्ग है ?"

"वह कैसा ?"

"चाकरों का।"

"हम सब सैनिक हैं। युद्ध करने की चाकरी करते हैं, नहीं तो मारने और मार खाने से हमसे क्या मतलब ?····राज करे कोई और मरने जाये हम।" इसके बाद उसकी ध्वनि बन्द हो गयी। लगता है उसने एक घूँट अपने गले के नीचे और उतारी तथा दार्शनिकों जैसा बोला,—"हम युद्ध कभी नहीं चाहते और न हमारे पूर्वज चाहते रहे हैं, फिर भी युद्ध मुझपर लादा जाता रहा है, कुछ मुट्ठीभर लोगों द्वारा। उनकी महत्वाकांक्षा हमारे जीवन से खेलती रही है।"

"यह तो तुम ठीक कहते हो, पर हम कर क्या सकते हैं ?"—यह जानी पहचानी आवाज थी जयन्त के अंगरक्षक की। वह चुपचाप सुनता रहा, चषक भरा जाता रहा, बातें चलती रहीं,—"हम सब अपने-अपने राजा के दास ही तो हैं।"

"दास कैसे ?"

"तुम बड़े भोले हो, मित्र !"—वह हँसा—"तुम चाहो कि देवासुर संग्राम न हो, तो क्या यह हो सकता ?····तुम स्वयं चाहो कि युद्ध न करो, तो क्या यह हो सकता है।····तुम यह चाहो कि इन्द्र को अपना राजा न मानो, तो क्या यह सम्भव है····आखिर यह दासता नहीं तो क्या है ?"

इसके उत्तर में जयन्त को अपने अंगरक्षकों की आवाज सुनाई नहीं पड़ी। उसने समझ लिया कि मेरी अनुपस्थिति में उन्हें बहकाने का सुनियोजित प्रयास चल रहा है, फिर भी वह मौन ही रहा।

"तुम्हीं देखो, तुम्हारा राजकुमार सुन्दरियों के साथ रंगरेलियाँ कर रहा है और तुम उसकी रक्षा का गुरुतर भार लिए व्यर्थ चक्कर खा रहे हो।"

अब जयन्त से रहा नहीं गया। अवसर भी उपयुक्त था। अचानक कुंज को चीरता हुआ पहुँचा और कृत्रिम हँसी के बीच बड़े नाटकीय ढंग से स्वर में स्वर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मिलाते हुए बोला,—"....चक्कर नहीं खा रहे हो, वरन् मदिरा पी रहे हो। ...चक्कर तो मैं तुम्हें खोजता हुआ खा रहा हूँ।

राजकुमार की अप्रत्याशित उपस्थिति से सभी अंगरक्षक हड़बड़ा कर खड़े हो गये। उनमें से एक के हाथ में चषक था। वह छूट गया। निस्तब्धता झनझना उठी।

जैसे जबान कट कर गिर गयी हो। असुर सैनिक भी चुप थे। जयन्त ने एक जलती दृष्टि अपने अंगरक्षकों पर डाली। वे कांप उठे। कुछ समय तक भय और आतंक में डूबा मौन सबको घेरे था। फिर एक बनावटी खिलखिलाहट जयन्त ने अपने क्रोध से जले भुने चेहरे से उगायी,—"जो अपनी रक्षा नहीं कर सकता, वह मेरी क्या करेगा ?"—कोई कुछ नहीं बोला। अंगरक्षकों को लगा,—सृष्टि हिल रही है। प्रमोदवन सुलग रहा है। भूमि पर ढुलके चषकों से लपटें निकल रही हैं।

असुर सैनिक धीरे-धीरे खिसकने लगे। एक के बाद एक, जब वे चले गये, तब जयन्त बोला,—"अब तो चलिए मेरी रक्षा कीजिए।"—और वह चल पड़ा, पीछे-पीछे मुँह लटकाये अंगरक्षक कांपती धरती पर पग घसीटते आगे बढ़े।

बुद्धि नशे में और नशा भय में उड़ जाता है। अतिथिशाला तक आते-आते मादकता मर चुकी थी। अपने कक्ष के निकट पहुँचते ही जयन्त प्रशासकीय स्वर में बोला,—"....अब जाओ विश्राम करो, क्योंकि इस समय तुम लोग और कुछ नहीं कर सकते।"—इतना कहकर वह झटके से अपने कक्ष की ओर मुड़ आया।

अंगरक्षकों ने एक-दूसरे को देखा, मौन रहे और फिर काँपते हुए जयन्त की ओर मुड़े,—"क्षमा कीजिए, महाराज।"—जयन्त के चरणों पर गिर कर सबने लगभग समवेत स्वर में कहा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"कैसी क्षमा और किसके लिए क्षमा ?"' अरे मैं रंगरेलियाँ कर रहा था और तुम मैरेय का रंग ले रहे थे।"—वह बड़े व्यंग्यात्मक ढंग से मुस्कराया और बोलता रहा,—"मैं स्वयं युद्ध स्थगित करने का महत् उद्देश्य लेकर आया हूँ और तुम लोग सदा के लिए युद्ध से विरत रहने की शिक्षा ले रहे थे।"

वे चुपचाप अपराधी की भाँति सिर नीचा किये खड़े रहे। उन्हें धरती दिखाई नहीं दे रही थी। जयन्त कुछ और कहे इसके पहले ही द्वार से एक असुर परिचर की ध्वनि सुनायी पड़ी,—"क्या भीतर आ सकता हूँ।"

"आइए।" जयन्त ने उसे अनुमति दी और अंगरक्षकों को उसके कक्ष में चले जाने के लिए कहा। उन्हें जान में जान आयी।

"…… महाराज पधार रहे हैं।"—सूचना देकर परिचर लौट पड़ा। पर्यंक पर जयन्त ढुलक गया। उसके मानस में विचारों की तरंगें उठने लगीं। उसके मन में कशाघात सहते गुप्तचर अमात्य की चीखें गूँजने लगीं। उसके चिन्तन को लगा, असुरों की महत्वाकांक्षा निष्ठुरता के ज्वालामुखी पर टिकी है। जिस क्षण उसका विस्फोट होगा असुर साम्राज्य समाप्त हो जायेगा। क्या उस विस्फोट के लिए हम कुछ कर सकते हैं ? क्या माधुरी असुरों के यहाँ ही पैदा हो सकती है, देवताओं के यहाँ नहीं ? उसे लगा, जैसे दीवारों से लौटकर उसी की ध्वनि आ रही है,—"माधुरी पैदा नहीं होती, बनायी जाती है।....तुम भी बना सकते हो, पर तुम में वह कल, बल, छल कहाँ ? जो असुर संस्कृति की नींव में है।"

धीरे-धीरे अतिथि भवन की चुलबुलाहट कोलाहल में परिवर्तित होने लगी। "महाराज पधार रहे हैं।"—उद्घोषक की सूचना से जयन्त सजग हो गया। पर उसमें कोई तनाव नहीं था। उसने सामान्य भाव से असुराज का स्वागत किया।

आते ही वृषपर्वा ने कहा,—"…. ….हमारी अमात्य परिषद् ने निश्चय कर लिया है कि युद्ध तब तक स्थगित कर दिया जाय जब तक सुरेन्द्र पूर्ण स्वस्थ नहीं हो जाते।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"धन्यवाद !"—बड़े सहज भाव से जयन्त के मुख से निकल पड़ा।

वृषपर्वा हँसने लगा,—"भला आपने आभार तो स्वीकार किया, कदाचित् असुर सभ्यता के इतिहास में यह पहला अवसर है, जब सुरों का धन्यवाद उसे प्राप्त हो रहा है।"

जयन्त को ऐसा लगा जैसे उसका कुछ खो गया है। वह मौन सिर नीचा किये खड़ा रहा।

"मेरा तो आग्रह है कि आप कुछ दिनों तक और मेरा आतिथ्य स्वीकार करें।"

"... ऐसा करने में मुझे स्वयं बड़ी प्रसन्नता होती, किन्तु तात अस्वस्थ हैं, मेरा पहुँचना नितान्त आवश्यक है।"

"खैर, जैसी आपकी इच्छा !"—इतना कह वृषपर्वा चला गया।

जयन्त पलंग पर पुनः ढुलक गया। इसके पहले कि परिचारिकाएँ सेवा में आतीं, प्राचीर पर अंकित वह अर्धवसना नायिका बोल पड़ी,—"महाराज का आतिथ्य तो स्वीकार नहीं किया, पर क्या माधुरी को भी छोड़कर चले जाओगे ?"

माधुरी, मेरे यशचन्द्र की कालिमा ! माधुरी, मेरे मानस में पली नागिन ! माधुरी, मेरी अस्मिता से लिपटी दुर्गन्ध ! उसका मस्तिष्क झनझना उठा। उसने अनुभव किया कि यह चित्र नहीं बोल रहा है। मेरा 'मैं' ही उस चित्र के माध्यम से मुझ पर व्यंग्य कर रहा है। उसने आँखें बन्द कर लीं और कुछ क्षणों तक एक शून्य में भटकता रहा। फिर धीरे-धीरे बन्दी देवताओं की मुद्राएँ मन पर उभरने लगीं—एक, दो, तीन और फिर अनेक। उनकी चीखों में धिक्कार थी, उनके नेत्रों में तिरस्कार के आँसू थे। उनकी आकृतियाँ जैसे जयन्त पर थूक रही थीं,—"तुमने अपने स्वार्थ के लिए युद्ध तो बन्द कर दिया, किन्तु हमारी ओर देखो, अब हमारा क्या होगा ? क्या हम नारकीय यातनाएँ सहते रहेंगे ? क्या हर सन्ध्या हम वृषपर्वा तथा उसके अमात्यों के रथों में पशुओं की तरह जूतते रहेंगे ? क्या हमारा तन उनके कोड़ों से छिलता रहेगा ?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जयन्त चुप पड़ा रहा। उसके कानों में अब भी आवाजें गूँजती रहीं,— "देखता हूँ हमारी पीड़ा और कराहों के मूल्य पर खरीदी गयी इस शान्ति को तुम कब तक सुरक्षित रख सकते हो?"

वह एकदम व्यग्र हो गया और हड़बड़ा कर उठ बैठा। उसने देखा, रात गाढ़ी होती जा रही है और सामने परिचारिकाएँ मदिरा का पात्र लिये खड़ी हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

□□□

गम्भीर चिन्तन में डूबा यह सुरपति का मंत्रणा कक्ष है।

युद्ध स्थगन की सफलता के बाद भी कोई उत्साह नहीं। एक गूँगी उदासी सुरपति की आकृति पर चिपकी है। उन्हें ऐसा लग रहा है, जैसे उनकी प्रतिष्ठा का आकाश छोटा हो गया है। उनका शरीर भले ही स्वस्थ हो, पर मन में चिनगारियाँ फूट रही हैं। उसकी अदृश्य जलन सारे प्रासाद पर बिखरी है। हर व्यक्ति अनुभव कर रहा है, प्रासाद रुग्ण है। उसका आह्लाद लूट लिया गया है। उसकी अस्मिता के सिर पर एक नंगी तलवार लटक रही है।

अभी मंत्रणा के लिए आहूत अमात्य पधारे नहीं हैं। इसके पहले ही इन्द्र और शची उपस्थित हो गये हैं। जयन्त भी दिखायी नहीं दे रहा है। इन्द्र की व्यग्रता उन्हें कक्ष में टहला रही हैं। सन्ध्या हल्की फुहार से घुल चुकी है। प्राची में एक इन्द्रधनुष उग आया है। "सतरंगी शोभा के कारण ही इसने आपकी संज्ञा चुरा ली है।"—शची के इस कथन के पीछे निश्चित रूप से अपने पति को हल्का करने का उद्देश्य था। इन्द्र कुछ बोले नहीं। चुपचाप वातायन के निकट शची के पीछे खड़े हो गये। उनकी आँखें कुछ देर तक प्राची के नभ पर गड़ी रहीं। "लगता है देवि, इसने मेरा नाम अवश्य ले लिया है, किन्तु मेरी व्यथा नहीं ली है।"

"यह आपको कैसे मालूम ?"

"यदि इसने व्यथा ली होती तो इसका रंग उड़ गया होता।"—इन्द्र के जलते मन का धुआँ निकलने लगा,—"....पर यह सतरंगी धनुष तो लघु सत्य है, प्रिये! विशाल सत्य तो असुरों सा गरजता मेघ है, जिसकी कृपा से यह भी कभी-कभी जी उठता है।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शची लगभग निरुत्तर होने की स्थिति में थी कि प्रतिहारी ने सूचना दी,—"महाराज, आचार्य पधार रहे हैं ?"

इन्द्र स्वागतार्थ कक्ष के बाहर निकले और आगे बढ़कर उन्होंने आचार्य वृहस्पति को प्रणाम किया।

आचार्य ने आसन ग्रहण करते ही कहा,—"युद्ध का स्थगन तो हो गया है।" —उनकी यह ध्वनि प्रतिक्रिया शून्य थी। कोई कुछ नहीं बोला।

घुटन भरे मौन के क्षण बीतते गये।

एक के बाद एक अमात्य उपस्थित होते लगे।....और मंत्रणा जब आरम्भ हुई आकाश में मेघों की गड़गड़ाहट आरम्भ हो गयी थी। महाराज ने वह सब कुछ संक्षेप में बताया जो जयन्त से सुनाया था। जब वन्दी देवताओं की चर्चा करने लगे, एक तिलमिलाहट सबकी छाती पर नागिन की भाँति लेट गयी।.... फिर भी वे निरुपाय से बैठे रहे।

"....तब हमें भी असुर वन्दियों के साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए।" —प्रजापति बोले।

महाराज की मौन मुद्रा पर हास्य का कम्पन उभरा,—"....आपके विचार से हम भी असुर हो जायें।....प्रजापति, हमारे और उनके व्यवहार का अन्तर मात्र इन्द्र और वृषपर्वा के व्यवहारों का अन्तर नहीं है, वरन् यह मौलिक अन्तर है सुर और असुर संस्कृतियों का।" क्षण भर वे कुछ सोचते हुए रुके, फिर बोले,—"हम कभी भी वैसा व्यवहार उनके बन्दियों के साथ नहीं कर सकते जैसा वे हमारे वन्दियों के साथ करते हैं।"

"....वन्दी देवता यातनाएँ भुगतते रहें और हम अपने सांस्कृतिक आदर्शों को छाती से चिपकाये रहें ?"—यह तीखी ध्वनि शची की थी।

"नारी की भावुकता की अपेक्षा न तो सांस्कृतिक आदर्श करते हैं, शची,....और न आज की राजनीति।....उसे तो अपेक्षा है आचार्य के विवेक की।"

बड़ी योग्यता से महाराज ने समस्या को आचार्य वृहस्पति की ओर उछाला।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब तक चुप बैठे आचार्य जैसे झकझोर दिये गये। उनके मुख से अचानक निकल पड़ा—महाराज ठीक कहते हैं।"

"तब क्या करना चाहिए ?"—प्रजापति ने पूछा।

"... इसीलिए तो आज अमात्य मंडल की यह बैठक आहूत है।"—स्पष्ट लगा कि आचार्य एक बन्द राह पर निरीह खड़े हैं। महाराज ने उनकी मनःस्थिति का अनुमान लगा लिया। वे पुनः बोलने लगे,—"देखिए स्थिति स्पष्ट है। अब मैं घोषित रुग्ण हूँ। तन से भले ही न होऊँ, पर मन से तो हूँ ही।... अपने ही प्रासाद में वन्दी का जीवन अब जीऊँगा।... और आप लोग भी हमसे दूर नहीं रहेंगे।...युद्ध तो स्थगित है ही, हमारी गति विधि भी मात्र प्रासाद तक केन्द्रित हो गयी है। अब दो ही व्यक्ति रह जाते हैं, जो कुछ कर सकते हैं। वे है हमारा पुत्र जयन्त और आचार्य पुत्र कच ! ... .कुछ ऐसा संयोग है कि दोनों इस समय उपस्थित नहीं हैं।"

इसी बीच तड़पते बादलों के साथ तेज हवा का झोंका आता है और सभा कक्ष के वीच मुख्य दीप शिखा काँप कर बुझते-बुझते रह जाती है। "कड़कते बादलों और अन्धकार के बीच हमें रास्ता तो खोजना ही होगा।"—इन्द्र की निराशा से बोझिल आवाज निकली थी कि पानी से भींगा लथ-पथ कच मंत्रणा कक्ष में प्रविष्ट हुआ। उसे देखते ही वृहस्पति ने कहा,—"तुम तो मुझसे पहले चले थे।"

"हाँ, जयन्त से कुछ विचार करने लग गया था।"

"... तब जयन्त को क्यों छोड़ दिया ?"—इन्द्र ने पूछा।

"उन्होंने कहा कि तुम चलो मैं जयन्ती को लेकर आ रहा हूँ।"

"लगता है, कि अब देवताओं की राजनीति युवकों के हाथ में ही जाने वाली है।"—शची बोली, पर उसके मुख के भाव से कुछ भी स्पष्ट नहीं हुआ कि उन्होंने ऐसा क्यों कहा ?....किन्तु महाराज बड़े सहज भाव से बोले,—"यह अच्छी बात है। नये रक्त की सक्रियता कदाचित् हमें कोई मार्ग दिखा सके।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"····अब हमें नये रक्त पर ही भरोसा करना चाहिए।"—महामात्य ने कहा।

"भगवान् की कृपा हुई तो कोई-न-कोई मार्ग अवश्य ढूँढ़ लिया जायेगा।"—सिर के बाल पोंछते हुए कच ने कहा।

"भगवान् को छोड़ो, वह भी बहुत बूढ़ा हो गया होगा। उसके यहाँ भी कोई नया रक्त हो, तो उसके कृपा की आकांक्षा करो।"—इन्द्र की मुस्कराहट एक तरल हास में परिवर्तित हो गयी।

निश्चित ही इन्द्र का व्यंग्य कच की उभरती प्रतिभा पर एक चोट था। फिर भी वह विचलित नहीं हुआ। उसने बड़े शान्त भाव से कहा,—"यदि भगवान् ने भी नये रक्त से काम लिया होता, तो वह भी इतनी परेशानी में न पड़ता।"

मौन से टकराकर कच की यह ध्वनि चूर हो गयी। लोग अप्रत्याशित चुप्पी साध बैठे। शायद नयी और पुरानी पीढ़ी के द्वन्द्व के पूर्व कुछ क्षणों के लिए ऐसी ही चुप्पी छा जाती है, किन्तु यह स्थिति अधिक देर तक न रही। जयन्त के प्रविष्ट होते ही इन्द्र बोल उठे,—"बड़ी देर कर दी, वह भी ऐसे समय जब सारा निर्णय तुम्हीं लोगों को करना है।"

"क्या करता? एक चर कुछ महत्व की सूचना लेकर आ गया था।"

"महत्व की सूचना' सभी के कान खड़े हो गये। जयन्त ने संक्षेप में बताया कि शुक्राचार्य वृषपर्वा की राजधानी छोड़कर अपने आश्रम में चले गये हैं।"

"उन्होंने मात्र वृषपर्वा की राजधानी ही छोड़ी न, वृषपर्वा को तो नहीं छोड़ा?"

"यही तो नहीं ज्ञात हो सका।"

"····किन्तु इतना ज्ञात होना भी कम महत्व का नहीं है।"—इस बार आचार्य बोलते रह गये,—"मैं उसकी प्रवृत्ति जानता हूँ, महाराज।····ऐसा राजस और तामस वृत्ति का दूसरा ऋषि कदाचित् ही आर्यावर्त में हो।····सुरा और सुन्दरी का जन्मजात लोभी शुक्र असुरराज की राजधानी छोड़ दे,···· ····अवश्य ही कोई रहस्य है।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"सदैव भ्रमर पुष्प के ही पास रहे, यह कैसे सम्भव है ? उसमें अरुचि भी तो हो सकती है ?"

"पुष्प और भ्रमर के बीच अरुचि, हाँ .... हाँ ।"—आचार्य हँसे—"....अरुचि नहीं, अन्तराल कहो, प्रजापति ।"—एक हल्की हँसी पूरे माहौल को गुदगुदा गयी ।

"तब हो सकता है, यह अन्तराल ही हो ।"—इन्द्र ने कहा ।

"अन्तराल के लिए राजधानी छोड़ने की क्या आवश्यकता थी, वह तो वहाँ रहकर भी सम्भव था ।"—धवल दाढ़ी और मोछों के बीच उलझी हुई मुस्कराहट को और स्पष्ट करते हुए वे बोलते रहे,—"भ्रमर पुष्प को भले ही छोड़ दे, पर रस का लोभ नहीं छोड़ सकता ।"

"इसी रह लोभी होने के कारण तो यह स्थिति पैदा हुई ।"—जयन्त ने उलझे रहस्य की एक गुत्थी और खोली,—"चर का कहना था कि शुक्राचार्य प्रमोदवन की पुष्करिणी में शर्मिष्ठा के साथ जलक्रीड़ा कर रहे थे । शायद यह बात असुरराज को अच्छी नहीं लगी ।"

इतना सुनना था कि देवगुरु उछल पड़े,—"देवताओं के ग्रह अच्छे दीखते हैं, महाराज ।... यदि यह बात हुई है, तो वृषपर्वा का विनाश ही समझिए । ....वह एकाक्षी किसी को क्षमा करना जानता ही नहीं ।"

"....किन्तु आचार्य जी, यह चर का अनुमान मात्र है ।"—जयन्त बोला ।

"अनुमान भी तो ज्ञान का एक आधार होता है, वत्स !"

वृहस्पति की मुद्रा एकदम बदल गयी थी, तनाव ढीला पड़ गया था, किन्तु देवराज अब भी गम्भीर थे । आचार्य द्वारा बतायी गयी शुक्र की प्रकृति उनके मन में जैसे बैठ नहीं पा रही थी,—"समस्त असुरों का आचार्य मात्र इतनी छोटी सी बात से नाराज हो जाये ।... बात कुछ समझ में नहीं आती ।"

"बात इसलिए समझ में नहीं आती कि आप उस एकाक्षी की प्रकृति नहीं जानते ।"

"जान भी तो आप के ही द्वारा रहा हूँ ।"—इन्द्र ने कहा ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"..किन्तु मेरे द्वारा उसे पहचानना व्यर्थ है।"—वृहस्पति की ध्वनि अपनी गम्भीरता बनाये रही,—"..... नारी अपने नेत्रों द्वारा, पुरुष अपने मित्रों द्वारा और आचार्य अपने शिष्यों द्वारा पहचाना जाता है। ... शुक्राचार्य को भी उसके शिष्यों के माध्यम से ही पहचानिए, देवराज।"—वृहस्पति कभी इतना खुलकर शुक्र के विषय में नहीं बोले थे। सम्पूर्ण अमात्य परिषद आज उन्हीं को सुन रही थी। उन्होंने आचार्य शुक्र के सम्बन्ध में और भी कई विशेष बातें बतायीं।

अन्त में अमात्य परिषद का निष्कर्ष यही था कि समय और सरिता का प्रवाह किसी की प्रतीक्षा नहीं करता, वह तो आगे बढ़ता ही रहेगा। यह अवसर उपयुक्त है, यदि हाथ से निकल गया, तो हो सकता है पछताना पड़े, इसलिए जो करना हो कर डालना चाहिए।

किन्तु अधिकांश एक दूसरे की 'हाँ' में 'हाँ' ही मिला रहे थे। कोई ठोस प्रस्ताव प्रस्तुत करने की स्थिति में नहीं दीखता था। इस उलझनभरी परिस्थिति से परिषद को उबारा वरुण ने,—"अब तक की सारी योजना तो कच के ही प्रस्ताव से बनी है। इस बार भी हमें अपना भविष्य आचार्य कुमार के ही हाथों में सौंप देना चाहिए।"

"मैंने सारी योजना बना ली है।"—कच ने छूटते ही कहा,—"... किन्तु सुरहित में मैं उन्हें अभी गोपनीय ही रखूँगा।"

आप गोपनीय ही रखिए, हमें उससे कुछ लेना देना नहीं है। हम केवल इतना जानते हैं कि देवताओं का कल्याण होना चाहिए।"—इन्द्र ने कहा। उसके स्वर की निरीहता स्वार्थ से शिथिल थी, कुछ को ऐसा भी लगा कि वह देवताओं के कल्याण से अधिक अपनी गद्दी के सम्बन्ध में सोच रहा है।

"ऐसा ही होगा, महाराज!"—कच का विश्वास अपने उच्च शिखर पर था।

"इसके लिए मेरा जो भी सहयोग चाहो तुम निःसंकोच कहो।"

"सम्प्रति आपका सहयोग यही है कि आप रुग्ण बनकर ही पड़े रहें।"—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऐसी भंगिमा के साथ कच ने कहा था कि सबको हँसी आ गयी। इन्द्र को लगा कि कच उसकी असमर्थता पर सुई चुभो रहा है, फिर भी वह मुस्करा कर रह गये। उन्होंने नितान्त सामान्य भाव से पूछा,—"...तो क्या तुम शुक्र के आश्रम में जाओगे?"

"योजना तो ऐसी ही है।"

"...और किसी को भी साथ ले जाना चाहोगे?"

"यदि आपकी अनुमति मिली तो एकाध को साथ ले जा सकता हूँ।"

"किसके लिए अनुमति चाहते हो?"

कच कुछ नहीं बोला। उसकी दृष्टि एक जगह केन्द्रित होकर फिर लौट आयी। एक कुतूहलमय शान्ति सबकी आकृतियों पर चिपक गयी। आखिर कच किसका नाम लेता है। महाराज ने सोचा कि वह कुछ सैनिकों और अमात्यों को साथ ले जाना चाहेगा। जयन्त ने सोचा कि वह शायद मेरे लिए कहेगा। महामात्य दण्डनामक के लिए सोच रहे थे। आचार्य, वरुण, प्रजापति आदि विचार शून्य से बैठे रहे। बाहर आकाश गड़गड़ाता रहा। वर्षा तेज हो चली थी।

कच के मौन की अवधि को विस्तृत होते देख इन्द्र बोल पड़े,—"यदि तुम ले जाने वाले का नाम इस समय न बताना चाहो तो बाद में बता देना।"

"नहीं, ऐसी कोई गोपनीय बात नहीं है।"

"तब क्यों नहीं बताते?"

"सोचता हूँ, कैसे कहूँ? साहस नहीं हो रहा है।"

"जब तुम अभी ही साहस छोड़ने लगे तो आगे क्या होगा?"

"आगे के लिए साहस बहुत है, किन्तु..."

"...किन्तु क्या? साफ कहो। किसे ले जाना चाहते हो?"

"जयन्ती को।"—उसने मुस्कराते हुए कहा और एक दृष्टि जयन्ती की ओर डाली। वह धरती में गड़ी जा रही थी। उसकी धमनियों में रक्त का प्रवाह तेज हो गया था। उसे ऐसा लग रहा था, मानो वह कच के विशाल नेत्रों में डूबती चली जा रही है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कच की यह घोषणा जयन्ती के लिए ही नहीं, वरन् सबके लिए अप्रत्याशित थी। किसी ने भी नहीं सोचा था कि कच का जयन्ती के प्रति इतना आकर्षण है। स्वयं इन्द्र शची को देखते रह गये। सत्ता से चिपकी उनकी विवशता मौन थी औरव ही स्वीकृति मान ली गयी।

कच भी चुप था। अब उसकी दृष्टि अपने पिता की ओर गयी। उनकी आग्नेय आँखें चिनगारियाँ उगल रही थीं। कच को उनके ताप का अनुभव हुआ। वह कहना चाहता था कि जयन्ती को मैं अपने लिए नहीं, देवताओं के लिए लिये जा रहा हूँ, किन्तु वह कुछ नहीं बोला। उसकी मूकता में हर परिषद अपनी शंकाओं का समाधान खोज रहा था।

इसी बीच फूँफकारती हुई हवा का एक तेज झोंका आया और कई हिलोरें मारकर लगभग सभी दीप दानों की ज्योति बटोरता चला गया। मात्र दक्षिण कोण में एक दीपशिखा अब भी लपलपा रही थी। झीने अन्धकार का उत्तरीय मंत्रिपरिषद पर पसर गया था।

इन्द्र की चिन्तन मुद्रा पर कुछ आड़ी तिरछी रेखाएँ और बनीं। उन्होंने कच को सम्बोधित करते हुए कहा,—"हम सब लगभग बुझे हुए हैं, झंझा से संघर्ष लेने वाला वह दक्षिणा कोण का दीप ही तुम्हारा प्रतीक है।.... तुम्हीं इस अन्धकार की मात्र एक किरण हो।" इन्द्र की गम्भीर आवाज उस मूक सागर में तैर गयी।

"मैं स्वयं तो किरण नहीं हूँ, किन्तु इस अन्धकार में किरण खोजने का प्रयास करूँगा।"—उसकी आवाज में विश्वास और उभरा,—"....और वह मिलेगी भी, यदि जयन्ती ने मेरे आदेशों का पालन किया।"—कच बोला।

"तुम्हारे आदेशों का पालन और जयन्ती करे!"—शची का अहं फनफनाया।

"हाँ, पट्टमहिषी, देवसृष्टि की रक्षा के लिए ऐसा ही करना पड़ेगा।"—कच की आवाज जरा भी नहीं दबी।

एक क्षण के लिए पुनः शान्ति छा गयी। इन्द्र ने कुछ सोचते हुए कहा,—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"यदि देवसृष्टि के अस्तित्व का प्रश्न है तो जयन्ती को कच के आदेश का पालन करना ही होगा।"

वरुण और प्रजापति को यह बात अच्छी नहीं लगी। वृषपर्वा जब शर्मिष्ठा को दूसरे की इच्छा पर नहीं छोड़ सका, तब देवराज जयन्ती को कच की इच्छा पर छोड़ दे। यह उन्हें स्वीकार नहीं था। अपनी अस्मिता की रक्षा वे जयन्ती के मूल्य पर करना नहीं चाहते थे। उन्हें लगा जैसे वे स्वयं अपनी पुत्री का विक्रय कर रहे हों। वे मौन न रह सके,—"जयन्ती कच की सेवा में रह सकती है, पर उसके हर आदेश मानने की वाध्यता उसे नहीं होनी चाहिए।"

"यही तो मैं सोच रही थी।"--यह शची नहीं, अन्यों का सहारा पाकर माँ का हृदय बोला था, किन्तु इन्द्र के निश्चय में कोई परिवर्तन नहीं आया,— "देवसृष्टि की रक्षा के लिए मैं जयन्ती क्या तुम्हारी भी बलि दे सकता हूँ।"-- देवराज का स्वर इतना तीक्ष्ण था कि शची को चुप हो जाना चाहिए था, फिर भी वह बोल पड़ी,—" ·· आप नारी की स्थिति नहीं समझते महाराज, वह अपना बलिदान दे सकती है, पर वह अपनी चारित्रिक मर्यादाओं की बलि नहीं चढ़ा सकती।"--शची कहती ही गयी,—"यदि जयन्ती के रक्त से देवसृष्टि बच जाये तो इसमें मैं अपना और जयन्ती का गौरव मानूँगी, वरन् इसके कि वह किसी के आदेशों पर चलनेवाली दासी बन जाये, कोई मदारी उसे बँदरिया की तरह नचाये।"

तुम दासी बनने की बात करती हो? उन देवताओं की कल्पना करो, उनके सम्बन्ध में सोचो जो बन्दी होकर भी वृषपर्वा के यहाँ दास से भी जघन्य जीवन जी रहे हैं।"--इन्द्र की इस कड़क के बाद कोई कुछ बोलने की स्थिति में नहीं था। अंधेरा और गाढ़ा हो गया था।

फिर भी शची की दबी जबान एक बार और खुली,—" ·· अब जयन्ती शिशु नहीं है। हमें उसकी भी इच्छा जाननी चाहिए।"

सब चुप थे। इन्द्र के विस्फारित नेत्र प्रश्नवाचक मुद्रा में जयन्ती की ओर मुड़े। जयन्ती अब भी गड़ी जा रही थी। अपने पिता की ओर देखना तो दूर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

था, वह अपने चारों ओर भी नहीं देख पा रही थी। उसे लग रहा था मानो कच की विशाल भुजाएँ उसे समेट लेने के लिए बढ़ी चली आ रही हों और वह उसमें खिचती चली जा रही है।

जयन्ती का मौन एक भावुक नारी की प्रेमार्द्र मूकता थी, जिसे वीरांगना की प्रशंसा मिली,--"मैंने कहा था न कि जयन्ती कभी पीछे नहीं रहेगी। मेरी बेटी जो ठहरी, हाँ ···हाँ ·· हाँ।"—एक कृत्रिम हँसी इन्द्र ने अपने अधरों से सयास उत्पन्न की।

वरुण प्रजापति के कान में भुनभुनाया,—"देख रहे हो न, आज देवराज अपनी पुत्री तक को समर्पित करने को तैयार हैं।"--इतना कहकर वह थोड़ा रुका। शायद यह देखने लगा कि कच उसकी बातें सुन तो नहीं रहा है। आश्वस्त होकर वह फिर बोलने लगा--"····वह भी किसलिए ? हमारे अस्तित्व की रक्षा के लिए नहीं. वरन् अपने सिंहासन की रक्षा के लिए।"

"क्या अँधेरा ही रहेगा कक्ष में ?"—इस बीच इन्द्र का स्वर झुँझलाया।

"नहीं महाराज, प्रतिहारी व्यवस्था के लिए गये हैं।"—महामात्य ने कहा।

"व्यवस्था करते-करते लगता है सबेरा हो जायेगा।"

अब महामात्य स्वयं उठे, क्योंकि उन्हें महाराज की परिवर्तित मुद्रा का भान हो चला था।

वरुण अब भी बुदबुदा रहा था, "हाय री राजलिप्सा ! ···· इन्द्र पुत्र छोड़ सकता है। पुत्री छोड़ सकता है, पर सिंहासन नहीं छोड़ सकता।"

लगता है, उस भुनभुनाहट का कोई छींटा इन्द्र के कानों पर भी पड़ा, वह बोल उठा,—"क्या कहना चाहते हो, वरुण ?"

"कुछ नहीं महाराज, कह रहा था कि वर्षा तेज हो रही है।"—वरुण का यह अप्रत्याशित परिवर्तन जहाँ एक ओर अत्यन्त नाटकीय था, वहीं दूसरी ओर आकस्मिक भी।

"वरुण जी को चिन्ता है कि कहीं इस तेज बौछार में आपका सिंहासन भींग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न जाये। प्रजापति ने हँसी के बीच वास्तविकता को जरा सा उछाल दिया। वरुण को प्रजापति से कभी ऐसी आशा नहीं थी, वह सिटपिटा गया।

"सिंहासन तो भींगता और सूखता ही रहता है प्रजापति! इसकी चिन्ता वरुण को नहीं करनी चाहिए।" इतना कहकर इन्द्र चुप हो गये और एक बार वरुण को पुनः देखा भी।

अब तक मशालें लेकर प्रतिहारी, दीप जलाने आ चुके थे। उनकीं काँपती लौ में इन्द्र की मुखमुद्रा और अधिक गम्भीर लगी। दूसरी ओर जयन्ती कच को एकटक निहार रही थी। वह डूबती जा रही थी कि अचानक वह कच के पाषाण मन से टकरा गयी—"याद रखो मैं ब्रह्मचारी हूँ। मेरे लिए तुम्हारा स्पर्श भी वर्जित है।"

निरभ्र आकाश। मुस्कराता हुआ चन्द्रमा। सनसनाती हवा। उन्मुक्त प्रकृति। प्रशस्त पथ। पथ पर भागता हुआ रथ और रथ में बैठे थे कच और जयन्ती। रथ चालक को निर्देश था कि वह शुक्र के आश्रम से एक योजन पहले उन्हें छोड़ देगा।

कई दिनों बाद आज वे गन्तव्य के निकट थे। जब रथ से उतरे तो दुग्ध स्नात प्रकृति ने उनका स्वागत किया। सारथी ने अभिवादन की औपचारिकता बरती और पूछा—"महाराज के लिए कोई सन्देश?"

हमारा प्रणाम कहना और उन्हें विश्वास दिलाना कि आपके आशीर्वाद से वे अवश्य सफल होंगे।"—रथ लौट पड़ा।

दोनों पैदल चलने लगे। ब्राह्म मुहूर्त आश्रमों में अँगड़ाई लेने लगा था। वैदिक मंत्रों से वह आरण्यक स्तब्धता सुगबुगा उठी थी।—"लगता है, उषाकाल होने वाला है?"—जयन्ती ने कहा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"...तो क्या, तू चाहती है कि रात ही रहे?"—कच ने व्यंग्य किया, जयन्ती सकुचायी नहीं, क्योंकि लज्जा अन्यों की उपस्थिति में पनपती तथा एकान्त में कुम्हला जाती है।...ऐसी ही कुम्हलायी लज्जा से लिपटी जयन्ती मुस्कराती रही। उसने प्रतीची की ओर झुके चन्द्र को देखा, फिर वासना भरी एक दृष्टि कच के सुगढ़ देह पर डाली और धीरे से बोली—"एक बात बताओगे?"

"क्या?"

"तुमने मुझे ही क्यों अपने साथ के लिए चुना?"

"....इसलिए कि मुझे तुम्हारी आवश्यकता थी।"

"सच! तुम मेरी आवश्यकता का अनुभव करते हो।"—इतना कहते-कहते उसने कच के वृषभ स्कन्धों पर अपने दोनों हाथ रख दिये। अधरों के बीच खिल उठी। यदि जरा भी अनुकूल प्रतिक्रिया होती तो शायद वह समर्पित हो जाती, किन्तु कच की मनःस्थिति में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ था। उसने जयन्ती के दोनों हाथ झटक दिये और कहा,—"तुम्हें लज्जा नहीं लगती? मैं ब्रह्मचारी हूँ और तुम एकान्त में मेरा स्पर्श कर रही हो।"

जयन्ती की कल्पना का दर्पण एक क्षण में चूर हो गया था। उसका स्वप्न कटे वृक्ष से छुटी माधवी लता की भाँति धूल में मिल चुका था। वह उसे बटोर नहीं पायी। कभी उसे और कभी आकाश के चन्द्र को देखती रही।

"क्या देख रही हो?"—कच ने पूछा।

"चन्द्र कुछ धुंधला दिखायी दे रहा है।"

"लगता है तुम्हारी दृष्टि में कोई दोष आ गया है।....उसकी चिकित्सा करानी पड़ेगी।"

"चिकित्सा दृष्टि की नहीं, मन की करानी पड़ेगी, कच!"

"क्यों? मन में क्या हुआ है?"

"यह तो मन ही बता सकता है कि उसे कितनी चोट लगी है।"

"मन पर चोट का अनुभव करने वाली नारी, देवसृष्टि की रक्षा नहीं कर सकती। इसके लिए तुम्हें मोम का नहीं पत्थर का बनना पड़ेगा।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"यही तो मेरा दुर्भाग्य है कच, कि तुम नारी को समझ नहीं सकते।"

"क्यों नहीं समझ सकता ?"

"क्योंकि तुम ब्रह्मचारी हो।"—जयन्ती मुस्करायी। ज्योत्स्ना से घुली उसकी मुस्कराहट ने कच को भिगोने का प्रयास किया। वह बोलती रही,—"नारी का अस्तित्व कोमलता में है, कठोरता में नहीं, समर्पण में है, विजय में नहीं। लुट जाने में है, लूटने में नहीं।"

"....मूर्खता में है बुद्धिमानी में नहीं।"—कच ने जयन्ती के स्वर में स्वर मिला दिया और एक विद्रूप हँसी हँसने लगा,—हम यहाँ प्रेमालाप करने नहीं आये हैं, वरन् एक दायित्व के बोझ से बोझिल हैं।"

"यदि मैं उस बोझ को न वहन करूँ तो ?"—जयन्ती ने पूछा।

"तो तुम्हें पिता द्वारा दिये गये वचन के उल्लंघन का पाप लगेगा।"

'पाप'—वह एकदम खिल खिला उठी,—"क्या है पाप ?"

"पिता के दिये हुए वचन का गला घोंटना।"

"....और अपने हृदय की आवाज का गला घोटना क्या पाप नहीं है, ब्रह्मचारी।....सोचो तुमने अपने ब्रह्मचर्य की कठोर शिलाखण्डों के नीचे अपनी कितनी इच्छाओ को समाधि दी है ? क्या वह पाप नहीं है ?"

"वह तो वासना का दमन है।....इससे चित्त निर्विकार होता है।"

"दमन और निर्विकार ! क्या बात कहते हो ब्रह्मचारी ?" जयन्ती कच पर व्यंग्य करते हुए हँसी,—"दमन में छटपटाहट होती है। एक सुलगती हुई ललक होती है, चीखती हुई लिप्सा होती है,... और इन सबका परिणाम होता है विकार, वशिता और कुण्ठा।....तुम्हारा ब्रह्मचर्य इन्हीं कुण्ठाओं का ढेर है कच !....वासना स्वयं में कुछ नहीं, दमित इच्छाएँ ही वासना की संज्ञा लेती हैं, जब उन्हें मुक्त किया जाता है तब सरित प्रवाह की भाँति खिल-खिलाती हुई जीवन को वह रससिक्त कर देती हैं।"—इसी बीच झुरमुट में बैठा कोई पक्षी गा उठा।

कच ने अनुभव किया कि यह जयन्ती नहीं, वरन् जयन्ती का तिरस्कृत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समर्पण उससे बदला ले रहा है। वह चुप हो गया। उसके मौन में जहाँ एक ओर उसकी बौद्धिक दुर्बलता थी, वहीं दूसरी ओर धधकती अग्नि को न छेड़ने की योग्यता भी।

दोनों एक शिला खण्ड पर बैठ गये। सामने कल-कल करता हुआ अविकल एक निर्झर बह रहा था। प्राची का नभ रजतवर्णी होने लगा था। मन्थर मलयानिल सुप्त प्रकृति को सहलाता चला जा रहा था।

पल के बाद पल सरकते चले गये। गगन की श्वेतता लालिमा में बदलने लगी।

"थोड़ी देर में सबेरा हो जायेगा"—कच ने कहा।

"यह तो मैं भी देख रही हूँ।"

"किन्तु इसके पहले ही हम दोनों को अलग हो जाना चाहिए।"

"अलग हो जाना चाहिए!"—वह साश्चर्य बोली,—"....पर तुम तो साथ रखने के लिए मुझे लाये थे।

"नहीं, अलग करने के लिए लाया था।"

"तब तुमने यह बात पहले क्यों नहीं बतायी थी?"

"पहले यह बताने का अवसर नहीं था।....इससे गोपनीयता नष्ट होती और हमारी सारी योजना खटाई में पड़ जाती।

"क्या है आपकी योजना?"

"हमारी योजना है, तुम्हारी कला का उपयोग करने की।"—जयन्ती की प्रश्नवाचक मुद्रा बनी रही। कच ने उसे समझाते हुए कहा,—"तुम नृत्य और गायन में पारंगता हो और सुन्दर भी। तुम्हें एक अप्सरा के रूप में शुक्र के आश्रम में प्रवेश करना चाहिए और उन्हें अपनी कला से रिझा लेना चाहिए।"

जयन्ती के नेत्रों में परवशता उभर आयी, मानो वह पूछना चाह रही हो कि यह कला का उपयोग है या दुरुपयोग, पर वह कुछ नहीं बोली। एक गम्भीर निःश्वास लेकर रह गयी। "अब मुझे शुक्राचार्य की सेवा में रहना पड़ेगा और तुम्हें?" —उसने पूछा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"मैं देवयानी की सेवा में रहूँगा।"

"सुना है, वह अनिंद्य सुन्दरी है।"

"हाँ सुनता तो मैं भी हूँ।"

"तो तुम उसकी सेवा में रहोगे?"

"हाँ!"—जयन्ती ठगी सी रह गयी। वह कच को एकटक निहारती रही। उसके प्रज्वलित नेत्र उसपर चिनगारियाँ विखेरते रहे। वह स्वयं भभक रही थी, क्योंकि नारी सब कुछ सह सकती है, पर अपने प्रेम का विभाजन नहीं सह सकती।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

□□□

आज भाद्र पूर्णिमा है। भृगु आश्रम में सोमयज्ञ हो रहा है। संध्या होते-होते सोम की गंध में आश्रम डूब जायेगा। उसी समय जयन्ती को नर्तकी की मुद्रा में प्रविष्ट होना है और कला एवं सौन्दर्य के प्रथम प्रहार में ही आचार्य शुक्र को सदा-सदा के लिए अपने रूपपाश में बाँध लेना है। कहने और सुनने में यह कितना सरल है, पर क्या सम्भव हो सकेगा ?—जयन्ती सोचती है। कच कहता है कि ज्यों-ज्यों सोम का घूंट कण्ठ के नीचे उतरता है, उसका प्रभाव मस्तिष्क पर छाने लगता है : झंझा में पड़े पत्ते की भाँति बुद्धि मंडराने लगती है। मन वासना की परिधि में भनभनाने लगता हैं। हर डग में स्वयं फिसलन उत्पन्न हो जाती है। ऐसे में बड़ी सरलता से किसी को धराशायी किया जा सकता है।

जयन्ती जहाँ एक ओर अपनी भूमिका के सम्बन्ध में सोचती थी, वहीं रह-रहकर कच का ऊर्जस्वी व्यक्तित्व उसके नेत्रों के सामने आ जाता था। उसे लगता था, जैसे देवयानी उससे कच को छीनकर भागी चली जा रही है। शिला खण्ड पर बैठी हतप्रभ, लुटी सी जयन्ती के समक्ष निर्झर के निनाद के अतिरिक्त कुछ नहीं रह जाता हैं।

"क्या सोचने लगी, जयन्ती ?"—कच ने पूछा।

"कुछ नहीं।"—वह एकदम हड़बड़ा उठी।

"नहीं, कुछ तो अवश्य है ?"—कच मुस्कराया।

जयन्ती ने स्वयं को छिपाने के लिए झूठ का सहारा लिया,—"सोचती हूँ, अपने अभिनय में किस सीमा तक सफल हो पाऊँगी।"

"कर्म के पहले ही परिणाम का चिन्तन अकर्मण्य करते हैं, 'जयन्ती।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"मैं परिणाम का चिन्तन नहीं, योजना के सन्दर्भ में सोच रही हूँ।" जयन्ती ने कहा।

"योजना के सन्दर्भ में ? ·· ओ हो।"—कच हँसा। "यह काम हमारे ऊपर छोड़ दो।"

"यह काम ही नहीं, मैं तो तुम्हीं को छोड़ रही हूँ।"—जयन्ती हँसती हुई दोहरी होकर कच के तन पर लगभग गिर सी गयी। उसने उसे सँभाला और सदा की भाँति उसे सावधान करते हुए बोला,—मैंने कहा है न, कि मैं ब्रह्मचारी हूँ। तेरा स्पर्श भी मेरे लिए वर्जित है।"

"क्या तुम ऐसा देवयानी से भी कह सकोगे ? उस रूपसी के सौन्दर्य जाल में फँसने से क्या तुम्हारा ब्रह्मचर्य बच सकेगा ?"

"अवश्य बचेगा जयन्ती ?—"कच बड़ी दृढ़ता से मुस्कराया,—"जानती हो मैं डगमगाने वाला नहीं हूँ। हर फिसलन मेरे पग को स्वयं चिपका लेती है।"—उसकी दृढ़ता ने ही जतन्ती के हाथ पर हाथ रखकर वचन दिया था कि वह किसी के रूपपाश में आबद्ध नहीं होगा और नाटक के पटाक्षेप तक अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा करेगा।

अब जयन्ती को सन्तोष है। देवयानी भले ही कच को हर ले जाये, पर उसके वचन को तो नहीं हर सकती। ·· पर मनुष्य कब तक मन को दबाता रहेगा ? कब तक अपनी वासनाओं को ढकेलता रहेगा ? ·· वह सिहर उठती है।

"अब अधिक सोचने का समय नहीं है।"—कच बोला

"तब स्पष्ट कार्यक्रम निश्चित करो।"

"तुम्हें आज चन्द्रोदय तक आश्रम में प्रवृष्ट हो जाना चाहिए।"

"यदि मेरा परिचय पूछा जायेगा तो क्या बताऊँगी।"

कच सोचने लगा,—"अपनी बुद्धि का उपयोग करना।"

जब तुम्हारी बुद्धि काम नहीं कर रही है तब मेरी क्या करेगी।" इतना कहते ही उसे जैसे झटका सा लगा,—"····मैं तो तुम्हारे आदेश का पालन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करने आयी हूँ। ऐसी स्थिति में अपनी बुद्धि का आदेश मानने का अवसर ही कहाँ है ?"—जयन्ती मुस्करायी।

कच सोचता रह गया कि सचमुच यदि इससे परिचय पूछा गया तो क्या वतायेगी। "क्यों नहीं मैं अपना वास्तविक परिचय दे दूँ।"—जयन्ती बोली।

"सब गुड़ गोबर करेगी क्या ?"—कच इतना कह कर मुस्कराया। जयन्ती चुप हो गयी। प्रस्तर खण्ड पर प्रस्तर प्रतिमा सी बैठी रही।

कुछ क्षणों के मौन के बाद कच ने कहा,—"बताना कि मैं देवकन्या हूँ। मेरे पिता सोम दत्त असुरराज के यहाँ बन्दी हैं। उन्हीं की मुक्ति की याचना करने आयी हूँ।"

"भूठ के समर्थन में यदि और झूठ का सहारा लेना पड़ा तो ?

"तो अपनी बुद्धि के अनुसार लेना।"—वह मुस्कराया,—"यह तुम्हारे विवेक को मिल रही स्वतन्त्रता नहीं है, वरन मेरा आदेश है।"—कच के साथ जयन्ती भी हँस पड़ी और बोली,—"यदि कोई विषम स्थिति पैदा हुई तब क्या करूँगी ?"

"मैं तो रहूँगा ही !"—कुछ सोचते हुए वह कहता गया,—"हर मध्य रात्रि को इसी शिला खण्ड पर या इसके आस-पास मिलने की चेष्टा करना। उसी समय दिन के कार्यों की समीक्षा की जायेगी।"

जयन्ती अब भी बैठी सोचती रही। उसके चिन्तन ने वाणी का सहारा लिया, पर ध्वनि अस्पष्ट ही रही। "क्या भुनभुना रही है ?"—कच ने कहा।

सूर्योदय के पूर्व ही कच और जयन्ती एक दूसरे से अलग हो गये, एकदम अनजाने, अनचीन्हे जैसे। एक मार्ग से दो पगडंडियाँ मानो दो दिशाओं की ओर चली गयी हों।

कुछ देर बाद कच पुनः उसी शिलाखण्ड पर लौटा। सूर्य निकल आया था। हिम शिखरों पर कनक कलश ढुलक गये थे। निर्झरों में स्वर्ण बहा चला आ रहा था। वहीं उसने स्नान किया, सन्ध्या की और सोचते हुए बैठा रहा। शायद वह शुक्र के समक्ष उपस्थित होने की मानसिक तैयारी कर रहा था। आँखें बन्द

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

थी। "....कौन हो तुम ?...क्या कर रहे हो ?"—एक उद्धत ध्वनि उससे टकरायी। उसने मुड़कर देखा, लगभग उसी के वय के एक युवक का कुतूहल उसे घूर रहा था। उसने पुनः आँखें हटा लीं, जैसे कुछ सुना ही न हो।

"लगता है तुम बहरे हो।"

"बहरा तो नहीं हूँ, किन्तु बात करने योग्य से ही मैं बातें करता हूँ।"

"क्या कहा ? तुम मुझे बात करने योग्य भी नहीं समझते ?"—उसका स्वर तीक्ष्ण हो गया। "जानते हो मैं कौन हूँ ?"—फिर उसने स्वयं अपना परिचय दिया कि मैं आचार्य का तृतीय पुत्र षण्ड हूँ।

अब कच ने खड़े होकर प्रणाम किया। वह हँसने लगा,—"अब तक मैं बात करने योग्य भी नहीं था, पर अब प्रणम्य हो गया।"

"प्रणम्य आप नहीं, वरन् आपका परिचय है।"—कच ने कहा।

"तुम्हारा तात्पर्य ?"

"तात्पर्य स्पष्ट है कि आप होने वाले मेरे गुरु के पुत्र हैं, इसलिए प्रणम्य हैं।"

"....तो क्या तुम मेरे आश्रम में शिक्षा ग्रहण करने आये हो ?"—उसने कच पर एक चकित दृष्टि डाली।—"तुम्हारा परिचय ?"

"एक ब्रह्मचारी हूँ, ज्ञानार्थी हूँ।"

"यह तो हर अध्येता का सामान्य परिचय है।"

"तो समझो, उसी में मैं भी एक हूँ।"

षण्ड ने कई प्रयत्न कई तरीके से परिचय जानने के लिए किए, किन्तु कच बड़ी चतुराई से टालता गया।....उसने आचार्य, उनकी प्रकृति और आश्रम के सम्बन्ध में बहुत सी बातें उससे जान लीं। उसे यह भी पता चल गया कि लगभग आधी घड़ी बाद आचार्य प्रकृतिस्थ होंगे।

इस बीच कच बातों का जाल बिछाता गया, षण्ड उसमें उलझता रहा। इससे उसकी निकटता भी स्थापित हुई और जानकारी भी।....आखिर अर्ध घड़ी कैसे बितायी जाय ? वह एक झुरमुट की ओर बढ़ा और धरती पर बने एक पगचिह्न के निकट ठिठक गया। वह पगचिह्न जयन्ती का था, पूर्व परिचित।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसने ठिठकने या चकित होने का मात्र अभिनय किया था, क्योंकि उसे अब एक अभिनेता का जीवन जीना था, एक आरोपित जीवन। ऊपर से ओढ़ा हुआ।

उसी पगचिह्न को देखता और गम्भीर होता रहा। फिर उसने पूर्व की ओर आँखें गड़ा कर एक निश्वास भर कर बोला,—"वह इधर ही चली गयी।"

"कौन ?" षण्ड की जिज्ञासा उभरी, किन्तु कच चुप ही रहा।

"तुम बोलते क्यों नहीं ?"—षण्ड की उत्सुकता विराम नहीं चाहती थी।

"वह अप्सरा थी। देवकन्या! अप्रतिम सुन्दरी, ऐसी तो मैंने अपने जीवन में नहीं देखी थी।"

"अप्सरा ?"—षण्ड का मुख खुला का खुला रह गया।—"वह क्या तुम्हारे पास आयी थी ?"

"यह तो मैं नहीं कह सकता, किन्तु गयी अवश्य मेरे पास से थी।"

"जब तुम्हारे पास आयी नहीं, तो गयी कैसे तुम्हारे पास से ?" उसकी ध्वनि में ऊष्मा बढ़ी। व्यर्थ पहेली बुझाने की चेष्टा मत करो।"

"मैंने उसे सामनेवाले शिला खण्ड पर ही देखा था। उसने संकेत से मुझे बुलाया और पार्श्व में बैठने के लिए कहा। पहले मैं हिचकिचाया, किन्तु बार-बार कहने पर मैं उसकी बगल में बैठ गया। किसी तरुणी के, वह भी सुन्दरी के बगल में बैठने का मेरा पहला अनुभव था।

कच अभी बोल ही रहा था कि षण्ड ने पूछा—"यह कब की बात है ?"

"ब्राह्म मुहूर्त हो गया था। आश्रम की यज्ञशाला में अग्नि का आह्वान किया जा रहा था।"

षण्ड ने एक बार फिर कच को बड़े ध्यान से देखा,—"ब्राह्ममुहूर्त, निर्जन प्रकृति, तरुणी, अप्सरा और तुम!" उसकी ध्वनि में अतृप्त वासना थी। कच के मन में धीरे से आवाज उठी—"आत्मा बजायते पुत्रः" षण्ड पुनः बोल उठा,—"सचमुच तुम बड़े भाग्यमान हो।"

"भाग्यमान तो नहीं हूँ, पर यदि आप जैसों की कृपा हुई तो हो जाऊँगा।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"अब भाग्यमान होने में क्या बाकी है ?.... अरे अप्सरा जिसे निर्जन में बुलाये वह भी स्वयं को भाग्यमान न समझे ? आश्चर्य ?"

"..एक ब्रह्मचारी के भाग्य का द्वार अप्सरा की प्राप्ति पर नहीं, वरन् ज्ञान प्राप्ति पर खुलता है, मित्र !" कच के इस आप्त वचन पर प्रतिक्रिया शून्य षण्ड की आँखों के सामने तो वह कथित अप्सरा थी। कच ने भाप लिया और बड़े नाटकीय ढंग से विषयान्तर करते हुए बोला,—"जब मैं उसके पार्श्व में बैठा, वह और मेरे निकट आयी। मेरे कन्धे पर हाथ रखा, तथा पग शिला खण्ड के नीचे जल में लटकाकर सामगान गाने लगी।.... ....आह, कितना मोहक था उसका स्वर। रात्रि के अन्तिम प्रहर की धूमिल चन्द्रिका भी मादक हो गयी थी।"

हाय करते हुए उसने दांत पीस लिये,—"तुमने उसे भुज पाशों में लपेट नहीं लिया ?"

"कैसी बातें करते हो ?"—कच ने कहा—"मैं ब्रह्मचारी जो ठहरा।"

"तुम ब्रह्मचारी नहीं, मूर्ख हो।"—षण्ड जैसे अपनी असफलता पर झुंझला रहा हो,—"हाथ में आयी चिड़ियाँ को जान बूझकर छोड़ दिया।"

"छोड़ न देता तो क्या करता ?"

"तुम्हारा मन छटपटाया नहीं।"

"छटपटाहट तो थी, पर मेरी बुद्धि वासना को दबा रही थी, चित्त को निर्विकार कर रही थी।"

"वासना को दबाना नहीं, वरन् उस पर विजय पाना ब्रह्मचर्य है।"—कच को आश्चर्य हुआ कि षण्ड ऐसा असुर वृत्ति का युवक भी उसे मानव मन की दुर्बलताओं का ज्ञान करा रहा है। कच ने सोचा,—"भले ही यह भोगी हो, पर है तो शुक्र ऐसे नीतिज्ञ का ही पुत्र न !"

"अरे, षण्ड तुम यहाँ खड़े हो, मैं कब से तुम्हें खोज रहा हूँ।"—करमद (करौंदे) की झाड़ी के पीछे से आयी यह आवाज त्वष्टा की थी। उसने बताया कि आचार्य तुम्हें बुला रहे हैं।

त्वष्टा शुक्राचार्य का सबसे बड़ा पुत्र है। भोग और भूख को जीवन की मुख्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विधा के रूप में स्वीकार करने वाला उसका आकर्षक व्यक्तित्व आरण्यक वातावरण में ही नहीं पला था, वरन् एक अरण्य स्वयं उसके भीतर भी जी रहा था। झंझा में भींगे विशाल देवदारु की भांति एक मदिर जंगल उसमें हिलोरें ले रहा था, झुरमुट में अप्सराएँ जिसके अभिसार के लिए व्याकुल रहती हैं, जिसके तड़ागों और निर्झरों में किन्नरियां कल्लोल करती हैं, जिसकी प्रगल्भ प्रकृति में उसकी वासना खुलकर खेलती है।

अपनी जानकारी के अनुसार षण्ड ने कच का परिचय दिया। त्वष्टा ने कच पर एक दृष्टि डाली,—"तुम आश्रम में शिक्षा ग्रहण करना चाहते हो?" वह बोला। कच ने स्वीकारात्मक ढंग से सिर हिलाया।

"किन्तु इस समय तात किसी का भी शिष्यत्व स्वीकार नहीं कर रहे हैं।"

"यदि नहीं स्वीकार करेंगे, तो लौट जाऊँगा।"

"लौट जाओगे।"····कच के सहज उत्तर पर उसे आश्चर्य हुआ,—"तब क्या करोगे?"

"ज्ञान की खोज में किसी और आश्रम की शरण लूंगा।"

उसने इतने निष्छल भाव से कहा कि त्वष्टा को कच की सरलता भा गयी। उन्हीं लोगों के साथ ही कच आश्रम की ओर चला।

एक पहाड़ी अधित्यका पर स्थित यह शुक्र-आश्रम जितना प्रशस्त था, उतना ही रम्य भी। अनेक माध्वी कुंजों, स्वाभाविक पुष्करणियों मृगशावकों के अकृत्रिम प्रकोष्ठों तथा कृत्रिम प्रमदवन और कुञ्जों से सम्पन्न यह आश्रम स्वयं शुक्र के व्यक्तित्व की भांति योग और भोग को बड़े व्यवस्थित ढंग से अपने में समेटे था। आश्रम के विशाल परिसर में प्रविष्ट होते ही कच को लगा कि विलास

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की भी कोई तपोभूमि हो सकती है, जहाँ प्रकृति एक सरल बालिका सी नहीं, वरन् झुरमुटों में नवल वधु सी मुस्कराती है।

भीतर पग धरते ही कच की दृष्टि चकराने सी लगी। वह जिधर जाती उलझ जाती बहुधा त्वष्टा और षण्ड आगे निकल जाते। कच जिसे देखता, देखता ही रह जाता। यह एक सहज मन की अनजान स्थल पर विवशता थी या एक सफल अभिनेता का चातुर्य ? कुछ कहना कठिन था, किन्तु इतना निश्चित था कि कच का रह-रहकर पिछड़ना शुक्र पुत्रों के लिए हास्यास्पद था। वह उसकी अनभिज्ञता पर मुस्कराते थे, हँसते थे और कभी-कभी 'कहाँ से चला आया है यह जीव ?'––कहकर व्यंग्य भी करते थे।

अचानक कच की दृष्टि रसाल वृक्षों के नीचे की पुष्करिणी की ओर गयी। निर्झर की एक धारा उसमें गिर रही थी। दूसरी ओर जल का निकास भी था, इससे अतिरिक्त जल निकल जाता था। बंधा पानी भी बह जाता था। पुस्करिणी में कई रक्त कमल खिले थे। उन्हीं में एक तरुणी तैर रही थी। उसके कटि के नीचे का वस्त्र जल के कारण तन से लिपट कर अद्वैत स्थापित कर रहा था। कच उसे देखने लगा। सचमुच ऐसी सुगढ़ सुन्दरी को उसने इसके पहले कभी नहीं देखा था और देखा भी था तो ऐसी स्थिति में नहीं। उसकी आँखें जैसे उस तैरते तन के असमतल स्थलों का स्पर्श करने लगी। उसका मन भींगने लगा। इसी बीच उस युवती ने तैरते-तैरते अचानक डुबकी ली और पीठ के बल हो गयी, जैसे कोई नागिन डँसकर उलट जाये। उसे लगा कि पटुका से बँधे उसके दोनों उरोज बाहर आ जाना चाहते हैं। वह देखता रहा, देखता रहा और देखता रह गया।

शुक्र पुत्रों की हँसी ने उसे झकझोरा,—"क्या देख रहा है ?"

"कुछ नहीं, कुछ नहीं।"—वह वासना की तन्द्रा में बड़बड़ाया और स्वयं को सँभालते हुए बोला—"देखता हूँ, तरुणियाँ भी तैर लेती हैं !"

"क्या तुमने किसी तरुणी को अभी तक तैरते हुए नहीं देखा है ?"––षण्ड उसकी अनभिज्ञता पर लोट-पोट हुआ जा रहा था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"लेकिन डूबते हुए अवश्य देखा होगा।"––त्वष्टा ने सोचा कि इस व्यंग्य को समझने की कच में सामर्थ्य कहाँ ? पर कच सब समझ रहा था, उसका मन कह रहा था कि इस समय तो मैं ही डूब रहा था। चन्द्रिका में सरोज की लालिमा मिलाकर मूर्ति-सी गढ़ी गयी उसकी देह मेरी आँखों में अब भी डूबती चली जा रही है।·· किन्तु ऐसा क्यों हो रहा है ? मैं तो ब्रह्मचारी हूँ। किसी भी नारी का आकर्षण मुझे विचलित करे, क्या मेरा पथ कंटकाकीर्ण नहीं हो जायेगा ?–– वह सोचता रहा।

"क्या सोच रहे हो ?"—षण्ड ने उसके कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा।

"सोचता हूँ, किन परिस्थितयों में शंकर ने मदन को भस्म कर दिया था।"

त्वष्टा हँसा––"शंकर के पास तो तीसरा नेत्र भी था, पर तेरे पास नहीं है।" वह बोला।

"यही तो मेरी सबसे बड़ी दुर्बलता है।"––कच ने कहा।·· पर उसका मन कह रहा था,—"नहीं, मेरे पास भी एक तीसरा नेत्र है, किन्तु वह शंकर के नेत्र जैसा नहीं है। शंकर का नेत्र बाहर था, पर मेरा नेत्र भीतर है। शंकर का नेत्र दूसरों को जला सकता था, पर मेरा नेत्र स्वयं मुझे ही जलाता है। मेरे भीतर का कच जलता रहता है और बाहर का कच ब्रह्मचर्य की अज्वलनशीलता में अपना अस्तित्व बनाये है। तभी तो मेरे भीतर का कच उस पुष्करिणी में कूद गया था। उस सुन्दरी से लिपटने जा रहा था कि बाहर के कच ने कहा—उसे तीसरे नेत्र से भस्म कर दो।····पर ऐसा नहीं हुआ। भीतर का कच सुलगता है, पर भस्म नहीं होता। बाहर का कच न सुलगता है और न भस्म होता है।···· मात्र एक औपचारिकता ओढ़े हुए जितना दृढ़ लगता है, वह उतना है नहीं।"

दोनों भाई जब कच को लेकर शुक्र की पर्णकुटी के निकट पहुँचे, तब आचार्य बाहर निकल चुके थे। कुटी में शतपर्वा थी, उसे भी पुत्रों की उपस्थिति का भान हुआ। वह भीतर से ही चिल्लायी,––"कहाँ मर गये थे तुम लोग ?···· ····तात तुम्हें याद करते-करते रुष्ट होकर उद्यान की ओर गये हैं ?

क्षणभर के लिए दोनों की आकृतियों पर भय की छाया उभरी, पर शीघ्र ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सँभले--"क्या करता माँ, एक जीव मिल गया था, उसी से उलझ गया।" दोनों कच की ओर देखकर मुस्कराये। कच निर्विकार भाव से चुप खड़ा रहा।

"क्या वह बहुत सुन्दर जीव था ?"--भीतर से आवाज आयी।

"था नहीं, है ?"--षण्ड की खिलखिलाहट ने निश्चित रूप में शतपर्वा का स्पर्श किया होगा।

"तब उसे अन्य पशुओं की भाँति देवयानी के जैविक उद्यान में बाँध दो। जैसे इतने पशु पल रहे हैं, यह भी पलेगा।"--इतना कहने के बाद उनकी आवाज पास आने लगी,--"मेरी बेटी को सुन्दर पशुओं में रुचि है ही।"

बाहर आकर वह कच को देखते ही आवाक् रह गयी।"कहाँ है तुम्हारा जीव ?"—उन्होंने पूछा। दोनों ने कच की ओर संकेत किया और हँस पड़े।

"तुम लोग बड़े उद्दण्ड हो, मनुष्य को जीव कहते हो ?"

"हर मनुष्य जीव ही तो होता है माँ।"—कच ने कहा और शतपर्वा के चरण छूए।

आशीर्वाद देते हुए शतपर्वा ने पुनः पूछा,—यहाँ कैसे आये ?"

"स्वयं आने की इच्छा थी ही। दैवयोग से भाइयों का साथ मिल गया।"—बड़े सामान्य भाव से दोनों को देखते हुए कच बोला।

"मेरे पूछने का तात्पर्य है कि तुम्हारे यहाँ आने का प्रयोजन क्या है ?"

"ज्ञान अर्जित करना।"

"किन्तु आचार्य ने नये शिक्षार्थी का प्रवेश वर्जित कर दिया है।"

"....विचित्र है, यह आश्रम। यहाँ जीव का प्रवेश हो सकता है, पर शिक्षार्थी का नहीं।"—कच के अधरों पर एक कुटिल मुस्कराहट दौड़ गयी।

"तुम बड़े वाचाल लगते हो, निकाल दो इसे आश्रम के बाहर।"—शतपर्वा की आँखें भभकने लगी थी। सभी चुप हो गये। पल भर बाद ही कच के मुख से निकला,—"हाय रे मेरा भाग्य, अभी आश्रम में पाला जा रहा था, अब निकाला जा रहा हूँ।"—कच ने अपनी दृष्टि चुपचाप धरती पर गड़ा ली।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"मैंने तुम्हें पालने का आदेश अनजान में दिया था।"—कच की सहजता से शतपर्वा शान्त होती दीख पड़ी।

"अनजान में दिया शाप का क्या प्रभाव नहीं होता? अनजान में लगा अस्त्र क्या आघात नहीं करता?"—फिर वह चुप हो गया। शतपर्वा उसे देखती रही। कच के आकर्षक व्यक्तित्व ने उसपर छाने की असफल चेष्टा की। "तुम्हें आश्रम के बाहर जाना ही पड़ेगा।"—वह बोल पड़ी।

"यदि आपका आदेश है माँ, तो अवश्य चला जाऊँगा, किन्तु···?"

"किन्तु क्या? बोलो, बोलो।····तुम कहते-कहते रुक क्यों गये?" शतपर्वा ने कहा।

"····किन्तु सोचता हूँ कि वे लोग कैसे हैं, जो नारी का विश्वास करते हैं?"—कच ने बड़ी दबी जबान से कहा। शतपर्वा को लगा जैसे उसके नारीत्व पर जोरदार चांटा जमाया गया हो। वह भीतर-ही-भीतर तिलमिला उठी।" ले जाओ इसे और देवयानी के जैविक उद्यान में वन्य पशुओं के बीच बाँध दो।" —शतपर्वा का नारीत्व झुझलाया।

कच देवयानी के जैविक उद्यान में पड़ा है। अद्भुत है, आकर्षक है यह उद्यान। इसमें एक छोटा सा सरोवर है जिसमें रंग-बिरंगी मछलियाँ हैं। इसमें छोटे-बड़े झुरमुट हैं, कन्दराएँ हैं, जिनमें वन्य पशु हैं। एक महीन जालियों से घिरा स्थान ऐसा भी है जिनमें भाँति-भाँति के सर्प हैं। वृक्षों पर चहचहाते पक्षियों का समूह है। छोटे-छोटे मृग शावक यों ही विचर रहे हैं।

कच चारो ओर देखता ही रह जाता है। सोचता है, विचित्र है यह लड़की भी, एक ओर मछलियाँ पालती है और दूसरी ओर विषधर नाग भी। जीवन से मृत्यु को बाँधने का यह उपक्रम किसी साधारण का तो नहीं हो सकता?···· ···· तब तक उसने देखा एक सिंह मृगों के झुंड में से चुपचाप निकल गया। उसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आश्चर्य हुआ, वह आम्र के एक विशाल वृक्ष के नीचे बैठकर सोचता ही रहा'—"पशु अपनी नैसर्गिक शत्रुता भूल सकता है, पर मनुष्य अपनी कृत्रिम शत्रुता भी नहीं भूल सकता। ऐसा क्यों है?....उसने देव और असुर प्रवृत्तियाँ तो स्वयं विकसित की है।.... ....जन्म लेते ही न तो कोई सुर होता है और न असुर। वह मात्र मानव शिशु ही रहता है। हम उसके चारो ओर प्राचीरें बनाते हैं, वृत्तियों की प्राचीरें, देवत्व की प्राचीरें, असुरत्व की प्राचीरें, संस्कारों की प्राचीरें, विश्वासों की प्राचीरें।... ये प्राचीरें मनुष्य को मनुष्य से बांट देती हैं कि दोनों एक दूसरे के पास कभी नहीं आते, कभी नहीं आते।

इसी बीच रसाल के पत्तों में छिपा कोकिल बोल उठता है। उसकी चिन्तन सरणि दूसरी ओर मुड़ जाती है,—"कितना उन्मुक्त होकर यह गा रहा है।.... शायद इसका कोई शत्रु नहीं है। इसे किसी से भय नहीं है। इसे संजीवनी विद्या नहीं चाहिए। इसने हमारी तरह दीवारें अपने चारो ओर नहीं बनायी हैं।.. ऐसी दीवारें जिन्हें हम नहीं देखते जो हमें देखती हैं। ऐसी दीवारें, जिनके भीतर से देवता दिखायी देते हैं, राक्षस दिखायी देते हैं, पर मनुष्य दिखायी नहीं देता। ऐसी दीवारें जिनके भीतर से जीव-जीव के बीच कटुता और टकराव दिखायी देता, पर इस उद्यान की मैत्री दिखायी नहीं देती।"—सोचते-सोचते उसकी आँखें झँपने लगीं वह आम्र के तने के सहारे लगभग ढुलक सा गया।

पता नहीं, कितनी देर बाद तीव्र घण्टों की ध्वनि उसके कानों से टकरायी। वह उठ बैठा, उसने पशुओं में एक विचित्र हलचल का अनुभव किया। मृग शावक फुदकते हुए उद्यान के मुख्य द्वार की ओर बढ़ने लगे। कच ने सोचा कोई बात अवश्य है। वह उठकर द्वार की ओर बढ़ा।

"क्या बात है?"—उसने द्वार पर खड़े एक ब्रह्मचारी से पूछा।

"कोई विशेष बात नहीं है।....अब तुम्हें भोजन मिलेगा।"—ब्रह्मचारी हँसने लगा। उसी से पता चला कि यह जीवों के भोजन देने का समय है और ऋषि कुमारी स्वयं उपस्थित होकर यह कार्य सम्पन्न करेंगी।

थोड़ी देर बाद ही कुछ लोग बड़े-बड़े बाँस के बने पात्रों में कुछ लेकर आये

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और सरोवर के निकट चले गये। उत्कंठावश कच भी उनके साथ हो लिया। उसे पता चला कि इसमें पाली गयी मछलियों का भोजन है। "यहाँ और जीव क्या खाते हैं"—कच ने पूछा।

"वे स्वयं अपना भोजन ढूँढ़ लेते हैं।....और फिर 'जीवो जीवस्य भोजनम्'।"—इतना कहकर वह मुस्कराया, "....और रह गयी तुम्हारी बात, तो तुम भी किसी को मारकर खा लो।"—फिर वह हँसने लगा।

"मैं मांस नहीं खाता। ब्राह्मण हूँ।"—कच बोला।

"यहाँ न कोई ब्राह्मण है और न कोई शूद्र।... केवल पशु हैं, पशु।"—इस बार उसकी हँसी कुछ तेज थी। खिलखिलाहट देर तक तैरती रही।

थोड़ी देर बाद ऋषि कुमारी आयी। "अरे यह तो वही है, जो पुष्करिणी में तैर रही थी।"—कच के मनने कहा और उसकी आँखें उससे चिपकने लगी।

उसने भी बड़े ध्यान से कच को देखा। पहली ही दृष्टि में कच के आकर्षक व्यक्तित्व के समक्ष वह स्तब्ध सी रह गयी। उसकी कल्पना ने कई मोहक पुरुषों के मुखौटों को कच की आकृति से मिलाया, फिर वह अचानक बोल पड़ी,—"अरे तुम यहाँ कैसे?"

"पाला गया हूँ।"—नितान्त संक्षिप्त और सहज उत्तर था कच का।

"पाले गये हो।"—देवयानी कुछ समझ नहीं पायी—"किसने पाला?"

"माता जी ने।"

"क्यों पाला?"

"इसका उत्तर तो वे ही दे सकती हैं।"—कच कम से कम बोलता हुआ अत्यन्त अनभिज्ञ सा लगा।

"किन्तु तुम हो कौन और यहाँ क्यों आये हो?"—देवयानी की उत्कंठा अपने शिखर पर चढ़ती हुई पूछ बैठी।

"ब्रह्मचारी हूँ, आचार्य से ज्ञानार्जन करने आया था। माता जी ने यहाँ भेज दिया" —वह चुप हो जाता, किन्तु उसे लगा इसके बाद वह पुनः पूछेगी, अतएव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वह बोलने लगा,--"माँ ने कहा इसे ले जाकर देवयानी के जैविक उद्यान में डाल दो।"

उसकी सहजता उसके व्यक्तित्व से कम आकर्षक नहीं थी। उसे अनुभव हुआ कि इन जीवों के बीच यह संगतिहीन व्यतिक्रम है। वह उसे देखती रही। इसे माताजी ने मुझे पालने के लिए भेजा है, आखिर क्या तात्पर्य है उनका? किन्तु इसे उनसे पूछा भी तो नहीं जा सकता। देवयानी की यह उलझन आँखों में प्यास बनकर उभरने लगी। वह देखती रह गयी, कच को नहीं, वरन् एक पुष्ट और मोहक युवक को।

सन्निपातिक ज्वर और नारी के नयनों पर चढ़ी कोई पुरुष छबि जल्दी नहीं उतरती। वे मस्तिष्क को प्रभावित करते ही हैं। देवयानी इस समय बाहर से चुप और भीतर से बड़बड़ा रही थी, जो कुछ उसके मुख से निकला वह बस इतना था,—"यहाँ मनुष्य नहीं, वरन पशु पाले जाते हैं।

"…… ….तो क्या मैं मनुष्य हूँ?"—एक चकित दृष्टि से उसने स्वयं को देखा।

देवयानी विहँस पड़ी। "बड़े विलक्षण मालूम होते हो।"—उसने उसका हाथ पकड़ा और चलने को हुई। "कहाँ ले चल रही है?"—कच ने पूछा।

"तुम्हें यह पूछने का कोई अधिकार नहीं है।….तुम मेरे पालित हो, मैं तुम्हें जहाँ भी ले चलूँ, चलना पड़ेगा।"

"पर माँ ने तो इसी उद्यान में रहने की आज्ञा दी है।"

"किन्तु मेरी आज्ञा तुम्हें यहाँ से चलने की है।"—वह उसका हाथ पकड़कर खींचते हुए बोली।

"तुम्हारी आज्ञा यहाँ से चलने की है। माँ की आज्ञा यहाँ रहने की है। हे भगवान्, इस उलझन से एक पशु कैसे उबर सकता है?"—कच की नाटकीयता देवयानी को बड़ी मोहक लगी। उसने मुस्कराते हुए पूछा,—"कहीं पशु भी भगवान में विश्वास करता है?"

"पशु ही तो भगवान में विश्वास करता है।….वह इस विश्वास से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ज्यों-ज्यों दूर होता जाता है, त्यों-त्यों मनुष्य होता चलता है।"—मानव जाति पर किये गये इस व्यंग्य से देवयानी को कच के मानसिक स्तर का भान हो गया। उसके मन में कच की सहजता की मूर्ति अपना आवरण उतारने सी लगी। अवश्य ही यह कोई संस्कारी युवक है।—उसने सोचा, यहाँ आने का इसका कोई निश्चित प्रयोजन होगा।… फिर भी वह उसे खींचकर उद्यान के बाहर ले चली।

"आप अभी आयीं और मुझे लेकर लौट पड़ी हैं, उन मछलियों को भोजन कौन देगा?"—कच ने पूछा।

"चुप रहो।"—देवयानी ने डाँटा,—"पशु केवल अपने भोजन की चिन्ता करता है, दूसरों की नहीं।"—इस बार देवयानी के साथ कच भी हँस पड़ा।

तब तक मर्क की आवाज सुनायी पड़ी,—"तात, तुम्हें स्मरण कर रहे हैं?"—इतना कहकर मर्क दूर से ही लौट गया। देवयानी कच के साथ आचार्य-कुटी की ओर चल पड़ी।

"आचार्य ने तुम्हें बुलाया है, तुम्हें ही जाना चाहिए।"—कच ने कहा।

"तुम्हें इससे मतलब?"

"….इसलिए कि हो सकता है, आचार्य जी मेरे सामने आपसे कोई बात न करना चाहें।" पशु के सामने हर बात की जा सकती है, केवल मनुष्य के सामने ही छिपाना होता है।"—देवयानी पुनः हँसने लगी।

दूर से ही आचार्य की दृष्टि कच को परखने लगी थी। अब देवयानी ने उसका हाथ छोड़ दिया था। आचार्य के गम्भीर व्यक्तित्व का बोझ अब कच को भी अनुभव हुआ। वह ज्यों-ज्यों निकट पहुँचता गया, उसकी गति मन्द होती गयी। शायद मन और मस्तिष्क का सन्तुलन बनाने की चेष्टा में ऐसा हुआ हो।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वह पहुँचते ही आचार्य के चरणों में गिर पड़ा। 'जीवेम् शरदः शतम्'—आचार्य का आशीर्वाद था। "तू इसे कहाँ से ले आयी ?"—आचार्य ने पूछा।

उसने सारी कथा सुना दी और बोली,—"माँ ने इसे मेरे पास पालने के लिए भेजा है।"—आचार्य हँस पड़े। "क्यों जी, तुम देवयानी के पोष्य हो ?"—उनकी उन्मुक्त हँसी अन्य ब्रह्मचारियों के अधरों का भी स्पर्श करती निकल गयी। फिर भी आचार्य की दृष्टि उसे परखती रही। यह देवयानी के पालने योग्य ही है। शतपर्वा ने बहुत सोच समझकर निर्णय लिया है।

"जानते हो, जिस पुरुष को नारी पालती है, उसका पुंसत्व कुंठित हो जाता है।"—आचार्य ने उसके भीतर कुछ टटोलते हुए कहा।

"हाँ जानता हूँ।...... किन्तु जिस पशु को नारी पालती है, उसका पशुत्व भी संस्कारी हो जाता है।"—कच ने बड़े सामान्य ढंग से कहा, किन्तु आचार्य पर इस उत्तर का प्रभाव अप्रत्याशित पड़ा,—"तुम्हें संस्कारी होने की आवश्यकता तो नहीं लगती, तुम स्वयं संस्कारी हो।...... भोलेपन की आड़ में तुम स्वयं को औरों से छिपा सकते हो, पर मेरी दृष्टि से छिपा नहीं रह सकते।"—एक वार फिर उन्होंने कच को बड़े ध्यान से देखा।

उसने अनुभव किया कि आचार्य की चुभती आँखें मेरे भीतर घुसती चली जा रही हैं और सब कुछ उधेड़कर रख देना चाहती हैं। "क्या मैं विश्वास करूँ कि तुम अपना सही परिचय मुझे बताओगे ?"—आचार्य ने कहा।

अब कच की मानसिकता कुछ भी छिपाने की स्थिति में नहीं थी। वह बोल पड़ा,—"मैं वृहस्पति का पुत्र कच हूँ।"

"तुम वृहस्पति के पुत्र ?"—आचार्य लगभग अवाक् की सी स्थिति में थे। "...फिर यहाँ कैसे ?"—उन्होंने पूछा।

"ज्ञानार्जन के लिए आया था।"

"क्यों, तुम्हारे तात का सारा ज्ञान चुक गया ?"—आचार्य ने व्यंग्य किया।

"ज्ञान कभी चुक सकता है आचार्य ?"—कच पहली बार स्वाभाविक ढंग से मुस्कराया,—"जिस दिन ज्ञान चुक जायेगा, उस दिन मनुष्य की अस्मिता चुक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जायेगी।"—कच के व्यक्तित्व की आचार्य से यह पहली टकराहट थी, यद्यपि कोई चिनगारी नहीं छूटी, फिर भी आचार्य को कुछ सोचने के लिए विवश होना पड़ा,—"ओ अब समझा,...तुम मेरी संजीवनी विद्या लेने आए हो?"—,उन्होंने कहा,—"मैं उसे किसी को नहीं देता।...वह मेरे ही साथ रहेगी और मेरे ही साथ मरेगी।"

कच अट्टहास करने लगा। आचार्य उसे अवाक् हो देखते रहे। "क्यों हँस रहे हो?"—उन्होंने पूछ ही लिया।

"हँसता हूँ कि दूसरों को जिलाने वाली विद्या अन्ततः मरेगी ही।"

आचार्य मौन उसे देखते रहे। कच के वाक्-कौशल का प्रभाव औरों पर भी पड़ने लगा था।

"आचार्य मैं वह विद्या सीखने नहीं आया जो मरे को जिलाती है और एक दिन स्वयं मर जाने की आकांक्षा रखती है, वरन् वह विद्या सीखने आया हूँ जो कभी नहीं मरती और दूसरों को भी मरने नहीं देती।"

"ऐसी कौन सी विद्या है जो दूसरों को मरने नहीं देती?"

"हर सात्विक विद्या ऐसी ही होती है आचार्य!"—कच ने कहा—"मरना शरीर का धर्म है। उसका भौतिक गुण है। आपकी संजीवनी विद्या केवल शरीर को जिला सकती है। वह मात्र तन तक पहुँच सकती है। वह आत्मा का स्पर्श नहीं कर सकती।...मैं तो ऐसी विद्या की खोज में निकला हूँ जो आत्मा का संस्कार कर सके।"

कच यद्यपि चुप हो गया था, किन्तु लग रहा था कि वह अब भी बोल रहा है। सब मूक उसे देखते रहे। शतपर्वा भी पर्णकुटी से बाहर निकल आयी थी। उसका मन कह रहा था,—भले ही, अनजान में ही सही, बेटी को इसे पालने के लिए देकर मैंने कोई भूल नहीं की।

आचार्य को लगा, जैसे उनके आचर्यत्व पर कच ने धूल उड़ा दी। उनका अहं धूल झाड़ते हुए झुँझलाया,—"तुम बड़े वाचाल लगते हो।"

"क्षमा करें महाराज।"—वह बड़ी क्षिप्रता से आचार्य के चरणों पर गिर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पड़ा। आचार्य ने उसे उठाया नहीं। वह स्वयं उठा और उनकी ओर देखने लगा। उसने अनुभव किया कि दो आँखों में जितनी ज्योति नहीं रहती, उससे कहीं अधिक आचार्य की एक ही आँख में है।"

आचार्य की असामान्य गम्भीरता सभी के लिए भारी पड़ रही थी। त्वष्टा और षण्ड सोच रहे थे कि कच की दुर्विनीतता पर तात रुष्ट होने लगे हैं। शतपर्वा भी सोचने लगी थी कि कहीं आचार्य इसे आश्रम से निकल जाने के लिए न कहें। देवयानी की दृष्टि कभी आचार्य और कभी कच की ओर आ जा रही थी।

परिस्थिति संभालने की इच्छा से ही शतपर्वा ने आचार्य से पूछा,—"क्या सोचने लगे आप ?"

"सोचता हूँ कि यह पिता की तरह प्रगल्भ तथा माता की तरह सुन्दर है।"--आचार्य ने कहा। तनाव एकदम शिथिल हो गया।

"क्या इसकी माँ बहुत सुन्दर है ?"—शतपर्वा ने पूछा।

"तुमने उसे देखा नहीं है सुषमा। वह अद्‌भुत है। यदि ऐसा न होता तो तारा के लिए सोम पागल न हो जाता"—आचार्य बोले।

नारी, नारी के सौन्दर्य से ईर्ष्या कर सकती है, पर उसकी महत्ता कभी स्वीकार नहीं कर सकती। "किसी भी नारी पर पुरुष का पागल हो जाना उसका जीव धर्म है।"—शतपर्वा बोली और एक नटखट मुस्कराहट उसके अधरों के बीच दौड़ने लगी, मानो वह कह रही हो कि तुम मेरे ऊपर कभी पागल नहीं हुए थे क्या ?

आचार्य ने उसकी मनःस्थिति समझ ली और वे भी मुस्कराने लगे। वे कुछ कह पाने की स्थिति में नहीं थे। आखिर कहते भी तो बच्चों के बीच क्या कहते ? उन्होंने स्वयं को सामान्य किया और बोले,—"देवयानी तुम इसे ले जाओ, क्योंकि जानवर को अधिक समय तक खुला नहीं छोड़ना चाहिए।"... और वे हँसने लगे। वातावरण हँसने लगा।

कच ने भी स्वयं को हल्का अनुभव किया। भले ही उसने वय की एक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निश्चित सीमा पार करली हो, फिर भी अपनी ही माँ के सम्बन्ध में सुनते हुए उसे बड़ा विचित्र लग रहा था।

सबके हटते ही आचार्य ने शतपर्वा से कहा,—"मेरे कहने का यह तात्पर्य नहीं था कि तारा तुमसे अधिक सुन्दर है।"

"यदि यही तात्पर्य हो भी, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। ··अब तो अवस्था ढल चुकी है।"—शतपर्वा हँसने लगी।

"ढलने से क्या हुआ? ढलती हुई भी हर सौन्दर्यगर्विता अपने इतिहास में ही जीती है।"—शुक्र ने हँसते हुए शतपर्वा के कन्धे पर बाँह डाल दी। वह मुस्कराती हुई पीछे हटी,—"मैं तो अपने वर्तमान में ही जीती हूँ, भले ही आपके काम की न होऊँ।"—उसने बड़े ढंग से कहा।

"अरे वाह, काम की क्यो नहीं हो?"—उन्होंने हँसते हुए चारो ओर देखा तथा निर्जन का आभास पाते ही शतपर्वा को और निकट खींच लिया।"····और जब सोम पान करता हूँ, तुम तरुणी हो जाती हो।"

"सोमपान करते हो तुम,····और तरुणी होती हूँ मैं?"

"यही तो चमत्कार है प्रिये! ··पान करने के बाद आँखें ही कुछ ऐसी हो जाती हैं कि नारी अपने वय से दस वर्ष छोटी दिखायी देती है।"—बड़ी वासना थी आचार्य के मुस्कराहट में। संयोग कुछ ऐसा कि कुटिया के निकट बँधी गायों में से एक रभाने लगी, मानो वह भी आचार्य के प्रमदा-प्रमोद पर हँस पड़ी हो।

यह स्थिति अधिक देर तक नहीं रही। कोई देखेगा, तो क्या कहेगा? शतपर्वा स्वयं दूर हट गयी। बातो का सिलसिला दूसरी ओर मुड़ा,—"इसके यहाँ आने में कोई रहस्य तो नहीं है?" शतपर्वा ने पूछा।

"यही तो मैं भी सोच रहा हूँ।····वृहस्पति ने अपने पुत्र को मेरे आश्रम में क्यों भेजा।····उसकी अहमन्यता ने कभी भी मेरी महत्ता स्वीकार नहीं की, आखिर आज उसे क्या होगया?"

"संजीवनी विद्या एक रहस्य हो सकता है, पर उसके सम्बन्ध में भी उसने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बड़ी उपेक्षा दिखायी।" शतपर्वा सोचती रही,—"ऐसा तो नहीं कि वह देववर्ग का कोई गुप्तचर हो?"

"असम्भव तो नहीं है,··· पर गुप्तचर की प्रकृति और सिद्धान्त दोनों के विपरीत उसने अपना परिचय बड़ी सच्चाई से दिया।"

"कैसे समझते हैं कि उसके परिचय में सचाई है?"

"उसकी आकृति बहुत कुछ उसकी माँ से मिलती है।····उसके परिचय में झूठ की सम्भावना मुझे नहीं लगती।"—शुक्र ने कहा और वे सोचते रहे,—"कच का मानसिक स्तर बहुत ऊँचा है। वह अपने पिता से कहीं अधिक तेजस्वी होगा। इसी सन्दर्भ में अपने पुत्रों की भी आकृतियाँ उनके मानसपटल पर उभरने लगीं और एक आवाज गूँजी,—"आज मैं भले ही आर्यावर्त में संजीवनी विद्या के बल पर वृहस्पति से अधिक पूज्य हो जाऊँ, पर अगली पीढ़ी में यह श्रद्धा निश्चित रूप से कच के पास चली जायेगी।"

शतपर्वा को शुक्र का मौन बोझिल पड़ रहा था। वह स्वयं बोल पड़ी,—"····योग्यता और आकर्षण का कैसा-मणि कांचन योग है उसमें?"

"तभी तो तुमने उसे पाल लिया।····और वह भी देवयानी के उद्यान में।"—दोनों हँसने लगे।

निरभ्र आकाश। चमकता हुआ चन्द्र। दुग्ध स्नात प्रकृति और सोम की गंध में डूबा हुआ आश्रम।

सोमयज्ञ समाप्त हो गया है। रात्रि दूसरे प्रहर में खिसकने लगी है। कच को छोड़कर शायद कोई ऐसा नहीं है जिसने सोमपान न किया हो। आचार्य ने तो 'सुराम' ले ली है। सुरा और सोम के मिश्रण से बने सुराम की मादकता को आचार्य का ही व्यक्तित्व सँभाल भी सकता है। अब भी वे सामान्य से लगते हैं,

१२०९६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उद्यान के प्रशस्त प्रांगण में एक ऊँचे शिला खण्ड पर दूसरी शिलाओं का सहारा लेते हुए वे बैठे हैं। मंद गंधवाह उनकी मदिर मन:स्थिति को सहला रहा है।

आचार्य का पग दबाता हुआ कच सोचता है कि जयन्ती क्यों नहीं आ रही है। इससे अच्छा अवसर शायद ही उसे मिले।""तब तक एक ब्रह्मचारी दौड़ा हुआ हाँफता आया,—"महाराज, माताजी संज्ञाशून्य हो रही हैं।"

"लगता है, उसने अधिक पी ली हैं। ·· इसके लिए 'सोत्रामणि'[1] कर्म की व्यवस्था करो। ·· रेचन और बमन से सब ठीक हो जायेगा।"—आचार्य ने इतने सामान्य ढंग से कहा जैसे यह कोई नई बात नहीं है। आकाश के चन्द्र की ओर वे चुपचाप देखते रहे। समय सरकता रहा। कच पैर दबाता रहा।

दक्षिण की ओर से जयन्ती आती दिखायी दी। कच की ढूँढ़ती आँखों को विराम मिला। सचमुच आज जयन्ती बड़ी सुन्दर लग रही थी। पारिजात के पुष्पों से गुँथी वेणी, कसी हुई कंचुकी और मालती लता सी गदराई देह पर चमकता श्वेत कटिवस्त्र—सब कुछ प्रकृतिवेश के अनुरूप ही था। ऐसा लगा, वन्य देवी स्वयं श्रृंगार कर उपस्थित हो गयी है। कच से आँखें चार होते ही वे पलभर थमी और संकेत पाते ही वह आचार्य के समक्ष उपस्थित हो गयी।

"महाराज की जय हो।"—उसने चरण स्पर्श करते हुए कहा। अब आचार्य की दृष्टि उस पर गयी और फिर गड़ ही गयी,—"कौन हो तुम ?"—कुछ देर बाद उन्होंने पूछा। वह केवल मुस्कराती रही। आचार्य की आँखें खुली की खुली रह गयीं। कहीं उनकी मदिर कल्पना तो रूपायित नहीं हो गयी है ? उन्होंने सोचा और बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया,—"अरे यह तो वास्तविकता है।"—वह बोले। वासना से घुली एक हँसी बिखर पड़ी।

"तुम कौन हो ?" एक बार पुनः आचार्य के मुख से निकला। वह क्या उत्तर देती। हाथ छुड़ाकर नृत्य करने लगी। वासन्ती बयार में चम्पक की डाल

१—अधिक सुरापान करने पर सोत्रामणि यज्ञ का विधान था। इसके सम्बन्ध में विस्तृत विवरण नहीं मिलता, किन्तु इतना पता चलता है कि इसमें रेचन और वमन कराया जाता था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सी झूमती देह अपनी विभिन्न मुद्राओं में आचार्य के नेत्रों में गड़ती गयी। वह नाचती गयी, नाचती गयी। विलम्बित के बाद द्रुत और द्रुत के बाद वह ज्योंही सम पर आयी आचार्य वाह-वाह कर उठे। नशा और गाढ़ा हो गया। रात्रि की सम्पूर्ण मादकता और प्रकृति का सारा सौन्दर्य इस समय उन्हें उस तरुणी में मूर्त होता दिखायी दिया। "तुम्हारा नृत्य तो अद्भुत हे रूपसि!"—आचार्य बोल पड़े और उसका हाथ पकड़कर खींचने लगे। वह हिचकिचायी। कच ने संकेत किया कि आगे बढ़ो, इतने उत्तम प्रदर्शन के बाद आचार्य की ध्वस्त होती मनीषा को एक धक्का और दो।

जहाँ तक आचार्य ने खींचा, वहाँ तक वह चली गयी। "तुम बड़ा सुन्दर नृत्य करती हो।....आखिर तुम कौन हो?"

जयन्ती क्या उत्तर दे? वह सोचने लगी। कच ने संकेत किया कि जो मन में आये बोलती जाओ। चुप रहने से सन्देह पैदा होता। उसने पूर्व योजना के अनुसार एक कथा गढ़ ली,—"देवासुर संग्राम में मेरा संसार विनष्ट हो गया। मेरे पिता और भ्राता असुरराज वृषपर्वा के यहाँ बन्दी हो गये।... माँ पहले ही मर चुकी थी।....अब मैं दर-दर की ठोकरें खाती हूँ। नाचती हूँ, गाती हूँ।" यद्यपि सिसकियाँ नहीं उभरी, फिर भी उसका स्वर भींगा था।

"अब तुम ठोकरे नहीं खाओगी। मैं तुम्हारी माँ को तो नहीं, पर पिता और भाई को लौटा सकता हूँ।" आचार्य ने कहा और उसके स्निग्ध बालों को सहलाते रहे। ज्यों-ज्यों समीरण उन्हें छेड़ता, सुराम उनपर छाती जाती। "तुमने तो कहा है, मैं गाती भी हूँ।"—आचार्य बोले।

जयन्ती ने सिर हिलाकर स्वीकारा।

"अच्छा, तो कोई गान गाओ।"—आचार्य उसका सिर सहलाते रहे। उसने सामगान आरम्भ किया।

सुराम की मादकता पर स्वर की मादकता चढ़ने लगी। आचार्य की दृष्टि जब इस बार कच को ओर मुड़ी, वह बोल पड़े,—"अच्छा, अब तुम जा सकते हो।" अचानक आचार्य ने कच को जाने को क्यों कहा? जयन्ती घबरायी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वह चाहती थी कि कच किसी बहाने से बैठा ही रहे, पर वह उठ खड़ा हुआ। जब चलने लगा तो उसने संकेत किया कि मैं आस-पास ही रहूँगा, तू जरा भी मत घबराना।

जयन्ती गाती रही। प्रकृति थिरकती रही। आचार्य झूमते रहे। समय सरकता रहा।

"महाराज असुरराज पधार रहे हैं।"—कच ने आकर सूचित किया।

"असुरराज और इस समय ?"—उन्हें आश्चर्य हुआ। सामगान वन्द हुआ, पर जयन्ती ज्यों की त्यों बैठी रही। आचार्य उसे सहलाते रहे। "आने दो वृषपर्वा को।" उन्होंने उसी मुद्रा में कहा।

"आचार्य को वृषपर्वा का नमन स्वीकार हो।"—दूर से ही असुरराज बोला।

आचार्य की मदिर आंखों में पहले से ही एक काला धब्बा उभरता चला आ रहा था। उसके पीछे कुछ लोग और हैं, वह बड़े ध्यान से देखते रहे। अब उन्हें स्पष्ट हुआ कि एक युवती भी उनके साथ है, जो धीरे-धीरे आगे आती हुई शर्मिष्ठा में बदलती जा रही है।

पहले तो वृषपर्वा जयन्ती को ही देखता रह गया, फिर आचार्य की तन्द्रिल अवस्था से अनुभव किया कि उनका विवेक सोम में डूब चुका है। वह कुछ ऊँची आवाज से बोला,—"महाराज सोम ले आया हूँ, और साथ में शर्मिष्ठा भी।"

"तुमने बहुत देर कर दी असुरराज।"—आचार्य की भर्रायी आवाज वृषपर्वा के कानों से चिपक सी गयी। वे समझ नहीं पाये कि आचार्य किस सन्दर्भ में देर हो जाने की बात कह रहे हैं ? क्या उनकी अप्रसन्नता अभी भी बनी हुई है ? क्या हमारे और उनके बीच की खाइं बढ़ते-बढ़ते बहुत बड़ी हो गयी कि हम एक दूसरे के निकट आ नहीं सकते ? सचमुच हमने देर कर दी।

वृषपर्वा का शंकाकुल मन दूसरी ओर आचार्य के निकट बैठी जयन्ती के उन्मुक्त सौन्दर्य की ओर भी देख रहा था। वह व्यग्र हो उठा। उसे लगा संजीवनी अब उसके हाथों से निकलती चली जा रही है। उसकी व्याकुलता बढ़ती

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गयी। वे एकदम आचार्य के चरणों पर गिर पड़े। जयन्ती सरककर दूर हट गयी,—"मुझे क्षमा करें गुरुदेव।"—वृषपर्वा बोला।

"कैसी क्षमा? किसके लिए क्षमा?"—वे हँस पड़े। उनकी मदिराभ हँसी लड़खड़ाती रही।

"महाराज मैं अपनी भूल का प्रायश्चित करने के लिए तैयार हूँ।" वृषपर्वा गिड़गिड़ाया।

"प्रायश्चित तो मनुष्य जब चाहे कर सकता है, पर क्षमा जब चाहो तब नहीं की जा सकती।"—वृषपर्वा कुछ समझ न सका। वह आचार्य की रहस्यपूर्ण मुस्कराहट में ही उलझा रहा। सजी सँवरी शर्मिष्ठा अवाक् सी उनके पीछे खड़ी रही। एक बार भी दृष्टि उठाकर आचार्य ने उसकी ओर नहीं देखा, पर जयन्ती ने कई बार उसे देखा और उसने जयन्ती को भी।

चन्द्र मध्य आकाश में हँस रहा था। पारिजात की भीनी गंध वायुमण्डल में तैर रही थी।

आचार्य फिर बोलने लगे,—"....जिसने अपराध किया था, आज तुम, वह 'तुम' नहीं रहे। जिसके साथ अपराध किया गया था, आज 'मैं', वह मैं नहीं रहा।.. प्रकृति का नियम है कि हम हर क्षण बदलते जा रहे हैं। इस समय जो कुछ है, वह अगले क्षण नहीं रहेगा।....फिर कौन क्षमा करने वाला और कौन क्षमा माँगने वाला?"

वृषपर्वा पसीने-पसीने हो चला। उसका सारा शब्द भण्डार जैसे चुक-सा गया था। उसके मुख से बस इतना ही निकला,—शर्मिष्ठा भी क्षमा माँग रही है।"—फिर असुरराज ने बाँह पकड़कर उसे आचार्य की ओर ढकेल दिया। वह पंख कटी सारिका सी अरबराकर उनके चरणों पर गिर पड़ी। आचार्य विजयोन्माद में मुस्कराते रहे।

किसी ने उसे उठाया नहीं। शर्मिष्ठा स्वयं सँभली और उठ बैठी। आचार्य ने उसकी ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया। "जल विहार के लिए मुझसे याचना करनेवाले इस आचार्य का अहं आज मुझे देखने योग्य भी नहीं समझता।"—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वह चाहती थी कि कच किसी बहाने से बैठा ही रहे, पर वह उठ खड़ा हुआ। जब चलने लगा तो उसने संकेत किया कि मैं आस-पास ही रहूँगा, तू जरा भी मत घबराना।

जयन्ती गाती रही। प्रकृति थिरकती रही। आचार्य झूमते रहे। समय सरकता रहा।

"महाराज असुरराज पधार रहे हैं।"—कच ने आकर सूचित किया।

"असुरराज और इस समय ?"—उन्हें आश्चर्य हुआ। सामगान बन्द हुआ, पर जयन्ती ज्यों की त्यों बैठी रही। आचार्य उसे सहलाते रहे। "आने दो वृषपर्वा को।" उन्होंने उसी मुद्रा में कहा।

"आचार्य को वृषपर्वा का नमन स्वीकार हो।"—दूर से ही असुरराज बोला।

आचार्य की मदिर आंखों में पहले से ही एक काला धब्बा उभरता चला आ रहा था। उसके पीछे कुछ लोग और हैं, वह बड़े ध्यान से देखते रहे। अब उन्हें स्पष्ट हुआ कि एक युवती भी उनके साथ है, जो धीरे-धीरे आगे आती हुई शर्मिष्ठा में बदलती जा रही है।

पहले तो वृषपर्वा जयन्ती को ही देखता रह गया, फिर आचार्य की तन्द्रिल अवस्था से अनुभव किया कि उनका विवेक सोम में डूब चुका है। वह कुछ ऊंची आवाज से बोला,—"महाराज सोम ले आया हूँ, और साथ में शर्मिष्ठा भी।"

"तुमने बहुत देर कर दी असुरराज।"—आचार्य की भर्रायी आवाज वृषपर्वा के कानों से चिपक सी गयी। वे समझ नहीं पाये कि आचार्य किस सन्दर्भ में देर हो जाने की बात कह रहे हैं ? क्या उनकी अप्रसन्नता अभी भी बनी हुई है ? क्या हमारे और उनके बीच की खाईं बढ़ते-बढ़ते बहुत बड़ी हो गयी कि हम एक दूसरे के निकट आ नहीं सकते ? सचमुच हमने देर कर दी।

वृषपर्वा का शंकाकुल मन दूसरी ओर आचार्य के निकट बैठी जयन्ती के उन्मुक्त सौन्दर्य की ओर भी देख रहा था। वह व्यग्र हो उठा। उसे लगा संजीवनी अब उसके हाथों से निकलती चली जा रही है। उसकी व्याकुलता बढ़ती

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गयी। वे एकदम आचार्य के चरणों पर गिर पड़े। जयन्ती सरककर दूर हट गयी,—"मुझे क्षमा करें गुरुदेव।"—वृषपर्वा बोला।

"कैसी क्षमा? किसके लिए क्षमा?"—वे हँस पड़े। उनकी मदिराभ हँसी लड़खड़ाती रही।

"महाराज मैं अपनी भूल का प्रायश्चित करने के लिए तैयार हूँ।" वृषपर्वा गिड़गिड़ाया।

"प्रायश्चित तो मनुष्य जब चाहे कर सकता है, पर क्षमा जब चाहो तब नहीं की जा सकती।"—वृषपर्वा कुछ समझ न सका। वह आचार्य की रहस्यपूर्ण मुस्कराहट में ही उलझा रहा। सजी सँवरी शर्मिष्ठा अवाक् सी उनके पीछे खड़ी रही। एक बार भी दृष्टि उठाकर आचार्य ने उसकी ओर नहीं देखा, पर जयन्ती ने कई बार उसे देखा और उसने जयन्ती को भी।

चन्द्र मध्य आकाश में हँस रहा था। पारिजात की भीनी गंध वायुमण्डल में तैर रही थी।

आचार्य फिर बोलने लगे,—"....जिसने अपराध किया था, आज तुम, वह 'तुम' नहीं रहे। जिसके साथ अपराध किया गया था, आज 'मैं', वह मैं नहीं रहा।.. प्रकृति का नियम है कि हम हर क्षण बदलते जा रहे हैं। इस समय जो कुछ है, वह अगले क्षण नहीं रहेगा।....फिर कौन क्षमा करने वाला और कौन क्षमा माँगने वाला?"

वृषपर्वा पसीने-पसीने हो चला। उसका सारा शब्द भण्डार जैसे चुक-सा गया था। उसके मुख से बस इतना ही निकला,—शर्मिष्ठा भी क्षमा माँग रही है।"—फिर असुरराज ने बाँह पकड़कर उसे आचार्य की ओर ढकेल दिया। वह पंख कटी सारिका सी अरबराकर उनके चरणों पर गिर पड़ी। आचार्य विजयोन्माद में मुस्कराते रहे।

किसी ने उसे उठाया नहीं। शर्मिष्ठा स्वयं सँभली और उठ बैठी। आचार्य ने उसकी ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया। "जल विहार के लिए मुझसे याचना करनेवाले इस आचार्य का अहं आज मुझे देखने योग्य भी नहीं समझता।"—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शर्मिष्ठा के भीतर एक ठुकरायी गयी सौन्दर्यगर्विता आज फुफकारने लगी थी। उसके ज्वलित नेत्र अनेक बार जयन्ती से टकराये। हर बार जयन्ती मुस्करा देती थी। वह भीतर-ही-भीतर और भभक उठती थी। वृषपर्वा चुपचाप खड़ा स्थिति की विषमता का अनुभव कर रहा था। आचार्य ने आज उसे बैठने के लिए भी नहीं कहा।

"इसे पहचानते हो ?"—जयन्ती की ओर संकेत करते हुए आचार्य ने पूछा।

वृषपर्वा तो उसे देख ही रहा था। इस बार पहचानने की नीयत से बड़े ध्यान से देखा और फिर 'नहीं' कहते हुए अपनी असमर्थता व्यक्त की।

"यह एक ऐसी निराश्रिता है, जिसके पिता और भाई तुम्हारे यहाँ बन्दी हैं।"—आचार्य ने कहा और जयन्ती की मुखमुद्रा वदलने लगी। उसने समझ लिया कि अब मुझसे मेरे पिता का विस्तृत परिचय पूछा जायेगा। वह मानसिक रूप से तैयार होने लगी और ज्यों ही असुरराज ने विस्तृत जानकारी चाही, वह फनफनाती हुई नागिन की तरह खड़ी हो गयी और फुफकारती हुई बोली,—"नहीं, नहीं, मेरा कोई आपके यहाँ बन्दी नहीं है। यदि होगा भी तो हम आपकी कृपा नहीं चाहते। हम देवों की संतान हैं, असुरों के अनुग्रह पर जीने से मरना अच्छा समझते हैं।"—दूर पर खड़े कच की आँखे मुस्कराने लगीं। वह जयन्ती की बुद्धि की प्रशंसा करे या अभिनय की ? वह मन-ही-मन सोचने लगा।

"इसमें अनुग्रह का प्रश्न नहीं है देवि, यह तो हमारे गुरुदेव की आज्ञा है।" —वृषपर्वा ने अपनी व्यग्रता को मुस्कराहट से ढकने की असफल चेष्टा की।

"किन्तु गुरुदेव की आज्ञा हम देवताओं के अहं को रौंद नहीं सकती ?"

"नहीं, नहीं देवि, कभी ऐसा नहीं होगा। तुम चुपचाप बैठी रहो।"— इतना कहते हुए आचार्य ने उसका हाथ पकड़ा और अपने बगल में पुनः बैठा लिया।

वृषपर्वा को लगा कि वह जिस धरती पर खड़ा है, वह खिसक रही है। वह एकदम घबरा उठा। करबद्ध हो आचार्य के चरणों के निकट ही बैठ गया,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वरन् गिरते-गिरते बचा,—"" देवों की अहमन्यता का आदर है देवि, मैं इसी समय अपने सभी वन्दी देवताओं की मुक्ति का आदेश देता हूँ।"—वह जयन्ती की ओर देखकर मुस्कराया,—"अब तो तुम्हारे तात और भ्राता भी मुक्त हो जायेंगे।"

"इसके लिए मैं गुरुदेव की कृतज्ञ हुई।"—जयन्ती बोली।

"मैं भी उनके समक्ष नतमस्तक हूँ।"—वृषपर्वा बोला। आचार्य हँस पड़े। उनके लड़खड़ाते स्वर की कँपकँपी और अधिक बढ़ गयी,—"" यह मेरे समक्ष नहीं, वरन् मेरी संजीवनी विद्या के समक्ष नतमस्तक हो रहा है।....ह...ह....ह।" कितनी भयप्रद थी वह हँसी वृषपर्वा के लिए।

जव असुरराज को अतिथि कक्ष में पहुँचाया गया, रात आधी वीत चुकी थी। सोम से भरे वड़े-वड़े पात्र आचार्य के समक्ष ही छोड़कर अनुचर वट की छाया में लेट गये थे। वृषपर्वा के व्यग्र मन के लिए साँय-साँय करती निस्तब्धता नागिन-सी फुफकारती खड़ी हो गयी। वह सो नहीं पाया। नींद निरायास उसकी आँखों के सामने मुद्राएँ वदलती रहीं। उसे लगा जैसे उसका आसन हिल रहा हो। वह सोमपान करने लगा और तब तक करता रहा, जब तक ढुलक नहीं गया। थोड़ी देर वाद उसकी नाक बोलने लगी। कच उसी कक्ष के बाहर टहलता रहा। उसका मस्तिष्क भी अपनी परिधि में टहल रहा था,—"वृषपर्वा और इन्द्र, दोनों की कन्याएँ इस एकाक्षी के चरणों में अर्पित है। एक प्रत्यक्ष रूप से और दूसरी प्रच्छन्न रूप से।...आखिर किसलिए? इसलिए कि वह बहुत वड़ा ज्ञानी है? इसलिए कि इसके समान आर्यावर्त में इस समय कोई दूसरा नीतिज्ञ नहीं? इसलिए कि इसकी चारित्रिक गरिमा शिखर पर है।....ज्यों ही चारित्रिक गरिमा का प्रश्न आया उसका मन हँसने लगा और वोला—"शिखर की वात तो छोड़ो, वरन् सुराम के पंक में डूबा हुआ इसका चरित्र अन्धकार के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गर्त में कीड़े-सा रेंग रहा है।"—एक आचार्य इतना गिर सकता है, उसका हृदय काँप उठा।

उसके सोचने का क्रम चलता रहा,—"यह सब, मात्र इसलिए कि इसके पास संजीवनी विद्या है, जिससे युद्ध जीता जा सकता है, अपना सिंहासन बचाया जा सकता है।....सिंहासन ! सब कुछ छोड़ने के बाद भी मनुष्य इसे पकड़े रहना चाहता है। प्रलय के जलप्लावन में भी भगवान जहाँ अक्षय वट के पत्र पर विश्राम करेंगे, उस समय भी मनुष्य की अस्मिता शायद इसी का सहारा लेगी।"— इसी बीच एक नेवला उसके पैर पर से उछलता हुआ निकल गया। उसकी चिंतन शृंखला टूटी, किन्तु जब उसे जोड़ने की चेष्टा की वह दूसरी ओर मुड़ चुकी थी। —"मैंने जयन्ती से जितनी आशा नहीं की थी वह उससे बहुत अधिक निकली। आचार्य भी उसे अपने निकट खींचकर उसका स्पर्श करते रहे। कैसा लग रहा होगा उसे?"—उसके मन पर कभी शर्मिष्ठा और कभी जयन्ती की विभिन्न मुद्राएँ उभरती रहीं।

लगभग एक घड़ी बीत गयी होगी।"मुझको अब निर्झर के निकट निर्दिष्ट शिला खण्ड पर पहुँचना चाहिए। हो सकता है, जयन्ती वहाँ आ चुकी हो।"— कच सोच ही रहा था कि भीतर सोता-सोता वृषपर्वा अचानक बड़बड़ा उठा,— "बचाओ, बचाओ, मैं डूब रहा हूँ।"—वह उठ बैठा फिर भी वह चिल्लाता जा रहा था। शर्मिष्ठा उसे पकड़कर सामान्य स्थिति पर लाने की चेष्टा कर रही थी। फिर भी वह चिल्लाता गया। कुछ क्षणों के बाद ही उसका चिल्लाना बन्द हुआ, पर अब भी वह काँप रहा था और अपने हाथों को ऐसा इधर-उधर कर रहा था मानो कुछ टटोल रहा हो। कच भीतर नहीं गया। बाहर से छिपकर देखता रहा।

"क्या बात है तात ?"—शर्मिष्ठा ने अपने पिता के प्रकृतिस्थ होते ही पूछा।

"कुछ नहीं, कुछ नहीं।"—वह जागकर भी बड़बड़ाते रहे,—"मैं डूब रहा था।....चारो ओर पानी, पानी !...मैं बेसहारा !"

"यह आपकी मात्र व्यग्रता है और कुछ नहीं।"—शर्मिष्ठा बोली,—"जल का सपना तो अच्छा होता है पिताजी !"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"भले ही अच्छा होता हो, पर मैं तो डूब रहा था।"

"स्वप्न में न डूब रहे थे।"—उसने मुस्कराने की चेष्टा की। पर्णों से छनकर आते चन्द्रिका के मद्धिम प्रकाश में कच को दिखायी पड़ा कि शर्मिष्ठा पानी पिलाने के वाद अपने पिता को वाहर ले आ रही है। कच द्वार से हटकर झाड़ी के पीछे हो लिया।

वाहर आकर उसने पिता का मुँह धुलाया। वे अव भी वड़बड़ा रहे थे,—"स्वप्न में ही नहीं, वस्तुतः मैं डूब रहा हूँ और तब तक डूबता रहूँगा जब तक वह हमारे बीच से हटा नहीं दी जाती।"

"कौन हटा नहीं दी जाती ?"

"वह लड़की।"—उसका स्पष्ट संकेत जयन्ती के लिए था,—"अब जबतक वह रहेगी, असुरों का कल्याण नहीं।"—इतना कहकर वे पुनः भीतर चले। कच के लिए अब इतनी दूरी से कुछ भी सुन पाना सम्भव नहीं था। वह झाड़ी से निकल कर पुनः द्वार की ओर आया।

"शर्मिष्ठा तुम चाहो तो हमें उबार सकती हो।"—कच ने वृषपर्वा की आवाज सुनी।

"मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ तात !····आज्ञा दीजिये।"

"तब तुम गुरुदेव के पुत्रों को मिलाकर उसे हमारे मार्ग से अलग कर दो।"–फिर थोड़े समय के लिए गम्भीर मौन। लगता है, शर्मिष्ठा सोचने लगी है,—"जो सौन्दर्य आचार्य को अपने वश में कर सकता है, क्या पुत्रों पर उसका जादू नहीं चल सकता ?"—यह शर्मिष्ठा की ही आवाज थी।

"आचार्य स्वयं उस जादू को पुत्रों पर चलाने के लिए मुक्त नहीं करेंगे।"—वृषपर्वा बोला,—"जब आचार्य ही उसकी मुट्ठी में हैं, तब वह पुत्रों पर घास नहीं डालेगी।···· ····इसलिए तुम चाहो तो पुत्रों को मिला सकती हो।"

"····और उन्हीं से उसका वध भी कराया जाय।"—पिता के स्वर में स्वर मिलाती हुई शर्मिष्ठा ने कहा,—"किन्तु वध के बाद आचार्य अपनी विद्या से उसे जिला लेंगे ?"—अचानक शर्मिष्ठा का स्वर गम्भीर हो गया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"—किन्तु इस रहस्य को कोई नहीं जानता कि संजीवनी विद्या का उसी पर प्रभाव होता है, जो मारा जाता है।....यदि वह लड़की मारी न जाये और बन्दी बनाकर कहीं सुख पूर्वक रख ली जाये तो आचार्य की विद्या कुछ कर नहीं पायेगी। वह छटपटाते रह जायेंगे।"

"जब बन्दी बनाना है, तो किसी भी तरह रखा जा सकता है!....क्या कष्ट देने से कुछ विशेष हो जायेगा?"—शर्मिष्ठा की असुर वृत्ति ने जोर मारा।

"....कष्ट देना भी तो आंशिकरूप से मारना ही है।"—वृषपर्वा ने कहा और फिर वे खाँसने लगे।

रहस्य, नहीं-नहीं। कच को जैसे कोई अमूल्य निधि मिली। बड़े यत्न से वह उसे सँजोकर वहाँ से चल पड़ा और निर्झर की ओर आया। दूर ही देखा कि जयन्ती शिला खण्ड पर बैठी उसकी प्रतीक्षा कर रही है।

"मुझे नहीं मालूम था कि वचन के इतने कच्चे तुम हो!"—कच के पहुँचते ही जयन्ती झुंझलायी।

"वचन का यदि कच्चा होता, तो मैं इस समय यहाँ न होता।"—बड़ी कुटिल मुस्कराहट थी कच के अधरों के बीच।

"तब कहाँ होते, देवयानी के पशु उद्यान में?"

"नहीं।"—वह मुस्कराता रहा और ज्यों ही उसे जयन्ती के नेत्रों से जिज्ञासा छलकती दिखायी दी, वह वह बोल पड़ा,—"शर्मिष्ठा के निकट!"—इतना सुनना था कि जयन्ती एकदम उठकर खड़ी हो गयी,—"क्या कहते हो तुम?"—उसे लगा कि कच उससे छीना जा रहा है। अब तक तो देवयानी ही उसपर डाका डालने को तैयार थी। अब यह शर्मिष्ठा निगोड़ी कहाँ से आ धमकी?—वह बोल पड़ी,—"प्रथम दर्शन में ही उसने तुम्हें बाँध लिया?"

"क्या तुम मुझे शुक्राचार्य समझती हो।"—कच हँसने लगा,—"न मैं शुक्राचार्य हूँ और न वह जयन्ती,....जो प्रथम दर्शन में ही उसे खींचकर अपने पास बैठाऊँ और बाल सहलाने लगूँ।"—कच हँसता रहा। जयन्ती नारी सुलभ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लज्जा से सिकुड़ गयी। वह कहना चाहती थी कि तुमने ही तो यह सब करने को कहा था, अब व्यंग्य करते हो, पर चुप ही रही।

"सचमुच, तुमने बड़ा अच्छा अभिनय किया, जयन्ती! मैंने कभी तुमसे ऐसी आशा नहीं की थी। इसके लिए तुम मेरी बधाई स्वीकार करो।" वे देवता भी तुम्हें आशीर्वाद देंगे जो वृषपर्वा के बन्दीगृह से मुक्त हो जायेंगे।... अद्भुत है, जिस कार्य को इन्द्र की विशाल वाहिनी न कर सकी उसे एक नारी की नाटकीयता कर गयी।....किन्तु सोचता हूँ"....कच कहते-कहते कुछ रुकने सा लगा।

"हाँ, हाँ, बोलो। क्या सोचते हो?"

"सोचता हूँ कि नारी की नाटकीयता आशातीत होते ही खतरनाक मोड़ लेने लगती है।"—उसका स्वर मुस्कराहट में भीगा था।

"....पर मोड़ लेने के बाद भी कुछ नहीं होगा।"—जयन्ती मुस्करायी।

"क्यों?"

"क्योंकि ऐसे हर मोड़ पर मुझे तुम्हीं खड़े दिखायी दोगे।"—कहने को तो उसने कह दिया, किन्तु शीघ्र ही उसकी मुखरता पर लज्जा उभर आयी। वह चुप हो गयी।

कच तत्क्षण बोल पड़ा,—"....लेकिन मैं तो ब्रह्मचारी हूँ।"—उसकी प्रगल्भ हँसी के साथ जयन्ती भी हँसने लगी।

रात्रि अपने तीसरे प्रहर में पग धर चुकी थी। हवा तेज हो गयी थी। पूर्व के आकाश से घन उमड़े चले आ रहे थे। कच ने नभ की ओर देखा और कहा,—लगता है, वर्षा आ रही है।" हमें यहाँ से जल्दी ही चलना चाहिए।"

किन्तु जब जयन्ती ने अगली योजना के सम्बन्ध में पूछा तब उसने बड़े भाव से उद्घाटित किया,—" " कल तुम्हें पंख कतर कर सोने के पिंजड़े में डाल दिया जाएगा।"

"एक ओर तुम चलने की जल्दी में हो, दूसरी ओर पहेली बुझाने लगे।"—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जयन्ती बोलीं। तब कच ने विस्तार से वृषपर्वा की मंशा बतायी। जयन्ती चुप हो उसे देखती रह गयी।

"इसमें घबराने की जरा भी आवश्यकता नहीं है।····तुम्हें करना बस इतना है कि तुम दो एक दिनों के लिए कहीं चली जाओ।"

"आखिर कहाँ जाऊँ?"––जयन्ती की व्यग्रता मेघों के बीच गड़गड़ाने लगी थी।

"····इसका तो निश्चय तुम्हें ही करना है, पर वह स्थान ऐसा हो, जहाँ इस आश्रम के पशु-पक्षी भी पहुँच न पायें।"

जयन्ती सोचने लगी, जाऊँ तो जाऊँ कहाँ? यह आरण्यक निर्जनता क्या मुझे छिपा सकेगी? क्या अनचीन्ही और अनजानी कंटीली राहें मेरा साथ दे सकेंगी? अनिश्चय का यह आकाश क्या मेरी मुट्ठी में समा सकेगा? वह चिन्तन के झील में डूबने लगी कि कच ने अपनी बाँहों का सहारा दिया,—"··· आम्लक पर्वत की ओर चुपचाप निकल जाओ। सवेरा होते-होते महाराज के भेजे कुछ सैनिक छद्म वेश में तुम्हें मिलेंगे।"

"किस महाराज के?"––प्रश्न से ही कच ने समझ लिया कि जयन्ती की मानसिकता डगमगा रही है। उसने उसे समझाया, कि चलते समय ही तुम्हारे पिताजी से गुप्त योजना बना ली गयी थी। आम्लक पर्वत के उत्तरी छोर पर देव सैनिक हर प्रातःकाल किसी न किसी रूप में अवश्य उपस्थित होंगे। वे हमारे समाचार भी लेकर महाराज को पहुँचावेंगे और आवश्यकता पर हमारे काम भी आयेंगे।

जयन्ती मौन थी। पिताजी ने कच से गुप्त मंत्रणा की और मुझे कुछ बताया तक नहीं। पुत्री होकर भी मुझे दूर रखा और कच उनके निकट पहुँच गया। वह सोचती रही, बादल गड़गड़ाता रहा। अन्ततः कच ने पूछ ही दिया,–– "क्या सोच रही हो? ·· जल्दी करो। ब्राह्म मुहूर्त निकट है।"

"अकेली ही जाऊँ? ·· मार्ग में किसी हिंसक जन्तु से सामना हो गया तो?" मन में उभरते प्रश्नों को दबाकर उसने एक दूसरी ही शंका उछाल दी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"....तो वह हिंसक जीव भी तुम्हारे केश सहलाने लगेगा।"—बड़ी दुष्ट हँसी थी कच की,—"कदाचित् ही कोई जीव तुम्हारी ऐसी नारी के लिए आचार्य से अधिक हिंसक हो।"

एक दायित्व बोझ से बोझिल हँसी हँसते हुए जयन्ती चल पड़ी। यदि कोई दूसरी स्थिति होती तो शायद वह न जाती, पर उसे दिया गया वचन याद आ रहा था। उसे हर स्थिति में कच की आज्ञा माननी ही पड़ेगी। देवसृष्टि के अस्तित्व का प्रश्न है।

चन्द्र बादलों में छिप गया था। अँधेरा गाढ़ा हो चला था। जयन्ती को लगा जैसे बहुत सारे हाथ उस अन्धकार में उसके मस्तक की ओर बढ़े चले आ रहे हैं। स्वतिमुद्रा में यह करतल निश्चित रूप से उन देवताओं के हैं जो कल मुक्त होने वाले हैं। सफलता के उत्साह से उसके पग और तेज हो गये। उसने उलटकर एक बार पीछे की ओर देखा। कच आश्रम की ओर चला जा रहा था।

तड़पता आकाश पिघलने की स्थिति में था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

□□□

आकाश फटा पड़ रहा था। हजारों दैत्य जैसे वारी-वारी से गरज रहे थे। घटाटोप छाया था। एक प्रहर दिन चढ़ने के बाद भी लगता था जैसे अभी सवेरा होने वाला है। वर्षा रुकने का नाम नहीं ले रही थी। कच अब भी अपनी कुटिया में खर्राटे भर रहा था। यद्यपि उसकी पर्णकुटी टपक रही थी। गीली धरती फफुंद की तरह फूल आयी थी, उस पर बनी लकीर इस बात का प्रमाण था कि काष्ट मंचक को खींच कर किनारे उस स्थान पर किया गया है, जो मृगछाला से आच्छादित है। शायद इसीलिए एक बूंद भी पानी उस पर गिर नहीं रहा है, कच की निश्चित नींद कदाचित इसी कारण है।

जब वर्षा थमी, देवयानी ने उसकी कुटिया में प्रवेश किया। कच की नासिका अब भी बोल रही थी। वह उसे कुछ क्षणों तक अपलक निहारती रही। उसे लगा कि इस समय वह उसे उन्मुक्त देख सकती है, जैसे अन्धकार में छाया साथ छोड़ देती है वैसे ही एकाकीपन में लज्जा। यद्यपि वह खड़ी थी, फिर भी कच के अर्धवसन पौरुष से उसकी वासना लिपटती रही। वाहर आकाश टपकता रहा।

उसकी इच्छा हुई कि वह कच को झकझोर कर जगा दे, पर क्या वह सोते हुए पुरुष को छू सकती है?··· किन्तु मेरे पिताजी ने जागते हुए ही उस लड़की का हाथ पकड़कर अपने पास खींच लिया था और उसे छूते रहे, वह भी सबके सामने।···· फिर मेरे लिए तो एकान्त है, कोई देख भी नहीं रहा है। मैं कुछ भी करूँ किसी को क्या मालूम होगा?'··· 'क्या कच मेरे लिए परपुरुष है? जब मेरा कोई अपना पुरुष नहीं, तो यह परपुरुष कैसे हुआ? हो सकता है कि उसकी कोई नारी अपनी हो।—इतना सोचते ही वह जैसे उद्विग्न हो उठी।···· नहीं, नहीं। ऐसा नहीं होगा। मैं किसी भी दूसरी स्त्री को इसका नहीं होने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दूँगी। इसे अपनी भुजाओं में बाँध लूँगी। इसके चारों ओर दीवार की तरह खड़ी हो जाऊँगी और किसी को पास आने नहीं दूँगी।

कहते हैं, यौन लिप्सा अन्धी होती है। उसकी आँखें भी-चौधियाँ गयीं। वह एक दम आगे बढ़ी और गीली धरती पर फिसलकर 'धम' से गिर गयी। अब उसे अनुभव हुआ कि इस फिसलने के पहले ही वह फिसल चुकी थी।

कच हड़बड़ाकर उठ बैठा। "अरे यह क्या ?"—उसने मंचक से उतरकर उसे उठाया।

"तुमने मुझे अपनी बाहों का सहारा दिया, आभारी हूँ।"—देवयानी की मुस्कराहट में राग था।

"मैं हर फिसलने वाले को सहारा देता हूँ, क्योंकि मैं ब्रह्मचारी हूँ।"—कच बोला और हँसने लगा। खड़ी होती हुई देवयानी की आँखें मिट्टी से सने लथपथ अपने वस्त्र की ओर गयी जब कि उसका मन कच की हँसी में उलझा था।

"क्या देखती हो ? हर फिसलने वाले को गन्दगी तो लगती ही है।"—कच हँसी में ही कह गया था।

देवयानी के जीवन में शब्दों का इतना बड़ा अकाल कभी नहीं पड़ा था। वह कुछ बोल नहीं पा रही थी, केवल मुस्कराती जा रही थी। मन में उछलते भाव आँखों से छलके आ रहे थे। ऐसा नहीं कि कच ने उन्हें समझा न हो, फिर भी उसकी छलना ने पूछ ही दिया,—"बोलिए न, मैं आपकी मुस्कराहट समझ नहीं पा रहा हूँ।....मुझे मुस्कराहट की भाषा पढ़ने नहीं आती।"

"....और व्यंग्य की भाषा लिखने आती है ?"—देवयानी बोली और दोनों हँस पड़े।

कच के मन में तो कुतूहल था ही कि यह इस समय भींगती हुई क्यों चली आयी है। उसने उसे अपने ही मंचक पर बैठाया और बड़ी शालीनता से पूछा,—"क्या मैं इस समय आपके पधारने का कारण जान सकता हूँ ?"

देवयानी चुपचाप कच की आँखों में झाँकती रही। थोड़ी देर बाद उसने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धीरे से कहा,—"तुम नारी का हृदय पहचान नहीं सकते, क्योंकि····" अपनी बात पूरी करे इसके पहले ही कच बोल उठा—"····क्योंकि मैं जानवर हूँ।"—फिर दोनों खिलखिला उठे।

कच सब कुछ समझता था। उसने देवयानी की दुर्बलता भी समझ ली थी, पर उसे कभी भी अपने ऊपर हाथ रखने देना नहीं चाहता था, क्योंकि वह जानता था कि कर्त्तव्य की जिस धरती पर वह खड़ा है, वह फिसलन से भरी है, किन्तु उसका यह विश्वास कि यह मिट्टी साधना की अग्नि में तपकर पारदर्शी स्फटिक भी बन सकती है, उसे उस फिसलन से हटने भी नहीं देता था। इसी विश्वास में वह दोहरी जिन्दगी जी रहा था। वह बाहर से दूसरा कच था और भीतर से दूसरा। भीतर का कच छान्दस था, श्रोत्रिय था, वेदपाठी ब्रह्मचारी था।····और बाहर का कच वासना की हरिणियों के लिए एक सम्भाव्य अहेरी, जिसकी एक ओर अनेक मुद्राओं में देवयानी थी, दूसरी ओर विभिन्न रंगों में रंगीन जयन्ती और कभी-कभी लुका-छिपी करती हुई शर्मिष्ठा भी उसकी आँखों के परदे पर से निकल जाती थी। वह भीतर और बाहर के बीच के सामंजस्य की डोर पर एक सफल नट सा संतुलन बनाये चल रहा था, शायद इसीलिए उसने स्वयं पर बहुत सी वस्तुएँ आरोपित कर ली थीं जो उसकी अपनी नहीं थीं। इन्हीं में कच के नयनों का वह भाव भी था, जो देवयानी के लिए ललक सा दिखायी देता था, जिससे खिंचती हुई वह इस वर्षा में भींगती चली आयी थी।

"लगता है, सोम की तन्द्रा अब भी तुम पर बनी है, इसी से तू भींगती चली आयी और फिसल भी गयी"—कच ने कहा और उसके कन्धे पर दाहिना हाथ रख दिया।

देवयानी एकदम सिहर उठी, उसे कच का ऐसा मधुर स्पर्श पहली बार मिला था। उसकी धमनियों में कुछ विद्युत सा दौड़ गया। कपोल आरक्त हो उठे। उसने धीरे से कहा,—"मैं सोमपान नहीं करती।"

"····किन्तु तुम्हारी माँ तो करती हैं"—देवयानी के लिए कच की आत्मीयता 'आप' से 'तुम' पर उतर आयी थी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"उन्हें भी पिताजी ने ही सिखा दिया है।"—वह फिर कच की आँखों में प्रवेश करने लगी। उसे रोकने मात्र के लिए कच ने बात दूसरी ओर बढ़ायी,—"आखिर बुद्धि को नष्ट कर देनेवाली इस मदिरा का सेवन तुम्हारे पिता ने कब से आरम्भ किया ?"

"जब से वे असुरों के सम्पर्क में आये और विशेष रूप से-जबसे असुरों ने उन्हें अपना गुरु बनाया।"

"लगता है गुरु दक्षिणा में ही उन्हें सोम और सुराम मिल गये।"—वह मुस्कराया,—"... और तुम्हारे भाई भी तो पीते हैं।.... आखिर क्यों नहीं पीयें ? 'आत्मावजायते पुत्रः' जो कहा गया है।"....तब तुम क्यों नहीं पीती ?"

"आत्मावजायते पुत्री' जो नहीं कहा गया है।"—वह बिहँस पड़ी। इस प्रहार ने देवयानी के मानसिक स्तर का आभास कच को अच्छी तरह करा दिया। उसने अनुभव किया कि आसुरी प्रवृत्ति के निकट रहने पर भी इसमें देवत्व सुरक्षित है। यदि इसके और निकट पहुँचा जाये, तो उद्देश्य पूरा हो सकता है।

इसी समय एक ब्रह्मचारी ने आकर सूचित किया कि आचार्य कच को स्मरण कर रहे हैं।....किन्तु कच की कुटिया में देवयानी को अकेली देखकर वह ब्रह्मचारी चकित रह गया। उसके लिए तो चकित होने की बात भी थी। वस्त्र से भींगे, कटि के नीचे का भाग कीचड़ से सना हुआ है, जैसे किसी ने उसे गिली मिट्टी पर पटक दिया हो। फिर भी कोई रोष नहीं। आघात की उत्तेजना नहीं, वरन् आकृति पर रागात्मकता का स्वप्निल आभास। वह कुछ और सोचे कि देवयानी पुनः पूछ बैठी,—"क्यों बुलाया है, आचार्य ने ?"

"यह तो नहीं मालूम।"—वह बोला, "क्या कहूँ आचार्य से जाकर ?"

"कहोगे क्या ? मैं अभी चलता हूँ।"—कच उस ब्रह्मचारी के साथ हो लिया, पर देवयानी वहीं बैठी रह गयी। वह क्यों बैठी है ? कदाचित् इसका उत्तर उसके पास नहीं था।

वर्षा थम चुकी थी। सुखद समय की तरह मेघ उड़ते चले जा रहे थे। चारों ओर जल ही जल था। तेज हवा के झोंकों में वृक्ष हिलोरें ले रहे थे, मानो सोम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में डूबी प्रकृति रह-रहकर झूम उठती हो।····कच ब्रह्मचारी के साथ चला जा रहा था, पर उसकी दृष्टि में अब भी देवयानी तैर रही थी।

"तुम अब तक सोते रह गये।"—कच को देखते ही आचार्य तड़पे।

आचार्य की ध्वनि में क्रोध था। अपराधी की भाँति सिर नीचा किये वह चुपचाप खड़ा हो गया।

"····ब्रह्मचारी को ब्रह्म मुहूर्त में उठना चाहिए और जानते हो उठते ही क्या करना चाहिए?"

अब भी कच निर्विकल्प भाव से खड़ा रहा।

"उसे आचार्य का चरण स्पर्श करना चाहिए।"—आचार्य ने कहा। अब कच उनके चरणों पर गिर पड़ा, किन्तु उसका यह गिरना कुछ सयास सा ही लगा। उसका मन तो कह रहा था कि न यह आश्रम है, न यहाँ ब्रह्ममुहूर्त होता है, न स्वाध्याय की गंध ही मिलती है।····फिर कौन आचार्य? किसका चरण स्पर्श करूँ?

फिर भी वह आचार्य के चरणों पर तब तक मस्तक धरे पड़ा रहा जब तक आचार्य ने स्वयं उसे उठाया नहीं।

"वह बालिका कहाँ है?--" आचार्य ने कच को उठाते ही पूछा।

"कौन बालिका?"—कच जानकर भी अनजान बन गया।

"अरे वही देव पुत्री, जिसके पिता और भाई वृषपर्वा के यहाँ बन्दी हैं जो कल रात मेरे निकट सामगान गा रही थी।" --आचार्य बोले।

"उसके सम्बन्ध में तो नहीं जानता।"—कच सिर खुजलाते हुए कहता गया,—"आखिर इस वर्षा में वह जायेगी कहाँ? आश्रम में ही कहीं होगी।

"आश्रम में ही कहीं होगी?····हूँ!" आचार्य का क्रोध गुर्राया। कच ने समझ लिया कि इन्होंने पूरा आश्रम खोजवा लिया है। वह नहीं मिली है। अब उनकी अतृप्त वासना हिंस्र होने की स्थिति में है। वह किसी पर भी आघात कर सकती है। इसका उपयोग करना चाहिए। वह अवसर निकालने की सोच ही रहा था कि आचार्य बोल पड़े,—"कल मध्य रात्रि तक वह मेरे पास ही थी।···· इसके बाद तुमने उसे कहीं नहीं देखा?"—कच ने सोचा कि इससे अच्छा भला

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब कौन अवसर होगा,—"....हाँ इसके बाद मैंने असुरराज की कुटिया की ओर उसे जाते देखा था। हो सकता है, वर्षा के कारण उसने उन्हीं के पास आश्रय पाया हो।"—कच की नाटकीयता ने यह पहली चाल चली।

आचार्य के मस्तक पर चिन्तन की रेखाएँ उभर आयीं। वह कुछ जोड़ने घटाने से लगे, फिर अत्यन्त गम्भीरता से बोले,—"वृषपर्वा को बुलाओ।"—कच चलने को हुआ। आचार्य ने उसे रोकते हुए कहा,—"तुम नहीं, किसी दूसरे को भेजो।"

जो ब्रह्मचारी कच को बुला लाया था, वही अतिथि कुटी की ओर लपका।

क्षणभर में असुरराज उपस्थित हुए। "कहाँ है, वह लड़की ?"—अमर्ष भरी आचार्य की आवाज से वह घबरा सा गया। उसने सोचा आचार्य शर्मिष्ठा के सम्बन्ध में पूछ रहे हैं। वृषपर्वा बोल पड़ा,—"महाराज, वह तो कुटी में ही रह गयी है।"

"कुटी में ही रह गयी है।....हूँ.... ।... मैं सब कुछ समझता हूँ।"—आचार्य की आँखें भभक रही थीं।—"अभी उसे बुलाओ।....यह आश्रम है, तुम्हारा राजभवन नहीं कि जिसे चाहो अपने कक्ष में रख लो।"—भय से सबसे पहले बुद्धि मारी जाती है, वृषपर्वा कुछ समझ नहीं पा रहा था। वह मात्र काँप रहा था, क्योंकि वह शुक्र के क्रोध से परिचित था। वह स्वयं अपनी कुटिया की ओर लपक पड़ा।

कच की समझ में कुछ नहीं आया। वह स्वप्न में भी नहीं सोच सकता था कि जयन्ती वृषपर्वा के यहाँ होगी। उसने अपनी आँखों से उसे आम्लक पर्वत की ओर जाते देखा था, किन्तु इस विचित्र सृष्टि में कुछ भी असम्भव नहीं है। उसकी जिज्ञासा एकटक आश्रम के उत्तरी छोर पर अतिथि कक्ष की ओर लग गयी थी।

प्रतीक्षा का एक-एक क्षण युग लगता है। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया आचार्य की मुद्राएँ बदलती रहीं। कच का हृदय धक-धक करता रहा, किन्तु शीघ्र ही उसने वृषपर्वा को आते देखा और देखा कि उसके पीछे शर्मिष्ठा आ रही है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वह आशंकाओं के शिखर से छूटकर धरती पर आ गया। उसका मन हँसने लगा। सचमुच भाग्य हमारे प्रतिकूल नहीं है, उसने अनुभव किया।

"कहाँ है वह लड़की ?"—उसके आते ही आचार्य तड़पे। अब वृषपर्वा ने शर्मिष्ठा की ओर संकेत किया।

"अरे मूर्ख, मैं इसे नहीं, उस देवकन्या के सम्बन्ध में पूछ रहा हूँ, जो कल रात मेरे पास बैठी गा रही थी, जिसके पिता और भाई तुम्हारे यहाँ बन्दी हैं।" —आचार्य के नेत्रों से ज्वाला निकल रही थी।

"उसे तो मैं नहीं जानता।"

"कैसे नहीं जानते ?····कल रात वह तुम्हारे ही कक्ष की ओर जाती देखी गयी थी।"—आचार्य का तमस् गुर्राया,—"मैं सब कुछ समझता हूँ वृषपर्वा। तुमने शर्मिष्ठा को मेरे निकट लाने के लिए उसे मेरे पास से ही हटा दिया है।"

वृषपर्वा के नीचे की धरती कांपने लगी। वह एकदम घबरा उठा,—"मैं कुछ नहीं जानता आचार्य, मैं निरपराध हूँ। मुझे क्षमा करें।"

"मैं सब कुछ समझता हूँ वृष, कि तुम कितने निरपराध हो।····शायद तुम इसे भूलते हो कि मेरी विद्या के बल पर ही तुम्हारा वर्चस्व अब तक स्थिर रहा है।"—आचार्य फुफकारते रहे। वृषपर्वा आंधी के थपेड़े से पुरानी डाल की भाँति टूट२ कर आचार्य के चरणों पर गिर पड़ा,—"भूला नहीं हूँ आचार्य, बिल्कुल भूला नहीं हूँ।"

"तब उस देवकन्या को कहीं से भी खोजकर उपस्थित करो।"

"कहां से ले आऊँ आचार्य ? इस विशाल धरती पर कहां से खोजकर निकालूँ प्रभु ?" वृषपर्वा गिड़गिड़ाया। शर्मिष्ठा स्थिर मूर्तिवत खड़ी रही। उसका सौन्दर्य अपमानित होकर भीतर ही भीतर झुलसता रहा।

"चाहे जैसे भी हो, जहां से भी हो।"—बाल हठ को परास्त करनेवाले इस वृद्ध हठ की आखिर दवा क्या है ? वृषपर्वा आचार्य के चरणों के निकट बैठकर गिड़गिड़ाते हुए भी सोचता रहा। उसके मस्तक पर रेखाएं उभरतीं और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मिटती रहीं। कच भी बाहर गम्भीर दिखायी दे रहा था, पर भीतर से प्रसन्न था। उसे लग रहा था कि मेरी औषध काम कर रही है।

इस सारे दृश्य में यदि कोई अलग-थलग खड़ी थी, तो वह शर्मिष्ठा थी, जिसे आचार्य तथा आचार्य के पार्श्व और पृष्ठ भाग में खड़े ब्रह्मचारी बीच-बीच में निहारकर उसके उपेक्षित सौन्दर्य को महत्व प्रदान कर दे रहे थे, पर शर्मिष्ठा के लिए यह सब व्यर्थ था। उसके भीतर एक सुलगती नारी और थी जो उससे बराबर पूछ रही थी,—"क्या हमारा जीवन इसीलिए है कि पुरुषों का स्वार्थ हमारी अस्मिता की बलि चढ़ाता रहे?… हम ऐसे कुरूप एकाक्षी बूढ़े की वासना का खिलौना बनते रहें?…आखिर किस लिए? मात्र इसलिए कि हम इसकी विद्या से जीवित रह जायेंगे? … धिक है ऐसा जीवन और धिक है ऐसी विद्या।"

नारी समर्पण में अमृत और विद्रोह में महा विष हो जाती है। इस समय शर्मिष्ठा के भीतर एक ऐसी ही नारी फन काढ़ कर खड़ी हो गयी थी। निश्चित ही वह फुफकार उठती, यदि इसी बीच वृषपर्वा बोल न पड़ता,—आचार्य जी, आप चाहे विश्वास करें या न करें, वह एक छलना थी जो अपना काम निकाल कर चली गयी।

"तुम्हारा तात्पर्य?"—गढ़े में जड़ी आचार्य की बड़ी-बड़ी आँखें जैसे बाहर निकल आना चाहती थीं।

"बात स्पष्ट है, महाराज। वह अपने पिता और भाई को छुड़ाना चाहती थी, आप पर माया फैलाकर उसने काम करा लिया और फिर चुपचाप खिसक गयी।"—वृषपर्वा बोला।

आचार्य की आकृति का रंग बदलने लगा। वृषपर्वा को लगा कि उसका तर्क प्रभाव कर रहा है।" तो क्या तुमने सभी देव बन्दियों को मुक्त कर दिया?" —आचार्य ने पूछा।

"क्या करता? आपके सामने बचन जो दे चुका था।"—वह कहता गया—"मैं कल रात ही चर से आदेश भेजवा चुका हूँ।"—डूबते वृषपर्वा को जैसे धरती मिल गयी। वह उठकर खड़ा हो गया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भभकता हुआ आचार्य अब धुआँ उगलने की स्थिति में था, उन्होंने पश्चाताप के स्वर में कहा,—"....देवकन्या द्वारा नहीं, वरन् मैं सुराम द्वारा ही छला गया हूँ।... जिसका परिणाम तुम्हें भी भोगना पड़ा।" उनकी मुद्रा बदली,—"... तुम्हें क्यों न भोगना पड़ता, आखिर सुराम भी तो तुम्हीं लोगों ने मेरे मुँह लगायी है।"—वे जरा सा मुस्कराये, फिर जैसे उनकी मुट्ठियाँ बँध सी गयीं,—"... पर घबराओ नहीं, मैं इसका प्रतिशोध लेकर रहूँगा।... हिंसा से प्रतिहिंसा कहीं अधिक हिंस्र और बर्बर होती है"—आचार्य फिर मौन हो गये। संक्षिप्त अन्तराल के बाद उन्होंने कच से कहा,—"असुरराज को अतिथि कक्ष तक पहुँचा दो और इनके सत्कार की उचित व्यवस्था करो।"

गरजने वाला आचार्य पानी हो गया था, उधर पानी आकाश में गरजने लगा था। वर्षा आसन्न थी।

उधर टूटा हुआ वृषपर्वा चला जा रहा था। उसके बहुत पीछे शर्मिष्ठा थी और उसके पीछे कच।

असुरराज के कक्ष में प्रविष्ट होते ही शर्मिष्ठा की चाल और मन्द पड़ गयी। अब वह लगभग कच के बगल में थी। कच उसे कनखियों से देखता हुआ भी देख नहीं रहा था। किन्तु वह उसे देख रही थी और प्रतीक्षा में थी कि बात करने का अवसर मिले।

अन्त में उसने पूछ ही लिया—"आप का परिचय जान सकती हूँ?"

"ब्रह्मचारी और संन्यासी का परिचय क्या?"—बड़े सामान्य भाव से हंसते हुए वह बोला,—"सभी पर्वत दूर से एक से लगते हैं और आश्रम में सभी ब्रह्मचारी पास से।"—वह हँसता रहा।

शर्मिष्ठा कुछ समझ नहीं पायी, उसने पुनः कहा,—"लगता है आप आश्रम में नये-नये आये हैं।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"हाँ। ·· पर आपको यह कैसे मालूम ?····क्या आप इसके पूर्व भी आश्रम में आ चुकी हैं ?"

"हाँ, आती रही हूँ।" शर्मिष्ठा कुछ खोई-खोई सी बोली,—"····पर आप कैसे पधारे ?"

"देवयानी का पोष्य होकर।"—कच पुनः हँसने लगा। उसका सारा अभिनय स्वयं को अबूझ बनाये रखने के ही लिये था। किन्तु देवयानी का नाम सुनते ही जैसे वह चौक पड़ी,—"देवयानी का पोष्य होकर !····तात्पर्य ?"

"तात्पर्य यही कि उसे जानवरों का शौक है न !"—इस बार कच जोर से हँसा और हँसते हुए ही वह अतिथि कक्ष के द्वार तक पहुँच गया। घबराया हुआ वृषपर्वा अतिथि कक्ष से बाहर निकल आया।—"आखिर तुम किस पर अट्टहास कर रहे हो ?"—उसने पूछा।

"अपने पर ही।"—हँसते हुए कच बोलता रहा,—"जब मनुष्य जानवर हो जाता है, तो उसे अपने पर ही हँसना चाहिए····और खूब हँसना चाहिए।"—वह हँसता रहा।

सन्दर्भहीन एक उलझा हुआ व्यक्तित्व पिता-पुत्री के समक्ष हँसता खड़ा था। वे कुछ समझ नहीं पाये कि उसके लिए बुलाहट आ पहुँची। एक ब्रह्मचारी ने कच से कहा,—"आपको ऋषिकुमारी ने बुलाया है।"—वह सोचित अभिवादन कर चल पड़ा।

"बड़ा विचित्र लगता है यह युवक !"—कच के हटते ही वृषपर्वा बोला।

"हाँ, कैसी ऊटपटांग बातें करता है।"—शर्मिष्ठा ने कहा,—"यह आश्रम ही अद्भुत है। ··· यहाँ कोई-न-कोई विचित्र व्यक्तित्व मिल ही जाता है।" पिता कुछ पूछें इसके पहले ही वह बोलती गयी—"अभी कल तक कलत्र जी थे और अब यह पता नहीं कहाँ से चला आया है।"

"यही तो रहस्य है, तुमने उसकी हँसी नहीं देखी ! वह स्वयं को रहस्यमय बनाये रखना भी चाहता है।····इसीलिए वह कलत्र से अधिक खतरनाक है।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"कलत्र खतरनाक थे ?"—शर्मिष्ठा जैसे कुछ सोचने लगी, "··· वह तो अत्यन्त सरल थे, वृद्ध होकर भी बालक जैसे ।"

"वरन् बालक से भी अधिक सरल ··· । ····यही कहना चाहती हो न ?"—सरलता और सहजता भी अपनी सीमा पार कर लेने के बाद बड़ी खतरनाक हो जाती है । ···उन श्वानों को जानती हो जो बहुत अधिक भूकते और काटते हैं जब सीधे हो जाते हैं तब समझ लो कि वे विषैले हो चुके हैं ।"

"·· पर कलत्र का विष कभी दिखायी नहीं दिया ?"

"यदि विष दिखायी देता तो वह इतना खतरनाक न होता ।"—वृषपर्वा ज्यों-ज्यों कलत्र के सम्बन्ध में सोचता जा रहा था, उसकी मुद्रा गम्भीर होती जा रही थी,—"उस बूढ़े ने सदैव देवताओं का ही पक्ष लिया । वह आचार्य को मेरी राजधानी में आने से भी रोकता रहा ।····मुझे उसकी वह बात आज तक नहीं भूलती ।"—उनकी भृकुटियां टेढ़ी होने लगी ।

"कौन सी बात ?"—शर्मिष्ठा ने पूछा ।

"····राजभवन की विलासिता भोगने वाला आचार्य डाल से चूके वानर की तरह च्युत हो जाता है ।"—यह बात तो आचार्य से उसने मेरे सामने कही थी । ····सुना है, मेरे परोक्ष में भी वह आचार्य को बहकाता था,—"भृगु, तुम मेरे सहपाठी हो, इसलिए तुम्हें देखकर दुःख होता है । मैं तो कर्त्तव्य-च्युत हुआ ही । मैंने अपनी विद्या शिष्यों को नहीं बाँटी । किसी आश्रम को सेवा अर्पित नहीं की, मैं समाज के ऋण से मुक्त नहीं हुआ ।"—वृषपर्वा क्षणभर के लिए रुका । ऐसा लगा, कलत्र की छाया उसकी आकृति पर उतरने लगी ।

वह बोलता गया,—"कलत्र कहता था—जैसे देवऋण होता है, पितृऋण होता है, वैसे ही हम पर समाज का ऋण भी है, हम उसे अपना कर्त्तव्य पूरा कर ही चुका सकते हैं । ··· मैं व्यष्टिनिष्ट रहा, आत्मकेन्द्रित रहा । समाज ऋण के बोझ से दबा हुआ ही मरूँगा, पर तुम्हें तो आश्रम पैतृकदाय के रूप में मिला है । इसे सौभाग्य समझो । राजभवन की सोम और सुरा में उसका अस्तित्व मत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

डुबोओ।—कलत्र बहुधा आचार्य को बहकाता रहा।····यह तो मैं था जिसने उनके चारों ओर विलासिता का जाल फैलाये रखा। जिससे वह निकल नहीं पाये।"

"पर कलत्र का कथन आचार्य के लिए उचित ही था। यह बात दूसरी है कि वह हमारे स्वार्थ के विपरीत पड़ता था।"—शर्मिष्ठा बोली।

"लगता है, तेरा भी मस्तिष्क कहीं और से प्रभावित है।"—वृषपर्वा की मुद्रा बदली—"तू भी देवों की भाँति सोचने लगी है। हम देवताओं की भाँति आदर्श में नहीं जीते, यथार्थ में जीते हैं। हमारी स्वार्थ वृत्ति ही हमारे अस्तित्व के मूल में है।"

शर्मिष्ठा चुप रही।

"कलत्र हमारा शत्रु था। वह आचार्य से कहता था,—"तुममें देवरक्त है। तुम यदि आसुरी वृत्ति में लिप्त हो जाओगे, तो तुम्हें इतिहास क्या कहेगा? यही न कि एक नीतिज्ञ का पतन! वह भी इस सीमा तक कि वह सुरा और सुन्दरी से मुक्त नहीं हो पाया।"—असुरराज का आवेश जब धराधतल पर आया, तब शर्मिष्ठा बोली,— "····किन्तु तात, यदि सुरा और सुन्दरी ही आचार्य को चाहिए क्तो या उसे देवता नहीं दे सकते?"

वृषपर्वा के मन में अनेक बार और अनेक प्रसंगों में उठे प्रश्न को ही शर्मिष्ठा ने उभार दिया। "यही तो मैं सोचता हूँ।"—वृषपर्वा की आकृति विवर्ण होने लगी,—"कल रात उस नर्तकी की मुद्राएँ अभी तक मेरे मन में चुभ रही हैं।···· देखना, यदि उसका उद्देश्य अपने पिता और सहोदर की मुक्ति तक ही सीमित होगा तो अब वह आश्रम में दिखायी नहीं पड़ेगी।"—फिर वह कुछ सोचने लगा। शायद वह उन परिस्थितियों पर विचार करने लगा कि यदि वह आ जायेगी तो क्या होगा?

उसने अपनी बायीं भुजा में बँधे केयूर की ओर देखा। वह कुछ ढीला हो गया था। अचानक उसके मन में एक षड्यंत्र की चिनगारी छूटी। उसने अपने उस केयूर को उतारा। शर्मिष्ठा देखती रही कि तात क्या कर रहे हैं। वृषपर्वा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के अधरों पर कृत्रिम मुस्कराहट थी,—"आचार्य ने कच को मेरी सेवा में रखा था, पर वह अभी तक दिखायी नहीं पड़ा।....क्या तुम एक काम कर सकती हो?"

"क्या?"

"तुम इस केयूर को किसी तरह कच की पर्णकुटी में पहुँचा सकती हो? ....किन्तु इस कार्य के सम्पादन में कोई तुम्हें देख न पाये।"

"कोई भले ही न देख पाये, पर केयूर तो हमें देखता ही रहेगा।"—शर्मिष्ठा मुस्करायी।

"पगली! सुवर्ण तुझे क्या देखेगा? इसकी अन्धता में ही तो दूसरों को अन्धा करने की शक्ति है"—वृषपर्वा खिलखिला पड़ा। शर्मिष्ठा के लिए उसके कथन से कहीं अधिक सरल उसके हास्य को समझना था। फिर भी उसका मन इस ओर नहीं उलझा। वह तो षड्यन्त्र का रहस्य जानना चाहती थी। "आखिर केयूर को वहाँ रख देने से आपका क्या लाभ होगा?"—उसने पूछा।

"षड्यन्त्र रहस्य में ही तो जीवित रहता है, शर्मिष्ठा।.. अतएव तू विना कुछ जाने और समझे मेरी आज्ञा का पालन कर।"—वृषवर्वा की ध्वनि एक कूटनीतिज्ञ की भाँति गम्भीर हो गयी थी।

शर्मिष्ठा कटि में केयूर छिपा कर चल पड़ी। मेघ छँट गये थे। धूप का तीखापन उसके तन में चुनचुनाने लगा। अगल-बगल देखकर वह कच की कुटिया की ओर बढ़ती गयी। मार्ग में दो एक ब्रह्मचारियों ने उसे देखा भी, किन्तु इससे क्या? वह निर्विकल्प भाव से बढ़ती रही।

उसने दूर से देखा। कच की कुटी के कपाट बन्द थे। वह चलती गयी। ज्यों-ज्यों लक्ष्य निकट आता गया, उसकी धुकधुकी बढ़ती गयी। इस प्रकार का कार्य वह अपने जीवन में पहली बार कर रही थी, शायद इसीलिए द्वार तक पहुँचते-पहुँचते वह स्वयं को लगभग खो चुकी थी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसने देखा कपाट अवश्य बन्द है, पर अर्गला नहीं चढ़ी है। उसने बड़ी त्वरा में एक झटके से द्वार खोल दिया और एकदम सहम सी गयी। उसने कच और देवयानी को एक ही मंचक पर बैठे हुए देखा। देवयानी कच के कन्धे पर लगभग झुकी-झुकी थी। शर्मिष्ठा के अप्रत्याशित प्रवेश से वह सँभली।

"आइए " आइए"—कहते हुए कच ने खड़े होकर शर्मिष्ठा की अगवानी की, जब कि देवयानी एकदम फुफकार उठी,— "…क्या आइए-आइए कहते हो, …राजपुत्री होकर यह सामान्य शिष्टाचार भी नहीं जानती।"

शर्मिष्ठा चुप थी। व्यग्र थी। उसके मस्तक पर प्रश्वेद चुकचुका आये थे।

"किसी के बन्द कक्ष में प्रवेश करने के पहले क्या तुम्हें अनुमति नहीं लेनी चाहिए ?"—देवयानी उबल पड़ी।

शर्मिष्ठा क्या कहती ? उसे इस स्थिति की कल्पना तक नहीं थी। उसने स्वयं को नियंत्रित किया,—"क्षमा कीजिए, भूल हो गयी।"

"…कोई बात नहीं। कहिए, आपने कैसे कष्ट किया ?"—कच ने बड़े सामान्य भाव से पूछा।

शर्मिष्ठा क्या उत्तर देती ? सामने खौलती हुई देवयानी की आँखें उसे निगल जाना चाहती थीं। उसे लगा जैसे उसका अहं दुत्कारा जा रहा है। वह एक झटके में द्वार से निकली और बिना कुछ कहे चल पड़ी। उसने कच की दो एक पुकार भी सुनी। अनुभव किया कि वह द्वार के बाहर भी आ गया है, किन्तु उसने मुड़कर देखा नहीं। देवयानी की एक तीखी आवाज उसके कानों का स्पर्श कर निकल अवश्य गयी,—" …जाने दो, अभद्रता भी करती है और रोब भी दिखाती है।

वह छूटे हुए बाण की भांति सनसनाती हुई अपने कक्ष तक चली आयी। उसके मन में देवयानी के तिरस्कार की अनुगूँज चीत्कार बन चुकी थी। उसकी साँसें तेज हो गयी थीं, दबायी गयी राख धुआँ छोड़ रही थी। वृषपर्वा ने उसे देखते ही समझ लिया कि कोई बात हो गयी है।

"यह लीजिये अपना …" कहती हुई केयूर को निकालकर फेंक देने के लिए

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसने कमर में तेजी से हाथ ले गयी पर यह क्या ? केयूर तो नहीं है। उसकी आकृति का भाव अचानक बदला, कहीं गिर तो नहीं गया ? उसकी चकित दृष्टि यहाँ, वहाँ और बाहर देखने लगी। वह बिना कुछ कहे, बड़ी तेजी से कक्ष के बाहर निकली, किन्तु शीघ्र ही लौट आयी।

"आखिर क्या बात है ? इतनी व्यग्र क्यों हो ?" वृषपर्वा ने पूछा। वह फफक कर रो पड़ी। उसका तिरस्कृत आत्मसम्मान आँखों से पिघलकर बह चला।

पिता चकित था। पुत्री सिसकती रही। वातावरण गूँगा था।

पुत्री ने धीरे-धीरे सब बताया। पिता एक बनावटी हँसी हँसने लगा, एक ऐसी हँसी जो उसके घाव को सहला सके। एक ऐसी हँसी, जो धराशायी को उठाकर उसकी धूल झाड़ सके। उसी हँसी के बीच वह बोला,—"·· बस इतने से ही तू रोने लगी। कितनी पगली है री ?"—उसने उसकी पीठ सहलायी,—"····अभी तो तुझे ऐसे कितने आघात और अपमान सहने हैं।····तू अभी से विचलित हो गयी।"

"विचलित न होती, तो क्या करती ?··· आखिर हमारा भी आत्मसम्मान है।"—शर्मिष्ठा बोली।

"हमारा आत्मसम्मान, ह·· ह····ह।"—वृषपर्वा अट्टहास करने लगा,—"हम इस आश्रम के आश्रित हैं। आचार्य की कृपा के भिखारी हैं।·· कहीं भीखमंगों का भी आत्मसम्मान होता है ?"

इतना सुनते ही शर्मिष्ठा आँसू पोंछती हुई शान्त हो गयी। उसकी अग्नि पर हिमपात हो गया।

ऐसे ही घुटन भरे, बोझिल क्षण खिसकते चले गये।····एक प्रसन्न ध्वनि द्वार के बाहर से आयी—क्या मैं आ सकता हूँ।

"आइए।"—वृषपर्वा ने अनुमति दी। कच ने प्रवेश करते ही वह केयूर दिखाया,—"यह आपका ही है न ?

"हाँ, हाँ।" वृषपर्वा ने उसे ले लिया और बड़े नाटकीय ढंग से उसे देखते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हुए हँसा,—"यह आपको कहा मिला ? इसे ही खोजने के लिए तो मैंने शर्मिष्ठा को भेजा था ।"

"यह तो मेरे द्वार के बाहर ही गिरा था ।...आश्चर्य है, राजपुत्री मेरे कुटी में प्रवेश कर गयीं पर उन्होंने इसे नहीं देखा ।"—वह शर्मिष्ठा की ओर देखकर मुस्कराता रहा, मानो उसकी मुस्कराहट कह रही हो, जिसे देखना चाहिए था उसे तुमने नहीं देखा और जिसे देखना नहीं चाहिए था उसे ही देख लिया ।" उसी मुस्कराहट में बुझी छुरी कच ने एक बार फिर अपने जबान से चलायी,— "आप गम्भीर क्यों हैं ? चित्त शान्त तो है ?"—शर्मिष्ठा भीतर ही भीतर भुनकर रह गयी ।

वृषपर्वा अपनी पुत्री की मन:स्थिति समझ रहा था । उसने बात बदलते हुए कहा,—"मुझे आश्चर्य है कि यह वहाँ गया कैसे ?"—शर्मिष्ठा का मन बोला,— "झटके से निकलते समय यह वहाँ गिर गया होगा ।"—वह चुप ही रही । कच की प्रतिक्रिया थी,—"लक्ष्मी बड़ी चंचल होती है राजन् ! पता नहीं किस समय वह कहाँ पहुँच जाये ।"

वृषपर्वा की नाटकीय हँसी एक बार फिर फूटी,—"लगता है, लक्ष्मी इस समय तुम पर प्रसन्न है ।"

"क्यों राजन् !" कच ने सोचा, शर्मिष्ठा ने सब बता दिया होगा । तभी वृषपर्वा देवयानी के सन्दर्भ में लक्ष्मी की बात कह रहा है ।

वृषपर्वा केयूर की ओर संकेत कर बोला—"इसलिए कि यह तुम्हारे द्वार पर पाया गया है ।"

कच हँसा,—"इससे बड़ा मेरा दुर्भाग्य और क्या होगा ?"

"किसी ब्रह्मचारी पर लक्ष्मी की कृपा हो, यह तो उसका दुर्भाग्य ही है राजन् !...हम तो सरस्वती के कृपा के आकांक्षी हैं ।—"इस पर शर्मिष्ठा के मन की मौन प्रतिक्रिया बड़ी विद्रूप थी,—" नीच कहीं का, अपने को ब्रह्मचारी कहता है ।...और देवयानी से प्रेम प्रपंच रचाता है ।... अरे दुष्ट ! ब्रह्मचर्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शब्द का प्रयोग स्वयं के लिए करके इसकी पवित्रता नष्ट मतकर।"—फिर भी वह चुप थी। एकदम मौन। कच मुस्कराता रहा।

थोड़ी देर बाद ही कच राजन् की भोजन आदि की व्यवस्था पूछ कर चला गया।

"क्या मैं पूछ सकती हूँ कि केयूर के वहाँ रखने के पीछे आपकी क्या योजना थी?"—शर्मिष्ठा ने अपने पिता से पूछा।

"रखा ही नहीं जा सका तो क्या बताऊँ?"—मंचक पर ढुलकते हुए उन्होंने टूटे स्वर में कहा,—"सोचा था जैसे उस सुरबाला, नर्तकांगना के सम्बन्ध में आचार्य के मन में संशय बैठाया गया है वैसा ही कोई विष-बीज कच के सम्बन्ध में भी बो सकूँगा,····पर सब मिट्टी हो गया।"—वह कुछ सोचते हुए मूक छप्पर की ओर देखने लगे। प्रियंक (एक पक्षी) तिनके ला-लाकर एक कोने में घोंसला बना रहा था।

जब से कच के कक्ष में शर्मिष्ठा को अचानक प्रवृष्ट होते देखा था तब से देवयानी के भीतर एक शंकाकुल नारी ने जन्म ले लिया था। वह निरन्तर उससे पूछती जा रही थी कि आखिर शर्मिष्ठा को कच के कक्ष में आने का साहस कैसे हुआ?—वह भी बेहिचक, बेरोक-टोक, बन्द द्वार सहसा खोलकर।····आने का प्रयोजन पूछने पर वह घबरा क्यों गयी थी?····मुझे वह घूर-घूर कर देखती रही और बिना कुछ कहे वह लौटकर चली भी गयी। दाल में कुछ काला अवश्य है।

कच के व्यक्तित्व की सहजता उस पर राख डाल देती थी, फिर भी सन्देह का स्फुलिंग देवयानी के मन में जीवित रहा।

सन्ध्या का रंगीन अंचल उस पर्वतीय प्रदेश पर पसर चुका था। वायु शीतल और आर्द्र थी। जब कच को आचार्य के समक्ष बुलाया गया उसका मन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्विविधा और आशंकाओं में डूब रहा था। असुरराज की नीयत का उसे आभास हो गया था। उसे लगभग ज्ञात था कि कोई षड्यन्त्र उसके चारों ओर सुगबुगा रहा है। फिर भी कच का चट्टानी व्यक्तित्व आन्तरिक उद्रेक को अपनी हरियाली से ढँके रहा। सहज प्रसन्नता उसकी आकृति से चिपकी रही।

"जानते हो मैंने तुम्हें क्यों बुलाया है ?"—श्मश्रु और घनी भौंहों के बीच से जैसे निकल पड़ती आचार्य की आँखें कच को छेदती चली गयीं। उन्होंने बड़े गम्भीर स्वर में कहा,—"आज मैं अन्तिम रूप से निश्चय करूँगा कि तुम्हें आश्रम में रखूँ या निकाल बाहर करूँ।"

कच ने अपने नेत्रों के कोरों से एक आर्द्रदृष्टि देवयानी पर डाली, मानो वह कह रहा हो,—"मैं तो तुम्हारा पोष्य हूँ। मुझे रखने और निकालने का अधिकार तुम्हें दे दिया गया था। क्या यह तुम्हारे अधिकार का अतिक्रमण नहीं है ? क्या तुम इसका विरोध नहीं करोगी ?

पर देवयानी चुप थी। भीतर से छटपटाती हुई भी बाहर से शान्त थी। उसका कुतूहल तो यह देखना चाह रहा था कि आचार्य क्या करने जा रहे हैं।

"....तो क्या तुम्हारी मानसिकता उस निर्णायक क्षणों के लिए तैयार है ?" शान्त और स्थिर खड़े कच से आचार्य ने पुनः पूछा, किन्तु इस बार उनकी मुद्रा कुछ बदल गयी थी। अधरों के बीच से मुस्कराहट की दो एक लहर निकल चुकी थी।

"एक शिष्य की मानसिकता सदैव अपने आचार्य की आज्ञा का पालन के लिए प्रस्तुत रहती है तात !"—कच बोला तथा उसने फिर देवयानी की ओर देखा और अनुभव किया कि वह किसी भी क्षण अपने पिता का विरोध करने की स्थिति में आ रही है।

आचार्य ने वृषपर्वा को बुलाने का आदेश दिया। मौन उत्कण्ठा उस घुटन भरे वातावरण को घेर बैठी थी।

वृषपर्वा के आते ही आचार्य ने उसे अपनी बगल में बैठाया। शर्मिष्ठा भी असुरराज के पार्श्व में ही बैठी। आचार्य ने कहा,—"मैं इस आश्रम का आचार्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हूँ। मेरी आज्ञा ही यहाँ विधान है। मैं नहीं चाहता कि इस आश्रम में किसी और की आज्ञा चले।…मैंने सुना है कि उस नर्तकी को कच ने मेरे परोक्ष में आश्रम से निकल जाने का आदेश दिया।"

"ऐसा आदेश देने का न तो मैं अधिकारी हूँ और न मैंने ऐसा किया है?"—कच ने अपना आश्चर्य व्यक्त किया।

"तुम अधिकारी नहीं हो, इसीलिए तो तुम मेरे शाप के अधिकारी हो।… और इसका क्या प्रमाण है कि तुमने ऐसा नहीं किया है?"

"मैं ही प्रमाण हूँ कि मैंने ऐसा नहीं किया है।"—कच इस सामान्य स्थिति में भी हँसने लगा,—"यदि आप क्षमा करें, तो मैं निवेदन करूँ कि आरोप लगाने वाले पर ही उसे प्रमाणित करने का भार होता है।"—कच मुस्कराता रहा। आचार्य की तर्कना को एक आघात सा लगा। उन्होंने अनुभव किया कि कच ठीक कहता है। अब उन्होंने वृषपर्वा को नेत्रों से संकेत किया कि प्रमाण दो।

वृषपर्वा कुछ डगमगाती आवाज में बोला,—"मुझे सूचना मिली है कि निशीथ में जब वह आश्रम से जा रही थी, तब झरने के निकट तुम उसके साथ देखे गये थे।"

कच को लगा कि कुचक्र का अवतारक पहली बार आवरण के बाहर आया है। उसे क्रोध था, फिर भी उसने अपना संतुलन नहीं खोया,—"हाँ, देखा जा सकता हूँ।….पर इसका यह तात्पर्य नहीं है कि मैंने उसे जाने के लिए कहा था।…वह स्वयं जा रही थी। मैं कौन होता था, उसे रोकने वाला?"

"तुम यह तो पूछ सकते थे कि इतनी रात को कहाँ?"—आचार्य बोले।

"मैंने पूछा था और यह भी कहा था कि इतनी रात में जाना ठीक नहीं, यदि जाना ही है तो उषा काल में चली जाना। पर वह न रुक सकी और बोली।…."—इतना कहते-कहते वह रुक गया और वृषपर्वा की ओर एक टक देखता रहा।

"क्यों रुक गये कच, बोलते क्यों नहीं?"—आचार्य की उत्कण्ठा उछाल मार रही थी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"•••मुझे भय लग रहा है आचार्य !" वृषपर्वा की ओर कच ने पुनः शंकित दृष्टि से देखा।

"मेरी ओर से तुम निर्भय हो।"—शुक्राचार्य ने कहा—"•••और जानते ही हो कि आश्रम में आचार्य की अनुमति के बिना किसी प्रकार का भय प्रवेश नहीं कर सकता।"

अब कच रहस्योद्घाटन की स्थिति में आ गया था,—"•••वह कह रही थी कि प्रभात तक रहना मेरे जीवन के लिए घातक है।•••असुरराज ने मुझे आचार्य से दूर हटाने की निर्मम योजना बनायी है।"—इतना सुनना था कि वृषपर्वा की आकृति का रंग उड़ गया। "यह मैं क्या सुन रहा हूँ ?"—आचार्य ने उस पर आग्नेय दृष्टि डाली। वह एकदम घबरा उठा,—"नहीं, नहीं। यह झूठ है, बिल्कुल झूठ है।"

"झूठ हो या सत्य उसने कहा यही था।"—बड़े सामान्य भाव से कच ने कहा।

"यह सारा कथन तुम्हारी अपनी उद्भावना है।•••तुम मुझ पर झूठा आरोप लगा रहे हो।"—असुरराज गरजा।

"झूठा आरोप तो आपने लगाया था, मैं तो सत्य कह रहा हूँ।"—कच ने कहा और बड़े नाटकीय ढंग से हँसने लगा,—"•••किन्तु मुझे आश्चर्य होता है राजन्•••कि मैं आप से इस बीच कई बार मिल चुका हूँ, पर आपने इस आरोप के सम्बन्ध में इसके पूर्व कभी चर्चा नहीं की।•••इसी से इसके पीछे मुझे षड्यंत्र की गंध आती है।" इतना कहकर उसने एक तीखी दृष्टि पुनः वृषपर्वा पर डाली। वह पसीने-पसीने हो चला था। 'डगमगाते को एक आघात और।' उसने सोचा और फिर बोल पड़ा,—"सोचता हूँ कि मुझ जैसे साधारण युवक से कहने में आप ऐसे प्रतापी का साहस क्यों बुझ गया ?"—कच के अधरों में विष से बुझी एक मुस्कराहट और दौड़ गयी। वृषपर्वा तिलमिला उठा। वह अपने ओठ चबाता रह गया।

"कुचक्र गोपनीयता के कक्ष में ही जन्म लेता है।•••यदि आपने मुझसे चर्चा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं की तो सिद्धान्तः ठीक ही किया।"—बोलने के बाद कच के हँसते ही असुरराज गरज उठा,—"अपनी सीमा का अतिक्रमण मत करो कच! ... इस समय हम आश्रम में हैं। उसके नियम से बँधे हैं,... अन्यथा अब तक तुम्हारी जबान खींच ली जाती।"

"तो क्या होता?"—कच हँसने लगा,—"जबान खींचने से सत्य कभी मरता नहीं, राजन्! गूँगा अवश्य हो जाता है।"—कच अब भी हँसता रहा। उसने वृषपर्वा की ओर देखा। वह सुलग रहा था। तपते तवे पर कुछ छींटे फेंकने के लिए ही कच की नाटकीयता पुनः उभरी,—"क्षमा कीजिएगा, राजन्! मैं थोड़ा दुर्विनीत हो गया था।... यदि आचार्य जी का अभयदान न मिलता, तो मैं कदाचित् बोल भी न पाता।"

"तुम दुर्विनीत तो हो ही, साथ ही झूठे और वाचाल भी।"—वृषपर्वा गुर्राया।

"....किन्तु मैं झूठा हूँ या (आप न कहकर) कोई और? इसका निर्णय तो तब तक नहीं हो सकता जब तक वह सुरबाला नहीं आ जाती।—कच ने कहा।

"इसीलिए तो तुम मुझपर आरोप लगाते जा रहे हो, क्योंकि वह आ नहीं सकती।"

"क्या आप जानते हैं कि वह आ नहीं सकती?"—कच ने एक कुटिल मुस्कराहट पुनः बिखेरी। इस प्रश्न का वह क्या उत्तर देता? यदि 'हाँ' करता तब भी फँसता और 'नहीं' करता तब भी। वृषपर्वा कुड़बुड़ा कर रह गया। "क्या तुम जानते हो? वह आ सकती है?" उसने कच से पूछा।

"मैं तो उसके आने-जाने के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानता।"—कच ने कहा।

"अच्छा, अब यह बकवास आप लोग बन्द कीजिए।"—आचार्य झुंझलाये—"जब तक वह नहीं आती, वास्तविकता जांची नहीं जा सकती।"—आचार्य मौन होकर कुछ सोचने लगे।

अब तक कच खड़ा था। चुप-चाप वह धरती पर बैठ गया। उसने शर्मिष्ठा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की ओर दृष्टि घुमायी। अपने पिता के पीछे बैठी वह कच को एकटक देख रही थी, किन्तु ज्यों ही कच की दृष्टि उस पर पड़ी, उसने आँखें हटा लीं। एक ओर देवयानी और दूसरी ओर शर्मिष्ठा—दोनों की आँखों के बोझ का अनुभव करता हुआ भी कच स्थिर था। उसकी कल्पना में दो आँखें उभरती हुई उसके निकट और आ रही थीं; वह थीं जयन्ती की। उसे लगा जैसे वे आँखें उससे पूछ रही हों,""मैं आम्लक पर्वत के उस पार ही भटकती रहूँगी या तुम मेरे लिए कोई कार्य-क्रम और दोगे?"

"सभी को मेरे सामने बुलाओ?"—अचानक आचार्य बोल उठे। उनका स्वर इतना कटु और तिक्त था कि किसी ने यह नहीं पूछा कि 'सभी' से आपका तात्पर्य क्या है?

आचार्य के चारों पुत्र, अन्य ब्रह्मचारी यहाँ तक कि आचार्य पत्नी शतपर्वा भी बुलायी गयीं, किन्तु शतपर्वा को देखते ही वे बोल पड़े—"तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं है।" बिना कुछ कहे वह अपने कक्ष की ओर लौट गयीं।

आचार्य ने संक्षेप में कच और वृषपर्वा द्वारा एक दूसरे पर लगाये गये आरोपों की चर्चा की और कहा,—"जब तक वह सुरबाला उपस्थित नहीं होती, तब तक इन दोनों के आरोपों की सत्यता को आंका नहीं जा सकता। अब तुम में से कौन ऐसा है जो उस सुरबाला को खोज कर ला सकता है?"

एक विषम चुप्पी उड़ कर सबकी आकृतियों पर चिपक गयी। आचार्य गम्भीर मुद्रा में कुछ सोचने लगे,—"क्या तुम में से कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है जो उसका पता लगा सके?"

कोई कुछ नहीं बोला, सब पहले की भांति ही मौन थे।

"वह देवकन्या थी। उसके पिता और भाई असुरराज के यहाँ बन्दी थे। निश्चित है कि मुक्त होते ही वे अपने निवास पर चले गये होंगे।" त्वष्टा ने बड़ी बुद्धिमानी से उलझे तन्तु का एक छोर पकड़ा,—"""और स्वजनों से मिलने की उत्कण्ठा ही उस कन्या को खींच ले गयी होगी।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"जब उत्कण्ठा ही उसे खींच ले गयी होगी तब दोनों ने एक दूसरे पर जो आरोप लगाये हैं, वे मिथ्या है ?"—आचार्य बोले।

"इसे मैं कैसे कह सकता हूँ ?"—त्वष्टा स्वयं को किसी निर्णायक स्थिति में लाना नहीं चाहता था। वह बोला—"मैं तो मात्र यह कहना चाहता हूँ कि उस देवांगना की खोज वही कर सकता है, जो देवताओं के बीच बेहिचक जा सकता हो तथा जिस पर देवताओं का विश्वास भी हो।"

सुलझता हुआ सूत्र आकर कच से लिपटने लगा, उसने अनुमान लगा लिया कि आचार्य का आदेश मुझे ही उसे खोजने के लिए होगा। वह इसके लिए तैयार भी था, फिर भी उसकी बुद्धि कह रही थी कि जल्दी मत करना, परिस्थिति का ऐसा ही आग्रह है।

त्वष्टा की बात आचार्य के मन में बैठ गयी। उन्होंने कच से कहा,—"आश्रम में सम्प्रति तुम्हीं ऐसे व्यक्ति हो जो देवताओं के बीच जाकर उसका पता लगा सकते हो।"

"जा तो सकता हूँ, पर····।"—उसने ऐसी मुद्रा बनायी कि न तो उसमें जाने की इच्छा का आभास और न आचार्य की अवज्ञा का साहस ही दिखायी पड़ा। उसने देवयानी की ओर देखा। देवयानी ने भी न जाने का संकेत किया। आचार्य की अनुभवी आँखों को भी नयनों के इस संभाषण का आभास लगा,—"समझता हूँ कि तुम देवयानी के पोष्य हो, उसकी अनुमति मिलने पर ही जाओगे ?"—आचार्य हँस पड़े,—"अरे पगले ! मैं तेरी पोषिका का भी पोषक हूँ। इस आश्रम में मेरी ही आज्ञा सर्वोपरि है।"

"इसे मैं जानता हूँ तात !" विनीत होकर कच ने सिर झुका लिया।

"····तब तुम देवयानी की ओर क्यों देख रहे थे ?"

"देख नहीं रहा था आचार्य !····डूबता तिनके का सहारा खोज रहा था।"

"मैं तुम्हें डूबने के लिए नहीं, देवताओं के बीच नर्तकांगना को खोजने के लिए भेज रहा हूँ।"—आचार्य की ध्वनि में आदेश की रुक्षता थी—"तुम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वृहस्पति के पुत्र हो, देवगुरु के आत्मज !··· तुम्हारे पिता की एक इंगित पर वह वाला खोज निकाली जा सकती है।"

"आपकी आज्ञा शिरोधार्य है आचार्य ! मैं उसे खोजने की अवश्य चेष्टा करूँगा और विश्वास है कि आपके आशीर्वाद से मुझे सफलता भी मिलेगी।····पर वह यदि न आना चाहे तो क्या करूँगा ?"

"कहोगे कि आचार्य ने तुझे बुलाया है।"

"यदि फिर भी वह न आयी तब ?"

"तब स्पष्ट कह देना कि तुम आचार्य के शाप की भागी बनोगी ?"—आचार्य के विशाल नेत्रों से अहं फूटा पड़ रहा था,—"काल की भृकुटि जिस पर टेढ़ी होती है, वह शुक्राचार्य से शापित होता है।"

कच मन ही मन हँस पड़ा, उसके भीतर आवाज उठी,—"शापित करने वाला नीतिज्ञ शुक्र आज मर चुका है, उसका अवशेष विलासता के नद का एक दुर्गन्धित मच्छ मात्र है, जिस पर इतिहास थूँकेगा, जिस पर आश्रम की अस्मिता आठ-आठ आँसू बहायेगी।"—फिर भी कच कुछ बोला नहीं, चुपचाप सिर नीचा किये खड़ा रहा, मानो आचार्य के आदेश से गड़ा जा रहा हो।

"अब तुम जा सकते हो।"—आचार्य बोले,—"यदि अकेले जाना निरापद न समझो तो आश्रम के किसी और को साथ ले लो।"

कच ने पुनः देवयानी की ओर देखा। इस बार शर्मिष्ठा की जलन अधरों पर बुदबुदायी,—"क्या बार-बार देख रहा है।···अब तो अनुमति भी मिल गयी है, ले जाना हो, तो लेता जा।····तेरा ब्रह्मचर्य क्षण भर के लिए भी उसे छोड़ नहीं सकता तो।" ·· किन्तु शर्मिष्ठा को कोई सुन नहीं पाया।

साथ लेने की बात पर कच बोल पड़ा,—"जब एक युवती, वह भी मध्यरात्रि में अकेली जा सकती है तब मुझे भय कैसा ?"

"····किन्तु मैं तुम्हें अकेले जाने देना नहीं चाहता।"—वृषपर्वा के इतना कहते ही सबकी उत्कण्ठा के कान खड़े हो गये। वृषपर्वा ने तर्क प्रस्तुत किया,—"मेरे और तुम्हारे बीच उठे विवाद के तुम एक पक्ष हो।··· और वह बाला

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसकी निर्णायक परिणति होगी।...क्या यह उचित होगा कि तुम एकाकी उसे बुलाने जाओ?....क्या यह सम्भव नहीं कि मार्ग में तुम उसे अपने पक्ष का कर लो?"

कच मुस्कराया,—"मैं जानता था कि इस प्रकार की शंका अवश्य उठेगी। फिर भी मैं अपनी शंकालु स्थिति के सम्बन्ध में आचार्य से कह नहीं पा रहा था।....अच्छा हुआ कि आपने कह दिया।"

"शंका का आधार है कच!" वृषपर्वा बोला,—"अभी ज्ञात हुआ कि तुम देवगुरु के पुत्र हो। वह भी देवकन्या है। उसे अपने पक्ष में मिलाते देर नहीं लगेगी। यों भी वह तुम्हारा ही पक्ष लेगी। इतना कहकर उसने आचार्य की ओर देखा। एक झुंझलाहट उनकी आकृति पर उभरने लगी थी।

"....तब आप ही बताइए क्या किया जाए?"—कच हँसा,—"मैं जाने के पक्ष में तो यों ही नहीं था, पर आचार्य की आज्ञा के समक्ष विवश था।"

वृषपर्वा चुप हो कुछ सोचने लगा।

"अब बोलते क्यों नहीं?....केवल शंका और बाधा ही उत्पन्न करना जानते हो?"—आचार्य की झुंझलाहट मुखर हुई,—"समस्या उत्पन्न करने के पहले उसके समाधान को भी सोच लिया करो।"

"इसका समाधान तो सरल है तात!"—कच हंसने लगा।

आचार्य प्रश्न करें इसके पहले ही वह बोल पड़ा,—"सारी समस्या का समाधान हो जायेगा यदि असुरराज मेरे साथ ही चल चलें।"

"क्या कहा? मैं तुम्हारे साथ चलूं? तुम्हारा अनुसरण करते हुए देवताओं के यहाँ जाऊँ।"—वृषपर्वा का अभिमान विस्तार ले बैठा,—"मैं विजेता हूँ और एकबाला की खोज में विजितों के क्षेत्र में भटकूं?"

"भटकना तो दूर रहा यदि आचार्य की आज्ञा हो तो मैं यमराज की शरण में भी जा सकता हूँ।"—कच इस समय ब्रह्मचारी नहीं, वरन् एक राजनीतिक अभिनेता था। वह हँसते हुए बोलता रहा,—"....आचार्य के चरणों में बैठकर भी यदि राजन् तेरा अभिमान नहीं गया, तो तू शिष्य कैसा?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वृषपर्वा की स्फीत अहंता कच के बुद्धि कौशल के समक्ष चूर-चूर हो गयी। उसके लिए मौन रहने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रहा। आचार्य के नेत्र भी क्रोध से लाल होने लगे थे। वृषपर्वा ने अनुभव किया कि वह अनर्थ के कगार पर आ चुका है।

इस ज्वालामुखी पर भी कच की मुस्कराहट बरस रही थी,—"या तो मेरे साथ चलिए राजन्, या मुझ पर विश्वास कीजिए।"

वृषपर्वा का मौन विस्तृत होता जा रहा था। "अब बोलते क्यों नहीं ?"—आचार्य ने एक धक्का और दिया। फिर भी वह मौन रहा। इस बार उसकी पराजित दृष्टि धरा चूमने लगी थी।

दूसरे दिन प्रातःकाल अग्निहोत्र में सम्मिलित होने के बाद कच सीधे देवयानी के कक्ष में पहुँचा, पहुँचा ही नहीं, वह धड़धड़ाता हुआ घुस गया। अप्रत्याशित प्रवेश से वह एकदम हड़बड़ा उठी। अपने वस्त्र से खेलते मृगशावक को दूर हटाकर उसने अपना आँचल ठीक किया और कच की आगवानी में मुस्कराहट बिखेर दी।

"मैं जा रहा हूँ, सोचा मिलता चलूँ।" इतना कहते-कहते वह देवयानी के बहुत निकट पहुँच चुका था। लगता है, वह चाहकर भी कुछ और बोल नहीं पाया। केवल उस मृगशावक पर निष्क्रिय भाव से हाथ फेरता रहा। उसे लगा मानो वह देवयानी की रोमांचित देह सहला रहा हो। देवयानी उसे अपलक निहारती रही,—"....कब तक लौटोगे ?"—उसने पूछा।

"यह काल देवता ही बता सकता है।"—एक डगमगाती अनिश्चितता मुखर हुई,—"....और लौट सकूँगा या नहीं, यह भी भगवान् ही जाने।"

"क्यों ? ऐसी निराशा क्यों ?"—देवयानी ने कहा,—"....और यदि नहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मिलेगी तो भी आकर तात से स्पष्ट बता देना कि वह नहीं मिली,....और मिली भी तो आना नहीं चाहती।"

"देवयानी तुम समझती नहीं हो।"—आत्मीयता ने पहली बार औपचारिकता का बन्धन तोड़ा था। कच ने ऋषिकुमारी को नाम लेकर सम्बोधित किया था,—"....यह सब इतना सरल नहीं है।....नहीं तो मैं तुमसे अन्तिम विदा लेने नहीं आता।"

"अन्तिम विदा।"—सुनते ही वह सिहर उठी। उसकी मुट्ठी से बालू की तरह झरने लगा वह स्वप्न जिसे उसने अभी तक दबा रखा था। फिर भी वह बड़ी दृढ़ता से बोली,—"मैंने तुम्हें कभी इतना हताश तो नहीं देखा था।"

"...क्योंकि स्थिति नहीं थी।"—उसकी ध्वनि में गम्भीरता थी,—"....एक षड्यन्त्र मेरे चारों ओर बुन लिया गया है, जिसे मैं देख नहीं पाया हूँ, पर जिसकी गंध मुझे लग गयी है।"

"....अच्छा तो तुम अब गंधजीवी (श्वान) हो गये हो।"—कच को हल्का करने के लिए देवयानी ने कहा,—"जब मनुष्य से हटकर किसी की रुचि जानवरों में होती है तब दूसरे उसे गंधजीवी ही दिखायी पड़ते हैं।" कच बोला और मुस्कराया भी, पर इस बार ऐसा लगा जैसे वह मुस्कराने की चेष्टा कर रहा हो। फिर वह एकदम गम्भीर हो गया,—"मुझे लगता है कि मेरे जीवन के लिए खतरा है।"

देवयानी स्तब्ध होकर उसे देखती रही। वह खुलने लगा,—"जब से वृषपर्वा को पता चला है कि मैं बृहस्पति का पुत्र हूँ, वह व्यग्र हो उठा है। उसे कभी स्वीकार नहीं है कि देवगुरु का पुत्र असुर गुरु से शिक्षा प्राप्त करे।...उसे भय है कि कहीं उसकी संजीवनी विद्या का रहस्य मैं जान न लूँ।"

"भय है तो रहा करे। वह कर क्या सकता है?"

"मेरी हत्या करा सकता है।"

"वृषपर्वा यदि तुम्हारी हत्या करा सकता है, तो करा दे, लेकिन तुम कभी नहीं मरोगे।"—इतना कहकर वह मुस्करायी। जानते हो कब तक?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कच ने नकारात्मक ढंग से सिर हिलाया।

"....जब तक तुम मेरे पोष्य हो।"—वह जोर से हँस पड़ी—"आखिर तात की संजीवनी विद्या किस दिन के लिए है ?"

देवयानी की उस उन्मुक्त हँसी पर भी, कच की गम्भीरता बनी रही। वह सोचता रहा,—मेरी हत्या न करा कर वे मुझे सदा के लिए बन्दी बना सकते हैं, तब क्या होगा ? लेकिन उसने इसका उद्घाटन नहीं किया। लाचार होकर देवयानी को ही पूछना पड़ा,—"क्या सोचते हो ?"

"....सोचता हूँ, यदि मेरी हत्या तुम्हारे भाइयों से करायी गयी, तब भी मेरे प्रति तुम्हारा यही दृष्टिकोण रहेगा ?"

"हत्या तो हत्या, चाहे वह किसी से भी करायी जाय। हमारे दृष्टिकोण में कोई अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि जन्म से ही मुझे मनुष्य से अधिक पशु प्रिय हैं।"—देवयानी खिलखिला पड़ी। इस बार कच भी हँसा। "....किन्तु तुम एक बात शायद नहीं जानते ?"—देवयानी बोली।

"क्या ?"

"अभी तक तो तुम मेरे पोष्य मात्र हो, किन्तु संजीवनी विद्या से जब तुम्हें पुनर्जीवन दिया जायेगा, तब जानते हो मैं तुम्हारी क्या हो जाऊँगी ?"

"माँ, यहीं कहलाना चाहती हो न ?"—कच हँसने लगा, पर देवयानी एकदम झिझक उठी। उसे लगा कच के प्रति उसकी प्रेमार्द्रता पर जैसे किसी ने चिनगारियों की वर्षा कर दी, उसके कानों ने वह सुना जिसकी उसे कभी आशा नहीं थी। "आखिर रह गये तुम जानवर के जानवर।"—वह बोल पड़ी,—पगले, पुनर्जीवन देने के बाद तुम पर एकमात्र मेरा ही अधिकार होगा।"

"वह तो है ही। इसमें इतना मीन-मेष क्यों ?"—दोनों हँस पड़े। इसी हास्य रेखा से भविष्य के प्रगाढ़ सम्बन्ध का सन्धि-पत्र लिखा गया।

अब देवयानी की दोनों भुजाओं का हार कच के गले में था। वह मृग शावक ठगा सा देखता रह गया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"तो चलता हूँ।···· सोचता हूँ कि उन लोगों से भी विदा ले लूँ।"—कच ने कक्ष से निकलते हुए कहा—

"किन से ?"

"····अरे, तुम्हारे सम्मान्य अतिथियों से।"—कच का स्पष्ट संकेत वृषपर्वा से था। "वे तुम्हारे विरोधी भी हैं और तुम उनसे विदा लेने भी जा रहे हो।" —देवयानी बोली।

"यही तो राजनीति है देवयानी !"—कच ने कहा,—"मैं जानता हूँ कि वे मेरे विरोधी हैं।····यदि मेरी हत्या भी करायी जायेगी तो उन्हीं की योजना पर।···फिर भी मैं उनसे मिलने और विदा लेने जा रहा हूँ।"

देवयानी आश्चर्य से उसे देखती रही। उसे लगा कि एक भोले-भाले सहज व्यक्तित्व के भीतर एक कुशल राजनीतिक भी जी रहा है। वह व्यंग्य करते हुए मुस्करायी,—"सचमुच बड़ी सौभाग्य-शालिनी हूँ मैं।"

कच के नेत्र प्रश्नवाचक होते ही वह बोल पड़ी,—"आज तक कोई मेरा पशु इतना चतुर नहीं था।"

"जब पशु मनुष्य बनने का प्रयत्न करता है, तब वह सहज और अहिंसक होने लगता है। किन्तु मनुष्य जब जानवर समझा जाने लगता है तब उसे क्रूर और चतुर होना ही पड़ता है।"

"तुम चतुर तो हो पर कभी क्रूर नहीं दिखायी दिये।"

"जब दानवों की क्रूरता भी तुम्हारे सामने हवा हो जाती है, तब भला मेरी क्रूरता का अस्तित्व ही क्या ?"—कच नें कहा। देवयानी मुस्करा पड़ी। उसने उसके अन्तर को कुरेदते हुए कहा,—"यह कहो कि मुझे शर्मिष्ठा से विदा लेनी है।

"हाँ, यह भी हो सकता है, पर यह आंशिक सत्य है।"—वह सिर खुजलाते हुए बोला।

"सत्य है न ?····भले ही आंशिक ही सही।"—देवयानी का स्वर गम्भीर था,—"पुरुष और भौंरे कभी एक फूल पर रह ही नहीं सकते। उनकी प्रकृति ही दो मुँहा सांप है।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"....किन्तु दो मुँहा साँप कभी विषैला नहीं होता। विष तो नागिन की धर्मिता है।"—कच हँस पड़ा, साथ में देवयानी भी। हँसी के थमते ही देवयानी ने पूछा,—"यदि तुम नहीं लौटे तो ?"

"तो समझ लेना कि तुम्हारी संजीवनी विद्या की आवश्यकता है।....अन्यथा किसी भी स्थिति में अवश्य लौटूँगा।"—कच चल पड़ा। देवयानी की मुस्कराहट ने उसे विदाई दी।

वह अतिथि कक्ष की ओर बढ़ा चला आ रहा था। मंद-गंधवाह से झूमते रसाल वन में कोकिल गा रहा था।

कच ने दूर से ही देखा कि वृषपर्वा के कक्ष से प्रवज्ञा निकला चला आ रहा है। प्रकृति से अत्यन्त गम्भीर प्रवज्ञा उसका परिचर-अमात्य है। विश्वस्त है। वृषपर्वा अपने राज्य के बाहर कहीं भी उसके बिना नहीं जाता, पर वह उसके किसी कार्य में प्रत्यक्ष रूप से सहायक होते हुए भी दिखायी नहीं देता। वहुधा उनसे दूर ही रहता है। जिस रात वृषपर्वा आश्रम में आया था, उसी समय कच ने उसे देखा था। फिर तो वह बहुत कम ही दिखायी पड़ा। आचार्य के समक्ष भी असुरराज अकेले ही आता था, बहुत हुआ तो शर्मिष्ठा उसके साथ हो लेती थी, पर प्रवज्ञा कभी भी उसके साथ नहीं रहा, फिर भी वह उसका परिचर अमात्य है। आश्चर्य होता है।

इस समय वह मर्क से कुछ मंत्रणा करता चला आ रहा था। उसके मस्तक पर सिकुड़न की गहराई चिन्तन की गम्भीरता का परिचय दे रही थी। वातों में इतना तल्लीन था कि कच को उसने देखा भी नहीं। कच का मार्ग ही उसके दृष्टिपथ से हटकर था।

निकट पहुँचते ही कच ने प्रणाम किया। 'अरे तुम' वह एकदम हड़बड़ा सा गया।....और मर्क ? उसके नेत्र विस्फारित हो चले। "इधर कैसे चले कच ?" —प्रवज्ञा ने अपने को संभालते हुए कहा !

"आप ही लोगों से मिलने जा रहा था।"—हर मनःस्थिति को ढँक लेने वाली मुस्कराहट उसके अधरों पर थी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"क्यों ? कोई विशेष बात है क्या ?"—प्रवज्ञा का संशय पूछ बैठा। कहीं रहस्य आभासित तो नहीं हो गया ? उसने सोचा।

"नहीं, कोई विशेष बात नहीं।"""सोचा, जब आश्रम से जा रहा हूँ तो आप लोगों से आशीर्वाद लेता चलूँ।"

"सुर-पुत्र असुर से आशीर्वाद की याचना करे, इस विनम्रता की मुझे तो कल्पना भी नहीं थी।"—प्रवज्ञा हँसा।

"विनम्रता में ही तो हमारा सुरत्व सुरक्षित है, महाराज।"—कच ने कहा।

"अन्य सुरों को तो मैंने ऐसा नहीं देखा।"

"सामने आते ही आपकी छाया पड़ जाती होगी।"—कच हँसा।

"तब आप पर क्यों नहीं पड़ी ?"

"मैं भाग्यमान जो ठहरा।"—इस बार कच की हँसी का साथ प्रवज्ञा ने भी दिया। उन्होंने समझ लिया कि यह बात बनाना खूब जानता है।""पर मर्क गम्भीर ही रहा।

पुनः नमस्कार कर आगे बढ़ते हुए कच ने पूछा,—"असुरराज तो कक्ष में ही हैं न ?"

प्रवज्ञा ने सिर हिलाकर हाँ कहा। वह कुछ और पूछे—इसके पहले ही कच ने बताया,—"""उनसे एक निवेदन करने जा रहा हूँ।"

"क्या मैं जान सकता हूँ ?"—प्रवज्ञा बोला।

"नहीं। वह नितान्त गोपनीय है।"—एक संदेहभरी मुस्कराहट बिखेरता वह चल पड़ा।

कच का अप्रत्याशित उपस्थित होना वृषपर्वा के लिए आश्चर्यजनक था। उन्होंने सोचा, मेरे गोपनीय षड्यन्त्र की यह अयाचित उपलब्धि तो नहीं। वे अस्थिर हो उठे। शर्मिष्ठा भी सकपकायी। अब कच के मन पर प्रवज्ञा और मर्क की गम्भीर मुद्राएँ भी उभरीं। किसी कुचक्र की आशंका गाढ़ी होती उसे लगी, फिर भी वह मुस्कराहट ओढ़े रहा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"आचार्य की आज्ञानुसार मैं जा रहा हूँ। आप से आशीर्वाद लेने और एक निवेदन करने आया था।"—कच बोला।

"देवपुत्रों को आशीर्वाद देने की परम्परा हम असुरों की नहीं है।"—आचार्य के समक्ष किया गया अपमान अब भी उसके भीतर सुलग रहा था,—"हाँ, जो कुछ निवेदन करना चाहते हो, करो।"

कुछ क्षणों तक वह वृषपर्वा की भभकती मुद्रा देखता रहा, फिर बड़ी सहजता से बोला,—"यदि आप क्षमा करें तो निवेदन करूँ।"

"आश्रम के परिसर में तुम हर स्थिति में क्षम्य हो, अवव्य हो।"

"इसका तात्पर्य है कि परिसर से निकलते ही मैं अक्षम्य हो जाऊँगा और वध्य भी।"—कच हँसा।

"तुम जो भी चाहो तात्पर्य निकालने के लिए स्वतन्त्र हो।"—वृषपर्वा ने कह तो दिया, पर शीघ्र ही अनुभव किया कि मेरे मुख से जो नहीं निकलना चाहिए था वह निकल गया है। क्रोध ने मेरा मानसिक संतुलन विकृत कर दिया।

लड़खड़ाते विवेक ने खड़े होने की चेष्टा की। क्रोध स्वतः लुप्त होने लगा। कुछ ही क्षणों में वृषपर्वा सामान्य हो चला था। उसने बदली हुई मनःस्थिति में कहा,—"इन बातों को जाने दो।··· अच्छा तुम बताओ, कहना क्या चाहते हो?"

"निवेदन करना चाहता था कि आप मेरे साथ प्रवज्ञा को भी भेजने की कृपा करें।"—कच बोला।

"ऐसा तुम क्यों चाहते हो, वृषपर्वा के मन में प्रश्न उठा, पर वह मौन ही रह गया। कच को एक टक देखता रहा। उसे लगा, इसके वध की योजना का शायद इसे आभास हो गया है। तभी तो यह प्रवज्ञा को साथ ले जाना चाहता है। उसकी उपस्थिति में कौन इस पर प्रहार करेगा।····यदि करेगा भी तो सारा दोष मेरे सिर मढ़ा जायेगा।····यह कितना चतुर है? असि से ही ढाल का काम लेना चाहता है। आखिर अंगिरा का पौत्र जो ठहरा।"

"क्यों, डरते हो? प्रवज्ञा को साथ ले जाकर क्या करोगे?"—एक कूटनीतिक मुस्कराहट वृषपर्वा के अधरों पर दौड़ गयी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"जिसे आपका आशीर्वाद और आचार्य का शिष्यत्व प्राप्त हो, उसे भय कैसा ?"—कच ने कहा,—"फिर भी प्रवज्ञा को ले जाना चाहता हूँ, केवल आपकी संतुष्टि के लिए।"

"मैं संतुष्ट हूँ।"—वृषपर्वा इतना कहकर गम्भीर हो गया, । घुटन भरे मौन ने कच को लौटने के लिए विवश कर दिया।

उसके कक्ष से निकलते ही वृषपर्वा ने शर्मिष्ठा से कहा,—"लगता है, इसे योजना की गंध लग गयी है।"

"आपने भी तो आचार्य के पुत्रों का विश्वास कर लिया।"—शर्मिष्ठा बोली।

"क्यों ? वे अविश्वस्त हैं क्या ?"—वृषपर्वा ने पूछा,—"मैंने उन्हें अभीष्ट स्वर्ण का आश्वासन दिया है। वे अवश्य मेरा कार्य पूरा करेंगे।"

"स्वर्ण खण्डों पर खरीदा गया व्यक्ति बार-बार खरीदा जा सकता है ?"—शर्मिष्ठा मुस्करायी। अपने पिता के राजनीतिक अनुभव पर जैसे व्यग्यं कर रही हो,—"जिन्हें आप खरीद सकते हैं, क्या उन्हें कच नहीं खरीद सकता ?"

"कच के पास क्या धरा है कि खरीद सकता है ?"

"उसके पास वुद्धि है, विवेक है, कौशल है।"—शर्मिष्ठा कुटी के द्वार की ओर देखते हुए बोली और फिर चुप हो गयी, जैसे कच का व्यक्तित्व उसके भीतर से उभर कर बाहर आया। वृषपर्वा यह समझने के लिए विवश होता दिखायी दिया कि उसकी पुत्री में कच के प्रति ललक है, भले ही वह उसके गुणों तक ही सीमित हो।

पिता-पुत्री का चिन्तन मूक हो गया था। किन्तु यह अन्तराल लम्बा नहीं चला। उस समय मौन भंग हो गया जब प्रवज्ञा ने प्रवेश किया। "सुना, कच ने आप से कोई गोपनीय निवेदन किया है।"—प्रवज्ञा ने पूछा।

'ऐसी तो कोई बात नहीं है।"

"किन्तु उसने तो मुझसे कहा था कि मैं महाराज से गोपनीय निवेदन करने जा रहा हूँ।"—प्रवज्ञा बोला,—"उस समय उसकी मुस्कराहट बड़ी रहस्यमय हो गयी थी।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"उसकी मुस्कराहट ही नहीं, वह स्वयं बड़ा रहस्यमय है।"--उसके मस्तक पर सिलवटें पड़ने लगीं,—"लगता है, उसे देवाचार्य की बुद्धि के साथ ही साथ असुरों का छल भी मिला है।"

"....और अब असुराचार्य की संजीवनी विद्या भी मिल जायेगी ?"-- अमात्य ने स्वर में स्वर मिलाया।

"यह कभी नहीं होगा प्रवज्ञा !...कभी नहीं होगा।"—असुरराज बोलते-बोलते आवेग में आकर खड़ा हो गया और फिर टहलने लगा,--वृषपर्वा कभी कच्ची गोटी खेलनेवाला नहीं है, प्रवज्ञा।....देखना इस बार उससे सदा-सदा के लिए मुक्ति मिल जायेगी।"—वह अट्टहास करने लगा, एक विक्षिप्त अट्टहास !

प्रवज्ञा उसे देखता रह गया। वह कच के गोपनीय निवेदन की गुत्थी सुलझा भी नहीं पाया था।

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

□□□

अब वह आम्लक पर्वत के निकट पहुँच रहा था। फिर भी अभी अर्ध योजन तो होगा ही। वह सांस लेने के लिए एक शिला पर बैठ गया। कार्तिक का कृष्ण पक्ष। मालती की सुरभि चुरा लुक-छिप कर भागता समीरण। अगणित नेत्रों से अपलक निहारने वाला निरभ्र शारदीय आकाश। बढ़ता हुआ अँधेरा। कभी-कभी घुग्घु की कर्कश ध्वनि में कांप उठती निःस्तब्धता और शिला खण्ड पर बैठा एक स्लथ राही। एकाकी, पर निरीह नहीं। अकेला, पर निर्स्वप्न नहीं। वह अनुभव कर रहा था, कि वह गहन अन्धकार में डूब रहा है, मात्र एक किरण के लिए जो देवताओं का कल्याण कर सके। किरण उसके हाथ से टकराती है, छूटती है और फिर टकराती है।

इस समय वह 'अस्ति' में नहीं, 'आसीत' में जी रहा था। 'भवति' के उज्ज्वल आकाश पर देवों का भविष्य लिख रहा था।

कुछ ही क्षणों का यह विश्राम था, क्योंकि रात्रि के द्वितीय प्रहर के पूर्व उसे अभीष्ट स्थान पर पहुँचना था। वह उठ कर चलने को हुआ। एक पक्षी बिना ध्वनि किये उसके सिर के निकट से ही फड़फड़ाता निकल गया। वह उलूक था या क्रौंच ? वह समझ नहीं पाया और समझने की आवश्यकता भी नहीं थी।

वह चल पड़ा। एक जानी और चीन्ही डगर पर। सम्भावनाओं और आशंकाओं के विलोम रंगी तन्तुओं से सपने बुनता हुआ। कुछ दूर और आगे बढ़ने पर एक पगडंडी दक्षिण जंगल से निकल कर उसके मार्ग से मिलती थी। वह लगभग उस मिलन विन्दु तक पहुँचा ही था कि उससे एक भयानक ध्वनि टकरायी—"अरे वही है।"—दूर से आयी यह आवाज परिचित अवश्य थी, पर अचानक वह व्यक्ति का अनुमान कर नहीं पाया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"आगे बढ़ कर घेर क्यों नहीं लेते ? इससे अच्छा अब दूसरा अवसर कहाँ मिलेगा ?"—यह आगे बढ़ते व्यक्ति की दूसरी आवाज थी। कच किसी निर्णायक स्थिति पर पहुँचने ही वाला था कि इसके पहले ही वे नग्न असि लेकर उसके समक्ष आ चुके थे। "तुम मरने के लिए तैयार हो जाओ।"—मर्क बोला।

"जिस दिन से जीव जन्म लेता है, उसी दिन से वह मरने के लिए तैयार हो जाता है।"—नितान्त सहज और सामान्य भाव से कच ने कहा। जिसकी आशंका थी, वही होने जा रहा था, फिर भी वह अपनी व्यग्रता को मुस्कराहट से ढकता जा रहा था।

उसे कच की सहजता पर आश्चर्य था,—"बड़े विचित्र मालूम होते हो।"—इस बार षण्ड ने कहा—"तो तुम मरने से नहीं डरते ?"

"मरने से डरने वाला व्यक्ति जीना नहीं जानता, मित्र।....और मैं जीना जानता हूँ।"—इस बार वह जोर से हँसा। निश्चित ही उसकी यह हँसी बनावटी थी और शुक्र पुत्रों पर स्नाविक दबाव डालने के लिए उत्पन्न की गयी थी।

षण्ड और मर्क दोनों चकित हो उसे देखते रह गये। वह हँसता रहा। जंगल उसकी हँसी निगलता रहा,—"उठाओ असि और अपना काम पूरा करो।"—कच ने बड़ी दृढ़ता से कहा,—"मैं जानता हूँ, कि तुम मुझ पर तलवार उठा नहीं सकते।"

"....क्यों नहीं उठा सकते ? हम तो मात्र यह देख रहे हैं कि मरने के पूर्व की हँसी कैसी होती है ?" षण्ड का लड़खड़ाता विवेक एक बार फिर सँभला।

"जीवन की सच्ची अनुभूति तो मृत्यु के साक्षात्कार के ही समय होती है मित्र !"—कच की हँसी शब्दों में बदलने लगी,—"मेरे आँखों के सामने मृत्यु की विभीषिका नहीं, जीवन का नग्न सत्य है।....एक सत्य जिसकी कल्पना देवताओं ने सृष्टि के आदि में ही की थी।"—फिर उसकी खिलखिलाहट निःस्तब्धता में तैरने लगी।

"क्या की थी कल्पना ?"—षण्ड की तलवार तनी की तनी रह गयी।

"....यही कि उस दिन देव-सृष्टि का अंत निश्चित है जिस दिन उसकी ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तलवार स्वयं उसके विरुद्ध उठ जायेगी।"—कच ने अनुभव किया कि वे उसकी बात में उलझने लगे हैं। कच की कूटनीतिज्ञता और मुखर हो उठी,—"मुझे मरने का जरा भी क्लेश नहीं है।····क्लेश है कि तुम्हारे हाथ से मारे जाने पर भी कुछ नहीं कर पाऊँगा।"

"आखिर तुम कहना क्या चाहते हो?"

"हर मारा जाने वाला व्यक्ति एक बार लोहा तो लेना ही चाहता है।"

"····तो तुम्हारा प्रतिशोध छटपटा रहा है, केवल इसलिए कि तुम्हारे पास कोई अस्त्र नहीं है।"—षण्ड बोला,—"मर्क, तुम अपनी असि इसे दे दो।"

अग्रज के आदेश के बाद भी मर्क हिचकिचाया। वह असि देकर निहत्था होना नहीं चाहता था। कच का स्वच्छन्द उन्नत व्यक्तित्व उसे आतंकित किये जा रहा था। उसने एक बार षण्ड की ओर देखा, फिर कच की ओर। वह तो कच के प्रथम वार की प्रतीक्षा में था।

कच को दोनों की मनःस्थिति का आभास हो गया,—"मुझे आपकी तलवार की प्रतीक्षा नहीं है।"—वह बोला।

"मैं नहीं चाहता कि तुम निहत्थे होकर प्रतिरोध करो।"—षण्ड की अहम्मन्यता उफान खा रही थी,—"निहत्थे पर आक्रमण करना धर्म नहीं है।"—इतना कहते हुए षण्ड ने अपनी तलवार कच की ओर बढ़ायी और बायें हाथ से ही कटि से निस्त्रिंश (एक प्रकार की कटार) खींच ली। "मेरे लिए तो यही काफी है।"—उसने कहा।

धर्म शब्द सुनते ही कच का उन्मुक्त अट्टहास फूटा। सोती प्रकृति की नींद में अवश्य खलल पड़ा होगा। फिर भी वह हँसता जा रहा था। षण्ड और मर्क दोनों चकित हो उसका अट्टहास देखते रहे। अंततः उनका आश्चर्य शब्दायित हुआ,—"हँस क्यों रहे हो?"

"हँस इसलिए रहा हूँ कि इस समय तुम्हें धर्म याद आ रहा है।"—कच हँसते हुए ही बोलता रहा—"उस समय तुम्हें धर्म याद नहीं आया जिस समय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तुमने एक निहत्थे व्यक्ति पर निर्जन वन में, वह भी इस एकान्त निशीथ में मारने की योजना बनायी।"

"लगता है, तुम अपनी वाचलता में हमें उलझाना चाहते हो। हम अपना उद्देश्य पूरा करके ही रहेंगे।"—मर्क ने कहा।

"तुम अपना उद्देश्य पूरा करो, मित्र!" कच मुस्कराता रहा। उसकी बुद्धि ने दूसरा जाल फेंका,—"तुम अपना उद्देश्य तो पूरा कर लोगे, पर हम अपना कर्त्तव्य पूरा कर नहीं पायेंगे।"

"क्या है तुम्हारा कर्त्तव्य ?"

"आचार्य के आदेश का पालन।····उस नर्तकी का पता लगाना!"—उस अन्धकार में भी कच के मुस्कराहट की कुटिलता स्पष्ट दीख पड़ी—"शायद आचार्य को ही पता नहीं होगा कि आदेश के पालन में उनके पुत्र ही बाधक होंगे।"—कुछ रुककर कच ने गम्भीर मुद्रा बनाते हुए कहा,—"मरने वालों की इच्छा का पालन तो असुर लोग भी करते हैं,····पर तुम मेरी इच्छा का पालन कर सकोगे ?"

—"क्या है तुम्हारी इच्छा ?"

"····उस नर्तकी का पता लगाकर आचार्य के चरणों में अर्पित कर देना।"—कच के स्वर की गम्भीरता उसकी मुस्कराहट को लगभग सोख चुकी थी, "—असि ऊपर उठाओ और प्रतिज्ञा करो कि तुम मेरी इच्छा का पालन करोगे। मैं मरने को तैयार हूँ।"—कच ने पुनः कहा।

"····तो तुम मेरे आक्रमण का प्रतिरोध नहीं करोगे ?"

"नहीं।"

"क्यों तुम डरते हो ?"

"डर की पहुँच तो मात्र जीवन की परिधि तक ही होती है, मित्र!···· मृत्यु के आलिंगन में भय कहाँ ?"

कच के इस व्यवहार पर शुक्रपुत्रों का कुतूहल बढ़ता गया—"फिर क्या बात है कि तुम प्रतिरोध करना नहीं चाहते हो ?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"मैं देवों के उज्ज्वल यश पर कालिख नहीं पोतना चाहता।"—

"पहेली बुझाने का प्रयत्न मत करो कच!"—षण्ड ने उलझन से निकलने की चेष्टा की,—"स्पष्ट कहो कि तुम्हारा तात्पर्य क्या है?"

"तात्पर्य स्पष्ट है।"—उसकी हँसी विचलित नहीं हुई,—"मैं तुम पर तलवार उठाना नहीं चाहता।"

"आखिर क्यों?"

"···क्योंकि तुम देवपुत्र हो।····तुम्हारी धमनियों में महर्षि चाक्षुष का रक्त है, तुम्हारे मस्तिष्क में आचार्य भृगु की मनीषा आज भी साँस ले रही है।··· मैं देवगुरु का आत्मज होकर तुम पर तलवार उठाऊँ?····हमारे लिए डूब मरने के बराबर है। मैं नहीं चाहता कि तुम्हारी हत्या कर देवताओं के इतिहास के लिए अँधेरा बटोरूँ।" कच की वाग्मिता शुक्रपुत्रों पर असर करने लगी।

"·सचमुच हम भी तो देववंश के ही हैं, तब···· शुक्रपुत्रों की चिंतन सरणि के बीच से अचानक वृषपर्वा की वीभत्समुद्रा उभरी,—"तुम विचलित हो रहे हो आचार्य-पुत्रों, सँभलो।···तुम विचलित हो रहे हो सँभलो।" ठीक इसी समय एक और आवाज भी जन्मी,—"तुम देवपुत्र हो, विचार करो।···· तुम देवरक्त हो, विचार करो।" ये दोनों आवाजें आपस में टकराती रहीं, टकराती रहीं। शुक्रपुत्रों का हिंस्रत्व चूर होने लगा। तलवारें झुकने लगीं।

कच ने अनुभव किया कि वह असर कर रहा है। आचार्य पुत्रों की हिंसा झुक रही है। मात्र एक प्रहार की और आवश्यकता है। कच एक अभिनेता की भांति बड़बड़ाया,—"काल देवता, तुम इन देवपुत्रों को क्षमा करना, इन्हें स्वयं नहीं ज्ञात है कि यह क्या कर रहे हैं?····अनन्त अन्तरिक्ष से निहार रहे हमारे पूवर्जो, हमें क्षमा करना कि हम स्वयं को ही मारने और मरने के लिए उद्यत हैं। इतिहास! हमारे इस जघन्य कर्म की उपेक्षा करना, हमारे एकत्र किये तमिस्र को अपने पृष्ठों से बाहर रखना।"—फिर अचानक कच की मुद्रा बदली,—"मेरे कर्त्तव्य का दायित्व स्वीकार कर अपनी इच्छा पूरी करो।"

वे कुछ बोल नहीं पाये, पर भीतर से टूटने लगे थे। निस्त्रिंश हाथ से छूट चुकी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

थी। तलवारें धरती चूमने लगी थीं। कच को लगा कि इनकी हिंसा मर चुकी है। मात्र उसका शव शेष है। उसने एक प्रहार और किया,—"....सोचने का अवसर नहीं है, अपना काम पूरा करो। क्या कहेगा वृषपर्वा कि देवपुत्र होकर भी ये कायर निकले।"

शुक्रपुत्रों के पैर के नीचे की धरती कांपने लगी थी। ज्वालामुखी फूटने ही वाला था कि उनकी दृढ़ता धराशायी हो गयी। वे सामने से हट गये। ग्लानि से भींगा स्वर लड़खड़ाया,—"तुम जा सकते हो।"

कच चुपचाप आगे बढ़ गया।

सवेरा हो चला। आश्रम में ब्राह्ममुहूर्त की औपचारिकता लगभग समाप्त हो चुकी। वृषपर्वा की कल्पना प्राची के नभ में कच का पसरता रक्त देखती रह गयी। किन्तु थोड़ी देर बाद ही जब प्रवज्ञा ने उन्हें सूचना दी कि मर्क और षण्ड आश्रम में ही उन्हें दिखायी पड़े हैं, सारा रक्त सिमिट कर सूर्य बन गया था। एक व्यंग्य करता सूर्य, जलानेवाला सूर्य। वृषपर्वा लगभग झुलसने लगा था,—"बुला ले आओ उन दोनों को।"—वह तड़पा।

"मैंने बुलाया तो है, पर अब तक वे नहीं आये।"—प्रवज्ञा बोला।

"....तब दाल में कुछ काला अवश्य है।"—वृषपर्वा सोचने लगा। उसके शरीर का सारा रक्त मस्तिष्क की ओर दौड़ने लगा,—"तुमने उससे कुछ पूछा नहीं ?"

"जिज्ञासा तो थी, पर वे आचार्य से बातें कर रहे थे।....उनसे पूछने के लिए ही तो यहाँ बुलाया था।

"पर वे अब तक आये नहीं।"

"....हो सकता है आचार्य ने किसी काम में लगा दिया हो।"

"....क्या यह नहीं हो सकता है कि आचार्य को उन्होंने सब कुछ बता दिया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हो ?"—षडयन्त्र की असफलता उसे निगलने के लिए मुँह बायें दौड़ती दिखायी दी। वृषपर्वा व्यग्र हो उठा,—"क्या तुम उन्हें फिर बुला सकते हो ?"

"... बुला तो सकता हूँ, पर वे आयें तब तो ?"—एक निराशा बिखेर कर प्रवज्ञा चला गया।

वृषपर्वा चिन्तित मुद्रा में अतिथि कक्ष के बाहर ही टहलता रहा। शर्मिष्ठा भी थी, पर वह मौन थी। अपने पिता के एक कदम पीछे से ही उनका अनुसरण कर रही थी। असफलता की आशंका रह रहकर उसके मस्तिष्क में चमक उठती थी।

"यदि अब भी बुलाने पर वे नहीं आये तब क्या होगा ?

"होगा क्या ?"—शर्मिष्ठा झिड़की,—"आप तो बहुत घबराते हैं, पिताजी। ....भले ही कुछ न हो पर सारा अनिष्ट पहले ही सोच लेते हैं।"

वृषपर्वा चुप हो गया, पर व्यग्रता भीतर-ही-भीतर घुटती रही।

थोड़ी देर बाद आकर प्रवज्ञा ने सूचना दी कि देवयानी कुछ अस्वस्थ है। किसी वनौषध के खोज में आचार्य ने दोनों को अरण्य की ओर भेज दिया है।

वृषपर्वा की आकृति का रंग बदलने लगा। "देवयानी की अस्वस्थता के मूल में क्या कच का वियोग नहीं है।" उसने सोचा,—"ऐसा तो नहीं, कि उसे उसके वध का आभास लग गया हो ?" फिर एक नितान्त विपरीत कल्पना स्वयं जाग उठी,—"यदि ऐसा होता, तो देवयानी अब तक ताण्डव कर देती। आसमान सिर पर उठा लेती....और आचार्य को संजीवनी विद्या के प्रयोग के लिए विवश कर देती।"

'अस्ति' 'नास्ति' के थपेड़ों के बीच वह डूबता-उतराता रहा। अपनी कुटिया में आकर वह मंचक पर ढुलक गया। शर्मिष्ठा अपने पिता की मनःस्थिति से अच्छी तरह परिचित थी। उसने समझ लिया कि पिताजी उद्विग्न हैं, तभी लेट गये हैं।

"फिर क्या सोचने लगे आप ?"—शर्मिष्ठा ने उन्हें सामान्य करने की नीयत से पूछा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"कुछ नहीं।"—एक लम्बी सांस ली और बोले,—"आखिर देवयानी अस्वस्थ क्यों हो गयी?"

शर्मिष्ठा हँस पड़ी,—"आप भी बड़े विचित्र हैं। यह भी कोई सोचने की बात है? ···अरे तन तो व्याधियों का मन्दिर है। उनमें से कोई व्याधि उभर आयी होगी।"

वृषपर्वा कुछ बोला नहीं; वह असामान्य भाव से मौन पड़ा रहा। कुछ क्षण ऐसे ही खिसकते चले गये।

"राजपुत्री को देवयानी स्मरण कर रही हैं।" एक ब्रह्मचारी ने सूचित किया। वृषपर्वा की व्याकुलता उफन पड़ी,—"कोई बात जरूर है।"··· पर वह उसे रोकने की स्थिति में भी नहीं था। उसने ब्रह्मचारी से कहा,—"आप चलें। शर्मिष्ठा अभी जाती है।"

वह चला गया। "तुम्हें जाना ही पड़ेगा शर्मिष्ठा!"····देवयानी की अवज्ञा का तात्पर्य है आचार्य की अवज्ञा।"

इतना सुनते ही शर्मिष्ठा चल पड़ी। "जरा रुको।"—वृषपर्वा ने उसे अचानक रोका,—"देखो, वह तुमसे कुछ जानने की चेष्टा अवश्य करेगी, पर तुम खुलना मत।"

शर्मिष्ठा पुनः चलने को हुई पर पिता की व्यग्रता नहीं मानी,—"आप यदि इसके साथ चले जायँ तो कैसा हो?"—उन्होंने प्रवज्ञा से पूछा, किन्तु प्रवज्ञा ने इसे आज्ञा की भाँति शिरोधार्य किया और वह शर्मिष्ठा के साथ हो लिया।

शर्मिष्ठा अपने पिता की शंकालु प्रकृति पर मुस्कराती चली जा रही थी।

तल्प पर मृगचर्म का आस्तरण था। देवयानी उस पर पड़ी थी। निकट ही उसकी माँ शतपर्वा बैठी सिर सहला रही थी। शर्मिष्ठा एकदम भीतर घुस गयी, पर प्रवज्ञा बाहर ही ठिठक कर रह गया। शर्मिष्ठा ने द्वार की ओर देखा। देवयानी ने समझ लिया कि बाहर कोई है। "कौन है शर्मिष्ठा?" देवयानी ने पूछा।

"मेरे साथ प्रवज्ञाजी भी आये हैं।"—शर्मिष्ठा बोली।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"अच्छा ···, तो राजपुत्री जी, बिना अमात्य के चल नहीं सकतीं।—" देवयानी की आँखें विचित्र ढंग से नाच उठीं।

देवयानी की यह इठलाहट उसे चुभ सी गयी। आखिर वह राजपुत्री थी ही। उसकी अस्मिता पर जैसे किसी ने शिलाखण्ड पटक दिया हो। वह दबी हुई नागिन की तरह छटपटायी, पर वह न तो फुफकार सकती थी और न काट ही। वह भीतर से फनफनाती हुई बाहर से निष्क्रिय थी, निरीह थी।

"अब तो शर्मिष्ठा आ ही गयी है माँ! तुम जा सकती हो।" देवयानी ने माँ से कहा। वह शर्मिष्ठा पर मुस्कराहट बरसाती चली गयी।

देवयानी ने एक जलती दृष्टि शर्मिष्ठा पर डाली,—"खड़ी क्या देख रही है?···चल मेरा सिर सहला।"—उसके ध्वनि की ऐंठन बढ़ती गयी,—"और हाँ अपने अमात्य को विदा कर दे।···कह दे कि मैं ऋषि कुमारी की सेवा में हूँ। तू जा आराम कर।"

वह कुछ क्षणों तक रुकी रही, पर देवयानी की मुद्रा उसे जैसे धक्के दिये जा रही थी। उधर उसका अहं उससे पूछ रहा था—क्या तू ऋषि कुमारी की सेवा करेगी, तू तो राजकुमारी है। सम्पूर्ण असुर समाज तेरे सामने नत मस्तक होता है। पर उसका अहं पछाड़ खाता रह गया। अतः उसे देवयानी के समक्ष झुकना पड़ा। बाहर आकर उसने प्रवज्ञा को विदा किया और तल्प के निकट पहुँची।

"फिर खड़ी हो गयी। तेरा रूप देखने के लिए थोड़े ही बुलाया है।"—देवयानी झिड़की। शर्मिष्ठा ने सिरहाने बैठकर सिर सहलाना आरम्भ किया, पर भीतर-ही-भीतर सुलगती रही। उसका राजसी वैभव धुआँ उगलने लगा था। जिसकी सेवा में अनेक दासियाँ हों, जिसकी वेणी गूँथने के लिए अनेक सैरंध्रियाँ तत्पर रहती हों, वह एक वनवासिनी का सिर सहलाये। आखिर किसलिए? मात्र उस संजीवनी विद्या के कारण, जिससे मेरे पिता का राजसिंहासन स्वयं चिपक गया है। वह सोचती रही, सोचती रही। उसके हाथ अवश्य देवयानी के सिर पर चलते रहे, पर उसका अन्तर उबलता रहा। वह अचानक उद्विग्न हो उठी और छोड़कर उठ खड़ी हो गयी। देवयानी की उनींदी आँखें खुल गयीं,—"मैं अभी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जाग रही हूँ।"—उसकी जबान एक बार फिर ऐंठी। शर्मिष्ठा के चरण आगे तो नहीं बढ़े, वह खड़ी की खड़ी रह गयी। इस बार उसने अपना मुँह भी देवयानी की ओर से फेर लिया था।

"क्या सोच रही हो ?"—देवयानी का स्वर पहले से कुछ ढीला पड़ा।

चुप रहने के बाद वह मुंह फेरे ही बोली,—"सोचती हूँ कि यदि मुझे आपकी सेवा ही करनी थी तो ईश्वर ने राजा के घर क्यों पैदा किया ?"

"ओ, अब समझी।"—देवयानी बोली,—"तुझे तेरा वैभव परेशान किये दे रहा है।....पर शायद तू नहीं जानती कि आश्रम में ऐसा वैभव प्रवेश नहीं पाता। उसे लोग द्वार पर ही छोड़कर भीतर घुसते हैं।....बाहर का राजा यहाँ मात्र भिखारी बनकर ही आता है।"—वह थोड़ा रुककर मुस्करायी—"खैर धीरे-धीरे तू सब समझ जायेगी।"

"धीरे-धीरे सब समझ जायेगी।"—शर्मिष्ठा चकरायी। उसके मन ने ही पूछा—क्या उसे यहाँ बहुत दिनों तक रहना पड़ेगा ?....पर स्वयं वह इसका कोई उत्तर दे नहीं पायी। बहुत देर तक सोचती रही। अब देवयानी की ओर एक टक देख रही थी। "लगता है, तू अब भी कुछ सोच रही है।"—देवयानी बोली।

"यहाँ मुझे बहुत दिनों तक रहना पड़ेगा क्या ?"—शंका उभर आयी।

"यह क्यों नहीं सोचती कि रहना पड़ सकता है।"—देवयानी खिलखिला पड़ी—"यह सब हमारे पिता की इच्छा पर निर्भर है।

"...और हमारे पिता की इच्छा पर कुछ भी निर्भर नहीं ?" शर्मिष्ठा बोली।

देवयानी फिर हँसी, उसके ज्वर की पीड़ा जैसे उड़ सी गयी थी। उसने विहँसते हुए ही शर्मिष्ठा से कहा,—"क्या तुम अपने पिता से पूछ सकती हो कि तुममें और राजसिंहासन में से यदि उन्हें किसी एक को छोड़ना हो तो वे किसे छोड़ना पसन्द करेंगे ?"

शर्मिष्ठा सोचने लगी। एक ओर राजसिंहासन, दूसरी ओर मैं और बीच में मेरा पिता। क्या हम दोनों उसे समान रूप से आवश्यक नहीं हैं ? क्या वह अपने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"अच्छा ···, तो राजपुत्री जी, बिना अमात्य के चल नहीं सकतीं।—" देवयानी की आँखें विचित्र ढंग से नाच उठीं।

देवयानी की यह इठलाहट उसे चुभ सी गयी। आखिर वह राजपुत्री थी ही। उसकी अस्मिता पर जैसे किसी ने शिलाखण्ड पटक दिया हो। वह दबी हुई नागिन की तरह छटपटायी, पर वह न तो फुफकार सकती थी और न काट ही। वह भीतर से फनफनाती हुई बाहर से निष्क्रिय थी, निरीह थी।

"अब तो शर्मिष्ठा आ ही गयी है माँ! तुम जा सकती हो।" देवयानी ने माँ से कहा। वह शर्मिष्ठा पर मुस्कराहट बरसाती चली गयी।

देवयानी ने एक जलती दृष्टि शर्मिष्ठा पर डाली,—"खड़ी क्या देख रही है?····चल मेरा सिर सहला।"—उसके ध्वनि की ऐंठन बढ़ती गयी,—"और हाँ अपने अमात्य को विदा कर दे।····कह दे कि मैं ऋषि कुमारी की सेवा में हूँ। तू जा आराम कर।"

वह कुछ क्षणों तक रुकी रही, पर देवयानी की मुद्रा उसे जैसे धक्के दिये जा रही थी। उधर उसका अहं उससे पूछ रहा था—क्या तू ऋषि कुमारी की सेवा करेगी, तू तो राजकुमारी है। सम्पूर्ण असुर समाज तेरे सामने नत मस्तक होता है। पर उसका अहं पछाड़ खाता रह गया। अतः उसे देवयानी के समक्ष झुकना पड़ा। बाहर आकर उसने प्रवज्ञा को विदा किया और तल्प के निकट पहुँची।

"फिर खड़ी हो गयी। तेरा रूप देखने के लिए थोड़े ही बुलाया है।"—देवयानी झिड़की। शर्मिष्ठा ने सिरहाने बैठकर सिर सहलाना आरम्भ किया, पर भीतर-ही-भीतर सुलगती रही। उसका राजसी वैभव धुआँ उगलने लगा था। जिसकी सेवा में अनेक दासियाँ हों, जिसकी वेणी गूँथने के लिए अनेक सैरंध्रियाँ तत्पर रहती हों, वह एक वनवासिनी का सिर सहलाये। आखिर किसलिए? मात्र उस संजीवनी विद्या के कारण, जिससे मेरे पिता का राजसिंहासन स्वयं चिपक गया है। वह सोचती रही, सोचती रही। उसके हाथ अवश्य देवयानी के सिर पर चलते रहे, पर उसका अन्तर उबलता रहा। वह अचानक उद्विग्न हो उठी और छोड़कर उठ खड़ी हो गयी। देवयानी की उनींदी आँखें खुल गयीं,—"मैं अभी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जाग रही हूँ।"—उसकी जबान एक बार फिर ऐंठी। शर्मिष्ठा के चरण आगे तो नहीं बढ़े, वह खड़ी की खड़ी रह गयी। इस बार उसने अपना मुँह भी देवयानी की ओर से फेर लिया था।

"क्या सोच रही हो ?"—देवयानी का स्वर पहले से कुछ ढीला पड़ा।

चुप रहने के बाद वह मुंह फेरे ही बोली,—"सोचती हूँ कि यदि मुझे आपकी सेवा ही करनी थी तो ईश्वर ने राजा के घर क्यों पैदा किया ?"

"ओ, अब समझी।"—देवयानी बोली,—"तुझे तेरा वैभव परेशान किये दे रहा है।....पर शायद तू नहीं जानती कि आश्रम में ऐसा वैभव प्रवेश नहीं पाता। उसे लोग द्वार पर ही छोड़कर भीतर घुसते हैं।....बाहर का राजा यहाँ मात्र भिखारी बनकर ही आता है।"—वह थोड़ा रुककर मुस्करायी—"खैर धीरे-धीरे तू सब समझ जायेगी।"

"धीरे-धीरे सब समझ जायेगी।"—शर्मिष्ठा चकरायी। उसके मन ने ही पूछा—क्या उसे यहाँ बहुत दिनों तक रहना पड़ेगा ?....पर स्वयं वह इसका कोई उत्तर दे नहीं पायी। बहुत देर तक सोचती रही। अब देवयानी की ओर एक टक देख रही थी। "लगता है, तू अब भी कुछ सोच रही है।"—देवयानी बोली।

"यहाँ मुझे बहुत दिनों तक रहना पड़ेगा क्या ?"—शंका उभर आयी।

"यह क्यों नहीं सोचती कि रहना पड़ सकता है।"—देवयानी खिलखिला पड़ी—"यह सब हमारे पिता की इच्छा पर निर्भर है।

"...और हमारे पिता की इच्छा पर कुछ भी निर्भर नहीं ?" शर्मिष्ठा बोली।

देवयानी फिर हँसी, उसके ज्वर की पीड़ा जैसे उड़ सी गयी थी। उसने विहँसते हुए ही शर्मिष्ठा से कहा,—"क्या तुम अपने पिता से पूछ सकती हो कि तुममें और राजसिंहासन में से यदि उन्हें किसी एक को छोड़ना हो तो वे किसे छोड़ना पसन्द करेंगे ?"

शर्मिष्ठा सोचने लगी। एक ओर राजसिंहासन, दूसरी ओर मैं और बीच में मेरा पिता। क्या हम दोनों उसे समान रूप से आवश्यक नहीं हैं ? क्या वह अपने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दोनों हाथों से हम दोनों को पकड़े रख नहीं सकता ?····आखिर छोड़ेगा क्यों ? फिर देवयानी ने ऐसा प्रश्न क्यों किया ?····अवश्य ही इसमें कोई रहस्य होगा। ····तो क्या मैं पिताजी से पूछूं ? कैसे पूछूं ?····क्या कहेंगे वे ?"—अन्तर्मंथन चलता गया। वह सोचती गयी।

"मैं समझती हूँ कि तुममें अन्तर्द्वंद है, पर इसका निराकरण मेरे पास नहीं है।"—देवयानी बोली। इस वार उसकी मुस्कराहट बड़ी अर्थपूर्ण थी। उसने पुनः कहा,—"इस समय मैं तुम्हें मुक्त करती हूँ। तुम जा सकती हो अपने पिता के पास।"

वह कक्ष से निकल तो पड़ी, पर लड़खड़ाती हुई। उसे ऐसा लगा जैसे उसके पग शक्ति खो चुके हैं। वह कैसे अतिथि कक्ष तक पहुँची, वही जानती होगी। किन्तु पहुँचते ही वृषपर्वा पूछ बैठा,—"कुछ पता चला ?"

शर्मिष्ठा उत्तर क्या देती ? इस समय वह स्वयं एक प्रश्न थी और उसी मुद्रा में खड़ी रही। मूक शर्मिष्ठा। वाणी विहीन शर्मिष्ठा, एकदम बदली हुई, विलक्षण लगी वह। वृषपर्वा के नेत्रों में दुःसह्य दिवास्वप्न तैरने लगे,—"तो क्यों नहीं कहती कि योजना विफल हुई, वह नीच बचकर निकल भागा।"

"मैं यह कहने नहीं आयी हूँ।"—उसने धीरे से कहा और चुप हो गयी।

वृषपर्वा की व्यग्रता उतावली हो रही थी,—"तब तुम क्या कहने आयी हो ?"

" कहने नहीं, वरन् कुछ पूछने आयी हूँ।"

"पूछने आयी हो ?" वह उसे देखता रह गया। विस्मय अपनी पराकाष्ठा पर था,—"क्या पूछना चाहती हो ?"

"यदि आपको राजसिंहासन या मुझमें से किसी एक को छोड़ना पड़े, तो आप किसे छोड़ना पसन्द करेंगे ?"—देवयानी का दिया प्रश्न ज्यों का त्यों शर्मिष्ठा ने उगल दिया। वृषपर्वा स्तम्भित रह गया। उसे लगा कि यह शर्मिष्ठा नहीं, वरन् शर्मिष्ठा के रूप में एक धधकती हुई आग है। पर इसे सुलगाया किसने ?—वह सोचता रह गया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह प्रश्न तुम्हारे मन में पैदा ही कैसे हुआ ?"—कुछ देर बाद वृषपर्वा ने पूछा।

"जीवन से सन्दर्भित अनेक प्रश्न परिस्थितियों से ही पैदा होते हैं, पिताजी। ··· पर बहुत सी परिस्थितियाँ बतायी नहीं जा सकती।"

"····बहुत से प्रश्न भी ऐसे होते हैं जिनके उत्तर दिये नहीं जा सकते ?"—वृषपर्वा बोला और उसका विवेक बदली हुई शर्मिष्ठा को तौलने लगा।

शर्मिष्ठा कुछ समय तक हतप्रभ रही। फिर उसके भीतर जैसे कोई वस्तु चमकी और वह चोट खायी मृगी की तरह भाग खड़ी हुई। वृषपर्वा ने रोकने की चेष्टा की, पर वह रुकी नहीं। "·· अरे अपने प्रश्न का उत्तर तो सुनती जाओ।"—वृषपर्वा स्वयं को सुधारने के लिए चिल्लाया।

"मुझे अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया।"—वह अब रुकना नहीं चाहती थी।

अंशुक के भीतर प्रस्वेद चुक-चुका आये थे। लगता है देवयानी का ज्वर उतर रहा था, वह उनींदी तल्प पर पड़ी थी। लगभग सो गयी थी, किन्तु ज्यों ही शर्मिष्ठा ने प्रवेश किया उसकी आँखें खुल गयीं। वह उसे सुनने के लिए आतुर थी।

"क्या उत्तर दिया पिताजी ने ?—उसने बड़ी व्यग्रता से पूछा।

पहले वह चुप रही। उसकी आँखें देवयानी पर टिक सी गयी। जैसे वह कहना चाह रही थी कि तुम्हारा अनुमान ठीक निकला, पर वह कैसे कहें ? संकोच उसकी जिह्वा पर भारी पड़ रहा था। वह धीरे से बोली,—"उन्होंने उत्तर तो नहीं दिया, पर मैंने उत्तर पा लिया।"

देवयानी खिलखिला पड़ी। अपनी सफलता पर नहीं, वरन् शर्मिष्ठा की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पराजय पर, उसके राजसी, अभिमान के ध्वस्त होने पर। "अब तो तुम्हें पता लग गया होगा कि तुम्हारी स्थिति क्या है।"—देवयानी ने मुस्कराते हुए कहा।

फिर भी वह शान्त थी, स्थिर थी, बन्द कमरे में जलते हुए दीप की तरह। वह एक ऐसे चौराहे पर खड़ी थी जिसके सभी रास्ते बन्द थे।

"क्या सोच रही हो शर्मिष्ठा ?"—देवयानी का स्वर सामान्य था।

"आज मैं जान पायी हूँ कि मेरी स्थिति क्या है ?"—शर्मिष्ठा क्षण भर के लिए रुकी,—"पर यह नहीं जान पायी कि ऐसी स्थिति क्यों है ?"

"हर राजपुत्री की यही स्थिति होती है शर्मिष्ठा।"—देवयानी मुस्करायी,—"जन्म लेते ही उसका भविष्य राजसत्ता को सौंप दिया जाता है।"—यह देवयानी नहीं, वरन् उसका युगबोध बोल रहा था।

इस सन्दर्भ में देवयानी ज्यों-ज्यों सोचती गयी, वह शर्मिष्ठा के प्रति सदय होती गयी। अब उसने उसे बड़े सहज भाव से अपने पास बैठाया। शर्मिष्ठा ने स्वयं अनुभव किया कि देवयानी का तिरस्कार आत्मीयता में रूपायित होने लगा है। उपेक्षा निकटता में बदल गयी है। उसे स्वयं इस परिवर्तन पर आश्चर्य था। आश्विन के मेघों की भाँति क्षण-क्षण परिवर्तित मनःस्थिति वाली नारी शर्मिष्ठा के जीवन में पहली बार आयी थी। उसका चिन्तन उसे समझने की चेष्टा करने लगा।

"मैं समझती हूँ कि मेरी परिवर्तित मनःस्थिति से तुम्हें आश्चर्य हुआ होगा ?"—देवयानी बोली और हँस पड़ी,—"मैंने रूक्षता का व्यवहार तुम्हारे राजसी अहं को चूर करने के लिए किया था। ···अब वह चूर हो चुका है, एकदम धूल धूसरित।"

शर्मिष्ठा लगभग तनाव मुक्त हो चुकी थी। उसने बड़े सहज भाव से पूछा,—"·· किन्तु मेरे राजसी अहं को धराशायी करने में आपका क्या लाभ है ?"

"लाभ !" देवयानी जोर से हँस पड़ी,—"तू नहीं जानती शर्मिष्ठा !····वैभव का अहं स्वयं ऐसी कारा है जिससे व्यक्ति कभी मुक्त नहीं होता और न कभी सर्वसाधारण के निकट आ पाता है। इस समय उस कारा की हर प्राचीर गिर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चुकी है और तुम मेरे निकट आ चुकी हो।"—देवयानी ने उसके दोनों हाथ अपने हाथ में ले लिये।

शर्मिष्ठा अपनी मुस्कराहट देवयानी की हँसी में घोलती जा रही थी। कक्ष का वातावरण हल्का होता जा रहा था।····फिर भी शर्मिष्ठा के भीतर एक प्रश्न खौल रहा था,—"आपने कैसे समझा कि मेरे पिता मुझे छोड़ सकते हैं?"

"मैंने यह तो नहीं समझा।"—देवयानी रहस्यमय ढंग से मुस्करायी,—"कभी कोई पिता अपनी पुत्री को छोड़ सकता है?"

"····तब आपने त्यागने के प्रश्न के सन्दर्भ में पिताजी के पास मुझे क्यों भेजा था?"

"मैंने तुम्हें पिता के पास नहीं, वरन् असुरराज के पास भेजा था।"-गम्भीरता ने अब उसकी मुस्कराहट सोख ली थी,—"सामान्यतः पिता के लिए पुत्री हर स्थिति में पुत्री ही रहती है, पर किसी राजा के लिए उसकी पुत्री प्रजा पहले होती है और पुत्री बाद में।····और हर राजा अपनी सत्ता की सुरक्षा के लिए प्रजा का बलिदान करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझता है।"

"··तो क्या मेरे पिता भी मेरा बलिदान कर सकते हैं?"—उसका आश्चर्य तुरन्त पूछ बैठा।

"तुम्हारे पिता नहीं, वरन् वृषपर्वा या यों कहो असुरराज तुम्हारा बलिदान कर सकता है।"—फिर उसकी मुद्रा अचानक बदली,—"क्यों मेरी बातें तुम्हें कड़ुवी लग रही हैं? सत्य तिक्त ही होता है शर्मिष्ठा!·· किन्तु सुनो, मेरे पिताजी तुम्हारे यहाँ से अप्रसन्न होकर क्यों लौट आये थे? केवल इसीलिए न कि तुम्हारे साथ उन्हें जल विहार करने नहीं दिया गया था।····और आज वृषपर्वा स्वयं तुम्हें लेकर आया है,··· समर्पित करने को तैयार है,··· क्योंकि वह जानता कि आचार्य की अप्रसन्नता उसके अस्तित्व के लिए घातक हो सकती है।"—रुग्ण देवयानी का आवेग पसीने-पसीने हो चला। उसने शिथिलता का अनुभव किया और साथ ही गर्मी का भी उसने ओढ़ा हुआ वस्त्र हटा दिया।

भावना के स्तर पर नारी की सारी सबलता बहुधा यथार्थ के धरातल पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निरीह हो जाती है। शर्मिष्ठा ने अनुभव किया कि वह नितान्त अकिंचन है, मात्र समर्पण की वस्तु। समर्पित होने के लिए ही उसका जन्म हुआ है। एक नारी की नियति भी इससे अधिक और क्या है ?...समर्पण ! समर्पण !! समर्पण !!!

'लेकिन नहीं।'—उसकी विचार शृंखला ने नया मोड़ लिया,—"नारी जब अपना समर्पण स्वयं करती है तब वह आत्मत्याग का चरम उत्कर्ष छू लेती है, किन्तु जब वह समर्पण के लिए विवश की जाती है, तब पतन की अतल गहराई से बाँध दी जाती है। एक ओर कैलाश के पवित्र शिखर की हिमता है और दूसरी ओर रौरव नरक की ज्वाला। एक ओर शिवत्व में समाहित होने की सम्भावना है दूसरी ओर अन्तहीन जलन का भय। शर्मिष्ठा इस समय दोनों के बीच त्रिशंकु की तरह लटक रही थी। क्या इससे निकल पाने की भी कोई सम्भावना है ?"—उसने बड़ी कातर दृष्टि से देवयानी की ओर देखा।

देवयानी को लगा कि शर्मिष्ठा की 'राजकुमारी' अब एक असहाय, निरावलम्ब डूबती नारी मात्र रह गयी है। उसे उबरने के लिए सहारा चाहिए। देवयानी ने उसे तिनका थमाते हुए कहा,—"मैं तुम्हारी जटिल स्थिति से अवगत हूँ।"—फिर वह रहस्यमय ढंग से मुस्करायी,—"मैं तुम्हें इस स्थिति से उबार सकती हूँ।.. किन्तु क्या तुम हमारा एक काम करोगी ?"

"शर्मिष्ठा कुछ बोल नहीं पायी।"

"काम कठिन है, तुम उसे करा सकती हो।...केवल तुम्हारा संकल्प चाहिए।"

शर्मिष्ठा अब भी चुप थी। उसकी सम्पूर्ण भंगिमा प्रश्नवाचक हो गयी थी।

देवयानी ने बात आगे बढ़ायी,—"उस नर्तकी की खोज मैं कच गया है। मैं चाहती हूँ कि उसका वध कर दिया जाय।" इतना कहकर भी वह कुछ और कहना चाहती थी, किन्तु उसी की दुष्ट मुस्कराहट में उसके शब्द उलझ कर रह गये।

"तुम भी उसका वध चाहती हो ?"—शर्मिष्ठा स्तम्भित रह गयी।

"क्या कोई और भी वध चाहता है ?"—देवयानी की जिज्ञासा बढ़ी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"हाँ ।"—शर्मिष्ठा बोल पड़ी । अचानक उसे धक्का सा लगा । पिता की कहीं बात याद हो आयी,—"देख कुछ खुलना नहीं ।"—वह अचानक बदल गयी,—"नहीं, नहीं । कोई नहीं । मैं गलत कह रही थी ।"

"लगता है, तू आपे में नहीं है या मुझसे कुछ छिपा रही है ।"

"नहीं, नहीं । मैं कुछ छिपा नहीं रही हूँ ।"

"तब तुमने पहले 'हाँ' क्यों कहा था ?"

शर्मिष्ठा स्वयं अपने बनाये जाल में फँस गयी थी । अब क्या कहती ? चुप रही । एकदम चुप ।

झूठ के लिए सोचना पड़ता है, शर्मिष्ठा !····सत्य के लिए नहीं ।" देवयानी जोर से हँसी,—"मैं समझती हूँ कि तू एक झूठ छिपाने के लिए दूसरा झूठ सोचने में उलझ गयी है ।"

"इसलिए उलझ गयी हूँ कि देखती हूँ,····मेरा और तुम्हारा सोचना लगभग एक सा है । ·· जब कि मुझे ऐसी कल्पना नहीं थी ।

"तुम्हारा तात्पर्य ?"

"···यही कि मैं भी उस युवक से घृणा करती हूँ । मेरे पिता भी उसका वध चाहते हैं ।" शर्मिष्ठा अपने को रोक नहीं पायी । वह एकदम खुल गयी ।

"क्या कहा ? ·· उस युवक को !"—देवयानी विस्फोटित हो उठी,—"तुम्हारे पिता युवक का वध करना चाहते हैं ? ··अरे जघन्य, नीच, कुत्सित !····तेरे मन में यह बात आयी कैसे । निकल जा मेरी आँखों के सामने से ।"—देवयानी आवेश में तल्प पर उठकर बैठ गयी । उसके नेत्रों से अग्निबाण छूटते रहे । वह क्रोध में ओठ चबाती हुई काँपती रही ।

शर्मिष्ठा उस अप्रत्याशित परिवर्तन पर आवाक् रह गयी । समझ नहीं पायी कि उसने गलती क्या की है ? वह दहते ज्वालामुखी के समक्ष खड़ी थी । लावा उस पर बरस रहा था । वह अपनी भूल पूछने की स्थिति में भी नहीं थी । चुपचाप सारा प्रहार सहती जा रही थी ।

किन्तु हर प्रहार की एक सीमा होती है । रुग्ण देवयानी चीखते-चीखते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हांफने सी लगी थी। आश्रम के कुछ और लोग दौड़कर द्वार पर आ गये थे। शर्मिष्ठा बाहर से ही नहीं भीतर से भी स्वयं को संभाले थी। उसने आये हुए लोगों को हटाया और उत्तेजित देवयानी को लिटाते हुए बड़ी आत्मीयता से बोली,—"बहन, भूल के लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।····आप विश्राम करें।"

"तू मुझे बहन भी कहती है और मेरा विनाश भी चाहती है।"—पसीने से लथपथ देवयानी फनफनायी,—"तू मेरे वध की आकांक्षी भी है और विश्राम करने की सलाह भी देती है।"

"आप विश्वास करें, मैंने स्वप्न में भी आपके वध की बात नहीं सोची है।" —शर्मिष्ठा अबोध बालक की तरह सफाई लेने लगी।

देवयानी चाहकर भी जैसे कुछ कह नहीं पा रही थी। वह मात्र ओठ चबाती रह गयी। कुछ देर बाद वह स्वयं बड़बड़ाने लगी, उसका अन्तर खुलने लगा,— "कच का वध चाहेगी और मेरी कुशलता भी।····अरे दुष्ट !····तू अब तक नहीं समझ पायी कि कच का वध मेरा ही वध होगा।···और मेरे वध का अर्थ है असुर अस्तित्व का वध।"—इस बार देवयानी के नेत्रों में भभकने लगे दो धूमकेतु, अनिष्टकारी नक्षत्र। शर्मिष्ठा भयाक्रान्त थी। उसके मन में आशंकाओं का विनाशक प्रभंजन उठ पड़ा था। वह भीतर-ही-भीतर झकझोर दी गयी थी। वह सोचने लगी यदि कच का वध हो गया होगा, तब क्या होगा ?··· अभी तो पिताजी भी द्विविधा में हैं और बात भी फूट गयी है।

मौन खड़ी शर्मिष्ठा अब अन्तर्मुखी थी। कच का सिर कटा रक्त उगलता धड़ उसके मन पर उभरने लगा था। वह राहू की तरह उसे ग्रसने के लिए बढ़ा चला आ रहा था। उसे लगा जैसे वह उसे चीर कर देवयानी के समक्ष भी निकल जायेगा। वह एकदम घबरा उठी। उसके दोनों हाथ छाती पर बँध गये। अब उसमें देवयानी तक को देखने का साहस नहीं था। उसकी पलकें मुंदने लगीं। एक घने अँधेरे से घिर गयी। अब वह राहू और विशाल होकर उसके सामने था। उससे रक्त का फौव्वारा छूटता जा रहा था। शर्मिष्ठा भींगती रही, भींगती रही।····और अन्त में डूबने लगी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब वह खड़ी न रह सकी। वहीं धरती पर बैठ गयी, अन्यथा काँप कर गिर जाती। "यहाँ बैठ कर क्या करेगी, अभी जा अपने पिता से पूछ, उसने कच के वध की कोई योजना तो नहीं बनायी है ?"—देवयानी का क्रोध व्यग्र हो उठा।

शर्मिष्ठा चुप थी। विस्फारित नेत्रों से उसे देखती जा रही थी। "तू देख क्या रही है ? जाती क्यों नहीं ?"

"क्षमा करें देवि ! मैं कुछ समझ नहीं पा रही हूँ।"—याचक जैसी निरीहता थी, शर्मिष्ठा के स्वर में,—"आप किसका वध चाहती हैं ?"

"उस नर्तकी का, देवांगना का।"—देवयानी जैसे झल्ला पड़ी।

"उस नर्तकी का ?"—शर्मिष्ठा अब भी स्तब्ध थी। उसके सामने अचानक पटाक्षेप हो गया था। अब राहू लुप्त हो गया था, एकदम लुप्त। उसके स्थान पर थी खिलखिलाती हुई जयन्ती। आचार्य को सुरापान कराती हुई जयन्ती। अनेक मुद्राओं में उसका मांसल सौन्दर्य उसके मन पर उभरता और मिटता रहा। ....आखिर देवयानी उसका वध क्यों चाहती है ? वह सोचने लगी। उलझन का कोई छोर न पाकर वह धीरे से बोली—"....हाँ, आचार्य के बहुत निकट पहुँचने का प्रयत्न कर रही थी।"

"आचार्य के निकट पहुँचे या भाड़ में जाये।"—देवयानी पुनः झल्लायी,—"मैंने जो कहा है, तू जाकर अपने पिता से पूछ।....यदि उसका बाल भी बाँका हुआ तो ठीक नहीं होगा।....जा, अभी चली जा, अन्यथा वृषपर्वा कुछ कर बैठेगा।"

शर्मिष्ठा के लिए क्षण भर भी रुकना अब सम्भव नहीं था। वह चल पड़ी। द्वार के बाहर भी निकल आयी थी कि देवयानी ने उसे पुनः बुलाया,—"मैं तेरी मनःस्थिति समझ रही हूँ। तुझे वस्तुस्थिति का जरा भी ज्ञान नहीं है, व्यर्थ ही तूने राजकुल में जन्म लिया।....तू अब तक उलझन में पड़ी है।"—पल भर में ही देवयानी की भंगिमा प्रश्नवाचक हो गयी,—"....तू यह जानना चाहती है न कि मैं उस नर्तकी का वध क्यों चाहती हूँ ?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मौन रहने पर भी शर्मिष्ठा की मुद्रा 'हाँ' कह बैठी।

"....तो सुनो, मैं अपने और कच के बीच में किसी तीसरे को आने देना नहीं चाहती।....मैं यह बात इसलिए भी स्पष्ट कर देना चाहती हूँ कि तू और तेरा पिता भी, हम दोनों के बीच आने का कभी दुःसाहस न करें।"—पहली बार देवयानी अपने प्रेम-सन्दर्भ में इतनी खुली थी। उसे यदि शर्मिष्ठा को सावधान न करना होता, तो शायद इस स्नेहिल सम्बन्ध को वह अपने मन में ही समेटे रहती।

शर्मिष्ठा जब बाहर निकली मध्याह्न का सूर्य आकाश में चमक रहा था।

आश्रम में भोजन सामूहिक ही होता था। ब्रह्मचारी आकर असुरराज को सूचित कर गया था, पर वे अभी प्रवज्ञा से मंत्रणा कर रहे थे। शायद वह शर्मिष्ठा की प्रतीक्षा में थे, कि एक ब्रह्मचारी पुनः आ पहुँचा,—"आचार्य भोजन के लिए उठ चुके हैं।"—उसने कहा।

अब एक क्षण भी रुकना आचार्य की अवज्ञा होती। उस ब्रह्मचारी के साथ ही वृषपर्वा कुटी से निकल पड़ा, पीछे-पीछे प्रवज्ञा भी।....दूर से ही शर्मिष्ठा आती दिखायी दी। वह मन्द होते हुए भी भीतर से आक्रान्त थी, मन्दाक्रान्ता छन्द में अ-शान्त रस की भंगिमा जैसी।

वृषपर्वा ने पहली दृष्टि में ही उसे पढ़ने की चेष्टा की, पर वह अपनी ही आकुलता के कारण सफल न हो सका। साथ में ब्रह्मचारी था, कुछ पूछ पाना भी सम्भव नहीं। शर्मिष्ठा के निकट आते ही वह मात्र इतना बोला,—"देवयानी का ज्वर कैसा है?"

"ठीक ही है।"—बड़ी दबी जबान में उसने कहा और पिता के साथ हो ली। उन्मुक्त वातावरण में आगे बढ़ते हुए भी जैसे वे घुटे जा रहे थे।

इस मास भर मध्याह्न का भोजन आंवले के वृक्ष के नीचे प्रशस्त चौरे पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होता था। आचार्य के पार्श्व में ही वृषपर्वा का आसन था और उसके बगल में प्रवज्ञा का। वृषपर्वा को विश्वास था कि आचार्य अवश्य उससे विलम्ब का कारण पूछेंगे, पर उन्होंने उसकी तरफ देखा तक नहीं। वह चुपचाप आकर बैठ गया। शर्मिष्ठा शतपर्वा के पास चली गयी। भोजन के पूर्व का मंत्र—"ॐ सहनाववतु सहनौ भुनक्तु ..."—सम्वेत स्वर में आरम्भ हुआ।

वृषपर्वा के भी ओठ हिल रहे थे, पर वह निःशब्द था। उसकी व्यग्रता तो मर्क और त्वष्टा को निहार रही थी, जो उसकी ओर से लगभग मुँह फेर बैठे थे। मंत्र समाप्त होने के बाद भी वह उन्हें देखता रहा। शर्मिष्ठा अपने स्थान से ही पिता के साथ उन दोनों पर रह रहकर दृष्टि डालती रही और लगभग इस निष्कर्ष पर पहुँच गयी थी कि कच मारा नहीं गया है। उसका ज्वार थमने लगा था।...किन्तु इसी निष्कर्ष पर उसके पिता का ज्वार उफान मार रहा था। वह सोचता बैठा रहा। लोग भोजन आरम्भ कर चुके थे। "क्या बात है राजन्? तुमने भोजन आरम्भ नहीं किया; स्वास्थ्य तो ठीक है?"

"ठीक है।"—वह हड़बड़ाकर जैसे जाग उठा और एकदम खाने पर टूटा। आचार्य ने अनुभव से भींगी एक गम्भीर दृष्टि उस पर डाली और फिर मुस्करा पड़े,—"देखने से तो स्वस्थ ही हो, पर मन स्वस्थ नहीं लगता।"

वृषपर्वा कुछ नहीं बोला। जलपात्र मुंह से लगा घूंट के बाद घूंट शुष्क कण्ठ के नीचे उतारने लगा।

"सत्य की कसौटी पर चढ़ने के पहले असत्य मन की यही गति होती है।"—आचार्य का यह सुक्त वाक्य उनकी हँसी के साथ ही वातावरण पर बिखर गया। इस बार मर्क और त्वष्टा ने भी वृषपर्वा पर एक दृष्टि डाली; किन्तु असुरराज आचार्य के कथन की अनुगूँज में ही खोया रहा। शर्मिष्ठा बोलना चाहती थी कि सत्य और असत्य का निर्णय तो अभी भविष्य के गर्भ में है महाराज।... पर वह भी पिता की ओर देखकर चुप रह गयी।

वृषपर्वा की घुटन भरी चुप्पी धीरे-धीरे पूरे चबूतरे पर फैल गयी थी। लोग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अप्रत्याशित रूप से मौन थे। हस्त प्रक्षालन करते हुए आचार्य ने पुनः वृषपर्वा को सम्बोधित करते हुए कहा,—"अभी तक कच नहीं लौटा।"

"यही तो मैं भी सोच रहा हूँ।"—वृषपर्वा ने कहा और एक बार फिर शुक्र पुत्रों की ओर दृष्टि डाली और अपनी व्यग्रता की अग्नि पर मिट्टी डालते हुए सहज भाव से बोला,—"जितना हम लोग सोचते हैं, कार्य उतना सरल नहीं है।"

"क्यों ?"

"हो सकता है, वह आना न चाहती हो ?"—वही पुरानी शंका वृषपर्वा ने पुनः उठायी।

"हूँ।"—जैसे सिंह गुर्राया,—"... यदि यह बात होगी तो उसके पिता और भाई ही नहीं, सारे देवता तुम्हारे बन्दी होंगे।....तब वह शशक शिशु की तरह दौड़ी चली आयेगी। शुक्र की आकृति पर दुर्वासा की छाया उतर आयी। वे सीधे अपनी कुटी की ओर चले गये।"

"यदि न आयें, तो भी उन निकम्मों को पकड़ ले आओ।"—अपने कक्ष के निकट आते ही वृषपर्वा प्रवज्ञा पर झल्लाया। उसका स्पष्ट संकेत मर्क और त्वष्टा की ओर था। प्रवज्ञा आज्ञा पालन के लिए मुड़ चला।

वृषपर्वा अपने कक्ष की ओर लपका चला जा रहा था। शर्मिष्ठा कुछ पीछे छूट गयी। शायद वह पुनः देवयानी के यहाँ जाने की सोच रही हो कि वृषपर्वा ने उसे कक्ष में आने का संकेत किया। वह उधर लपकी। उसे भोजन के समय से ही अपने पिता की उद्वेलित मानसिकता का आभास हो गया था।

"सुना तुमने आचार्य को ?"—शर्मिष्ठा के कक्ष में पहुँचते ही वृषपर्वा बोला,—"यदि उसका वध नहीं हुआ होगा, तो अनर्थ हो जायेगा। उसे किसी भी स्थिति में आश्रम में उपस्थित नहीं होने देना है।"

"उसे किसी भी स्थिति में आश्रम में उपस्थित करना ही पड़ेगा।"—इतने गम्भीर स्वर में शर्मिष्ठा कभी अपने पिता के समक्ष नहीं बोली थी।

"यह तुम क्या कह रही हो शर्मिष्ठा।"—वृषपर्वा चकित था, फिर भी बोलता रहा,—उसके उपस्थित होने से मैं झूठा सिद्ध हो जाऊँगा।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"…और उसके उपस्थित न होने से सम्पूर्ण असुर समाज ज्वालामुखी पर खड़ा हो जायेगा।"

"ज्वालामुखी ?"—वह शर्मिष्ठा की ओर देखता अवाक रह गया। उसे लगा शर्मिष्ठा की दोनों आँखें सद्य बुझे दीप की तरह धुआँ उगल रही है। वह समझ नहीं पाया कि कैसा ज्वालामुखी। कहाँ है ज्वालामुखी ? कौन है ज्वालामुखी ? इस सन्दर्भ में उसकी आकुलता पूछ ही बैठी—"तुम्हारा तात्पर्य क्या है ?"

उसने कुछ संकेतों से और कुछ शब्दों का सहारा लेते हुए बताया कि उसकी ज्वालामुखी देवयानी ही है ? उसने यह भी कहा,—"उसका कहना है कि यदि कच का वध हुआ तो वह असुरों को कच्चा चबा जायेगी।"

"क्या कहा कच्चा चबा जायेगी ?"—वृषपर्वा एकदम भभक पड़ा,—"हमारे टुकड़ों पर जीने वाले आचार्य की पुत्री का यह दंभ !…अभी वृषपर्वा के क्रोध से उसका पाला नहीं पला है।"

"क्रोध स्वयं का जितना अहित करता है उतना दूसरों का नहीं।…शान्त होइए तात !"—पुत्री की सहजता ने पिता को प्रकृतिस्थ करने की चेष्टा की,—"और सोचिए, हमारे टुकड़ों से वे जी रहे हैं या उनकी कृपा से हम।" वृषपर्वा अपने ओठ चबाता रहा, फिर भी कुछ सोचने लगा। शर्मिष्ठा बोलती गयी,—"आप जी ही नहीं रहे हैं।… आपका सिंहासन भी जी रहा है, ।…वह सिंहासन जी रहा है जिसके लिए आप मुझे भी छोड़ने के लिए तैयार हैं।"

वृषपर्वा बिल्कुल बुझ चुका था, उसपर घड़ों पानी पड़ चुका था। कदाचित वह खड़ा नहीं रह सकता था, वह एकदम तल्प पर बैठ गया। सामने शर्मिष्ठा खड़ी थी। उसे लगा, उसका सारा व्यक्तित्व एक धधकती ज्वाला में बदलता जा रहा था। शायद इससे अच्छा अवसर उसे मुझसे बदला लेने का नहीं मिलेगा। वृषपर्वा ने अनुभव किया कि हिम सी शीतल नारी भी प्रतिरोध में धधकने लगती है। इस ताप से वह मुरझाता चला गया और कुछ क्षणों बाद ऐसी स्थिति आयी कि उसने नितान्त सामान्य भाव से पूछा,—"देवयानी को कैसे पता चला कि मैं कच का वध करना चाहता हूँ ?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शर्मिष्ठा चुप रही।

"क्या तुमने इस सम्बन्ध में उसे बताया है?"

"कुछ प्रश्न ऐसे होते हैं जिनका उत्तर दिया नहीं जा सकता।"—शर्मिष्ठा यद्यपि सहज भाव से बोली थी, पर वृषपर्वा पर जैसे पहाड़ टूट पड़ा। उसी का वाक्य उसी के विरुद्ध खड्गहस्त होगा, इसकी उसे कल्पना भी नहीं थी। वह लगभग चूर होने की स्थिति में था। उसने बड़े प्रयत्न से स्वयं को बटोरा और बड़ी निरीहता से बोला—"बेटी, तू अपने पिता पर ही प्रहार कर रही है?"

"मैंने तो कुछ नहीं किया तात! केवल अपनी परिस्थिति स्पष्ट की है।"—उसने अपने कथन पर पुनः विचार किया और अनुभव किया पिता के आघात का। एक मुस्कराहट उसके अधरों पर पुनः उभरी,—"....जिस सन्दर्भ में आप सोच रहे हैं, उस सन्दर्भ में यह वाक्य पुत्री द्वारा पिता के लिए नहीं, वरन् एक प्रजा द्वारा राजा के लिए कहा गया है।"

वृषपर्वा की तर्कना निःशेष हो शिथिल हो गयी थी। वह तल्प पर लेट गया।....इसी बीच प्रवज्ञा ने सूचित किया कि वह दोनों आ रहे हैं। वह एकदम उठ बैठा,—"उन्हें देखकर मात्र इतना ही उनके मुख से निकला,—"क्या हुआ?"

"काम हो नहीं सका।"—मर्क बोला। उसके स्वर में असफलता का पश्चाद् नहीं, वरन अलगाव की विषमता थी।

वृषपर्वा की मूक दृष्टि उन्हें टटोलती रही। गिरगिटान रंग बदल चुके थे। फिर भी वह कर क्या सकते थे? क्रोध पीता हुआ बोला,—"क्यों नहीं हो सका काम?"

"....क्योंकि हम उसका काम नहीं कर सकते थे?"—इस बार त्वष्टा बोला।

यह सब कह क्या रहे हैं? असुरराज अवाक हो सोचता रहा। लगभग इसी मनःस्थिति में शर्मिष्ठा और प्रवज्ञा भी थे।

संक्षिप्त अन्तराल के बाद त्वष्टा ने ही बात आगे बढ़ाई,—"....उसने कहा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

था कि मैं मरने को तैयार हूँ यदि आप लोग उस नर्तकी को आचार्य के लिए खोज लायें। ·· हम भला उसे कहाँ खोजते ?"

"आप उसे मारने गये थे या मरने के लिए तैयार करने ?"—वृषपर्वा झल्लाया,—"आप जा सकते हैं।"— दोनों चुपचाप चले गये।

निराशा का घना अन्धकार असुरराज को जैसे घेरने लगा। उसे लगा राजभवन के शिखर टूट-टूटकर गिर रहे हैं। धूल का एक अम्बार सा उड़ रहा है। उसने आँखें बन्द कर लीं। फिर भी भीतर कुछ गड़ता गया, गड़ता गया। अचानक उसके मुख से निकल पड़ा,—"बिकने वाले लोग बार-बार बिकते हैं। ····जिसे हम खरीदते हैं, उन्हें दूसरे भी खरीद सकते हैं। ····तू ठीक कहती थी शर्मिष्ठा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

□□□

पशु उद्यान में कई दिनों से छायी उदासी उस समय कोलाहल में बदल गयी जब अचानक आज देवयानी ने प्रवेश किया। पशुओं की संवेदनशीलता से वह अच्छी तरह परिचित थी, फिर भी अपनी रुग्णता के कारण वह आ नहीं पा रही थी। आज ज्वर नहीं है। वह टहलती चली आयी है। पक्षी चहकने लगे हैं। हरिणियाँ चौकड़ी भरती उसे चारों ओर से घेरने की चेष्टा कर रही हैं। शशक झुण्ड के झुण्ड चले आ रहे हैं। मछलियाँ पुष्करिणी में कल्लोल कर उठी हैं। फिर भी वह प्रसन्न नहीं है, कच अभी तक लौटा नहीं है। सबेरे का सूर्य ताल में उसे उबलता दिखायी दिया।

यों शर्मिष्ठा ने उसे बता दिया था कि पिता जी कच के व्यवहार एवं उदण्डता से अत्यधिक रुष्ट थे। निश्चित ही वे उसे दण्डित करना चाहते थे, पर वध की उनकी कोई योजना नहीं थी और न है। फिर भी कच अभी तक नहीं लौटा।

उन मूक पशुओं की सारी उदासी अपने मन में समेट कर वह उद्यान से निकल आयी। सामने यज्ञशाला से आचार्य अग्निहोत्र समाप्त कर लौट रहे थे। "स्वास्थ्य कैसा है ?"—उन्होंने पूछा तो सही, पर उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वे अपनी पर्णकुटी की ओर बढ़ गये। अपनी पुत्री की ऐसी उपेक्षा शायद ही उन्होंने कभी की हो। वस्तुत: उनके अन्तर पर जयन्ती की छाया दूनी होती जा रही थी। उन्हें कहीं कुछ दिखायी नहीं दे रहा था और न वह कुछ देखना चाहते थे। देवयानी ! जिसकी हर इच्छा का उन्होंने आदर किया। देवयानी ! जो उन्हें प्राणों से भी प्रिय थी, आज वे उससे भी कतरा कर चले गये। वासना मनुष्य को अन्धा तो बना ही देती है, उसे आत्म केन्द्रित भी कर देती है। अपने मन में उभरती जयन्ती को लेकर आचार्य चुप-चाप मृगचर्म पर लेट गये। परम्परानुसार दो ब्रह्मचारियों ने पैर दबाने आरम्भ किये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"क्या तुम बता सकते हो कि कच अभी तक क्यों नहीं आया ?" अन्तर की छटपटाती वासना बाहर निकल आयी।

ब्रह्मचारी क्या कहते ? .. किन्तु उपेक्षा भाव से घायल देवयानी अब तक द्वार पर पहुँच चुकी थी। "ये क्या बता सकते हैं कि कच क्यों नहीं आया ?"—उसने कहा। देवयानी की इस अप्रत्याशित उपस्थिति को आचार्य देखते रह गये। "तू यहाँ चली आयी देवयानी ?"—उन्होंने कहा।

"हाँ,....इसलिए कि आपने मेरे स्वास्थ्य के सम्बन्ध में पूछा तो था, पर मेरा उत्तर सुने बिना ही आप चले आये थे।....वही उत्तर देने आयी हूँ।"—एक कुटिल मुस्कराहट थी देवयानी के अधरों में। उसकी मुस्कराहट शायद यह कह रही थी कि मेरे लिए आपका यह उपेक्षा भाव उचित नहीं था।

पिता और पुत्री के बीच यह अनहोनी परिस्थिति दोनों के लिए असह्य थी, पर दोनों इसे विचित्र मानसिकता में स्वीकार रहे थे। दोनों कच के लिए चिन्तित थे। अन्तर बस इतना था कि एक चिन्ता मात्र कच तक सीमित थी और दूसरे की चिन्ता कच से होती हुई जयन्ती से लिपट जाती थी।....पर दोनों एक दूसरे से स्वयं को छिपा रहे थे। मुखौटों के भीतर छिपा हुआ यह यथार्थ दोनों से दूर रहा हो, पर आश्रम से दूर नहीं था। ब्रह्मचारी भी सब कुछ समझते थे और आनन्द ले रहे थे।

देवयानी चुप थी। उसका मौन बहुत कुछ कह रहा था। आचार्य उसे समझ भी रहे थे और डूबते जा रहे थे कि अचानक कच ने प्रवेश किया। आचार्य के चरण छुए। "अरे, तुम आ गये ?... हम लोग अभी तुम्हारे सम्बन्ध में ही सोच रहे थे।"—देवयानी भी खिल उठी। उसका प्रसन्न मन कह रहा था,—"हमें हर क्षण तुम्हारी ही चिन्ता थी।"

देवयानी अपनी प्रसन्नता को बटोरे ही रही, पर आचार्य अपनी जिज्ञासा रोक न सके,—"क्या जयन्ती नहीं आयी ?"—वे पूछ बैठे।

"जी नहीं।"—कच ने कहा। आचार्य की आकृति का रंग क्षण भर में बदल गया। काम-कुपित होकर भभकने की स्थिति में था कि कच ने संभाला—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

" .. वह तो आना चाहती थी, किन्तु ...।"—वह पल भर के लिए रुका होगा कि आचार्य बोले,—"... क्या उसके पिता ने उसे रोक लिया।"

"नहीं महाराज।...वे तो अपना भाग्य सराहते थे कि आपने इसे स्वीकार तो किया ?"—कहते-कहते कच के मानस में इन्द्र का राजलोलुप व्यक्तित्व उभर आया।

"तब वह क्यों नहीं आयी ?"—आचार्य ने पूछा। कच उत्तर देने ही जा रहा था कि मर्क और त्वष्टा द्वार पर खड़े दिखायी दिये। वे भयातुर थे। कहीं यह आचार्य से मेरे सम्बन्ध में कुछ कह न दे ? आशंका से पीछे पड़े उन निरीहों की आकृति देख कर कच के अधरों से एक मुस्कराहट छूटी और हँसी में बदल गयी। आचार्य ने समझा कोई ऐसी बात है जिसे कच इन लोगों के सामने कहना नहीं चाहता। उन्होंने बड़ी रुक्षता से कहा—"तुम लोग जा सकते हो ?"

उन्हीं के साथ देवयानी भी हट गयी। "हाँ, क्या कह रहे थे।"—आचार्य बड़ी उतावली में थे। कच चुप था। वह सोच रहा था कि इस बूढ़े पर जयन्ती एक दम छा गयी है। हमारा काम तो हो जायेगा, पर ऐसे वासना लोलुप यदि आचार्य रहेंगे तो इस आर्यावर्त का क्या होगा ?"

"क्या सोचने लगे तुम ?"—आचार्य ने आँखें उसकी आकृति पर गड़ा कर कहा।

"सोचता हूँ, उसकी बातें कैसे कहूँ ?"

"....बिल्कुल निर्भय हो कच ? तुम यदि मेरे सामने नहीं कह सकते, तो किसके सामने कहोगे ?"—आचार्य ने सोचा कि पैर दबा रहे इन ब्रह्मचारियों के समक्ष कच कुछ कहने से हिचक रहा है। उन्होंने उन्हें भी हटा दिया। अब कच ने बड़ी नाटकीयता से कहा,—"वह कह रही थी कि आश्रम में जब तक असुरराज रहेगा, मैं नहीं चलूँगी। इसके लिए आप मेरी ओर से आचार्य जी से क्षमा माँग लीजिएगा।"

"आखिर असुरराज से उसका क्या सम्बन्ध ?"—आचार्य बोले,—"क्या वह उससे डरती है ?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"यह तो मैं नहीं जानता ?"

"क्या उसने उसके साथ कोई अभद्रता की ?"

"यह तो वही बता सकती है ।"

"क्या तुमने उससे पूछा नहीं ?"

"उसके पिता और अनुज के समक्ष परपुरुष की अभद्रता के सम्बन्ध में पूछना क्या उचित था ?"

आचार्य कुछ सोचने लगे । एक क्षण बाद वे पुनः बोले,—"तुम कह रहे थे कि उसके मेरे यहाँ रहने पर उन्हें प्रसन्नता है ।"

"हाँ, महाराज ! वे उसे तो आपको समर्पित करना चाहते हैं, यदि आप स्वीकार करें ?"— बूढ़े की बाँछें खिल गयीं । उसके दाढ़ी और मूँछों के जंगल में वसन्त आ गया,—"शायद वे इसलिए समर्पित करना चाहते हैं कि मैंने उन्हें असुरराज की कारा से मुक्ति दिलायी है ।"

"यदि यह बात होती, तो वे असुरराज के अनुगृहीत होते ।··· पर वे आपसे और विशेषकर आपके गुणों से प्रभावित हैं ।"

"बड़े भले हैं वे लोग ?"—जैसे आचार्य की आत्मा बोल रही हो,— "भगवान उनका कल्याण करे ।"

मानो कच दिवा स्वप्न देखने लगा हो । उसे लगा इन्द्र और शची दोनों को यह बूढ़ा आशीर्वाद दे रहा है । उसके मुख से निकल पड़ा,—"यदि आपकी कृपा होगी तो अवश्य उनका कल्याण होगा ।"

बूढ़ा हँस पड़ा ।

कच जब बाहर निकला, मर्क और त्वष्टा द्वार के निकट दीवार से सटे दिखायी दिये । कच को हँसी आ गयी । वह मर्क का हाथ पकड़ कर खींचते हुए आगे बढ़ा,—"तुम लोग यहाँ क्या कर रहे थे ?"—उसने पूछा ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"देख रहा था कि तुम हमारे विरुद्ध आचार्य से कुछ कहते तो नहीं ?"

कच आगे बढ़ता हुआ जोर से हँस पड़ा,—"लगता है, तुम लोगों ने अब तक मुझे पहचाना नहीं है।"—कच का स्वर ऊर्ध्वसित हुआ,—"मैं अथर्वा का वंशज हूँ। देव पुत्र हूँ। मैं भला तुम देव-पुत्रों के विरुद्ध कुछ कहूँगा ?... तुम्हें विश्वास है ?"—कच क्षणभर रुककर फिर बोला,—"यदि तुम प्रहार भी करते, और मेरे प्राण किसी तरह शेष भी रह जाते, फिर भी मैं किसी को न बताता कि मुझे तुमने मारा है, क्योंकि यह संकट की घड़ी आपस में टकराने की नहीं, वरन् असुरों से अपने अस्तित्व की रक्षा करने की है।....हम इतिहास के एक गम्भीर मोड़ पर है। भविष्य हमारी शक्ति से अधिक हमारे नीयत का आकांक्षी है।"—यह कच का नहीं, उसकी कूटनीति का भाषण था वह दोनों की आकृतियों पर सुगबुगायी पश्चाताप की लालिमा खोजने लगा। "चलो कोई बात नहीं, यह तो होता ही रहता है।"—कच मुँह की खाये मल्ल की भाँति उसकी धूल झाड़ने लगा। फिर एकदम बदली हुई मुद्रा से पूछ बैठा,—"वह कहाँ चली गयी ?.... तुम्हारे साथ ही तो निकली थी। दोनों ने तात्पर्य समझ लिया और दूर रसाल के नीचे देवयानी की कुटी की ओर संकेत किया।"

कच जब देवयानी के कक्ष में पहुँचा वह खिल उठी।" मैं तुम्हारी प्रतीक्षा ही कर रही थी। सोच रही थी कि तुम अवश्य आओगे।"—उसने कहा।

"एक पालतू पशु घूम फिर कर अपने खूँटे पर ही तो आयेगा, जायेगा कहाँ ?"—कच मुस्कराते हुए बोला, पर देवयानी खिलखिला पड़ी। वह तल्प से उठी और मादक बयार में मालती लता सी झूमती अपनी दोनों बाँहें कच के गले में डालकर बोली,—"....तो मैं समझूँ कि मैंने अपने पाल्य को पा लिया ?"

"तुम कुछ भी सोचने के लिए स्वतंत्र हो।"—कच ने उसकी बाँहे हटाते हुए कहा,—"...लेकिन यह अवश्य सोचना कि मैं ब्रह्मचारी हूँ।"

देवयानी को झटका सा लगा। वह धीरे से हटकर तल्प पर बैठ गयी। वह उस मछुए की मानसिक स्थिति में थी जो बार-बार 'कनक मीन' को फँसाने की चेष्टा करता है और हर बार वह फटककर जल में चली जाती है।... कच

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

को एकटक देखते हुए वह कुछ सोचती रही। फिर बोली,—"उस नर्तकी का पता चला ?"

"हाँ।" कच ने मुस्कराते हुए कहा।

"... तो क्या वह नहीं आयी ?"

"नहीं,... और न आयेगी।"

"सच,"—देवयानी विहँस पड़ी, मानो ब्राह्ममुहूर्त को चीरकर उषा फट पड़ी हो, किन्तु शीघ्र ही उस पर मेघ छा गये जब कच ने यह बताया कि वह तब तक नहीं आना चाहती जब तक असुरराज यहाँ है।

"... तब आज ही आचार्य असुरराज को हटा देंगे।"—देवयानी आचार्य की पुत्री होते हुए भी एक नारी थी। अपने पिता के भीतर बैठने की उसमें कच की अपेक्षा अधिक सामर्थ्य थी।"—वह बोल पड़ी,—"जब तक नारी पुरुष की विवशता है तब तक वह पुरुष मनुष्य बना रहता है, जब वह उसकी बुभुक्षा बन जाती है तब वह असुर हो जाता है।"

अपने पिता पर इतना खुलकर देवयानी ने कभी अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की थी। कच हँस पड़ा—"क्या यह शाश्वत वचन पुरुष पर ही लागू होता है या नारी पर भी ?"

इस बार देवयानी मुस्करा कर रह गयी। वह अपनी झेंप मिटाते हुए बोली—"जब पशु को मनुष्य की बुद्धि मिल जाती है तब वह इसी प्रकार के उटपटांग प्रश्न करता है।"—और हँसने लगी।

फिर थोड़ी देर बाद जैसे उसे कुछ याद हो आया, उसने गम्भीर हो पूछा—"जिस तरह तुम मुझसे कहते हो कि मैं ब्रह्मचारी हूँ, कभी उस नर्तकी से भी कहा है ?"

"हाँ, कई बार कह चुका हूँ।"—कच के उत्तर में बड़ी सहजता थी।

"इसका तात्पर्य है कि तुम्हारे ब्रह्मचर्य की दीवार से वह कई बार टकरा चुकी है।"

"यह तो मैं नहीं जानता।" अनभिज्ञता से अधिक उसके कथन में बाल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सुलभ सरलता थी।....पर देवयानी सब कुछ समझ गयी। उसकी आशंका गाढ़ी होने लगी। उसे लगा कि उसके प्रेम की भित्ति बीच से चरमरा रही है। उसका कच कभी भी उससे छीना जा सकता है। उसकी आकृति आरक्त होने लगी। वह उसी मानसिकता में झुंझलायी,—"....तुम आचार्य की सेवा में जाओ। वह तुम्हारे लिए बड़े व्यग्र थे।"

"....और तुम व्यग्र नहीं थी।"

"....बकवास मत करो।"..तुम मेरे पाल्य हो। मेरी अवज्ञा का फल जानते हो?"

"जानता हूँ।"—मुस्कराता हुआ कच कक्ष से निकल पड़ा।

चिनगारी लग गयी थी। देवयानी सुलगती हुई वृषपर्वा के पास पहुँची। वह कहने के लिए बहुत कुछ लेकर गयी थी, पर वहाँ पहुँच कर वह कुछ बोल नहीं पायी। वह स्वयं में ही जैसे उलझ गयी।

वृषपर्वा था। प्रवज्ञा था और थी शर्मिष्ठा। देवयानी को देख कर सबके सब खड़े हो गये और बड़ी आवभगत के बाद निकट के मंचक पर बैठाया। "आखिर आपने यह अचानक कृपा कैसे की?"—वृषपर्वा नितान्त औपचारिक ढंग से बोला।

देवयानी द्विविधा में थी कि कैसे कहे। उसकी ईषद आरक्त आकृति से आन्तरिक जलन झांकने लगी थी। "आप से कुछ बातें करनी हैं?"—वह मात्र इतना बोल सकी थी।

"तो कहिए। मेरे योग्य सेवा बताइए।"—अब भी देवयानी चुप थी। उसे लगा कि यह प्रवज्ञा जी के सामने कुछ कहना नहीं चाहती। "... कहिए तो प्रवज्ञा जी को हटा दूँ। रह गयी शर्मिष्ठा वह तो आपकी सेविका ही है।"

"नहीं, नहीं। आप किसी को मत हटाइए।"—वह लगभग बड़बड़ाई—"आप जानते हैं, कच आ गया है।"

"हाँ सूचना मिली है।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"....तब इसकी भी सूचना मिली होगी कि वह नागिन तभी आश्रम में आयेगी, जब आप को यहाँ से हटा दिया जायेगा।"

"हाँ कुछ इस तरह की बातें भी मालूम हुई हैं, पर अभी तक किसी ने कुछ स्पष्ट कहा नहीं है।"—वृषपर्वा की गम्भीरता बढ़ती गयी,—"लगता है, मुझे आज या कल में आश्रम छोड़ देना होगा।"

"तो क्या आप चले जायेंगे?"—देवयानी की आकुलता बोली,—"मैं तो चाहती हूँ कि आप मत जाइए।...उसे मैं आश्रम में प्रवेश करने देना नहीं चाहती।

"किन्तु यदि आचार्य ने कहा तो क्या करूँगा?"

"....तब भी मत जाइए।"

"देवयानी!...मुझमें राजवंश का रक्त है। आर्यावर्त का सम्राट् बनने का स्वप्न मेरी अस्मिता में जीवित है।...मेरे पराक्रम के समक्ष इन्द्र लगभग पराभूत है।... मैं ऐसी स्थिति लाना नहीं चाहता कि आचार्य मुझे निकल जाने के लिए कहें।"—वह दांत पीसते और शब्द चबाते हुए बोला,—"तिरस्कृत होने से वृषपर्वा मर जाना अच्छा समझता है।"

देवयानी भी भभकी—"...पर मैं उस नागिन का प्रवेश आश्रम में नहीं चाहती।"...क्या आप जाने के पहले उसे कुचल डालने की व्यवस्था नहीं कर सकते?"—उसकी ईर्ष्या हिंस्र हो उठी थी।

"क्यों नहीं कर सकता।" वृषपर्वा मुस्कराया—"... पर नागिन की बीन तो आपके ही हाथों में है।"

"मेरे ही हाथों में,....उस नागिन की बीन?" वह कुछ समझ नहीं पायी। असुरराज को देखती रह गयी। वह भी रहस्यमय ढंग से मुस्कराता रहा। इस रहस्य में और अधिक कुतूहल घोलते हुए वह बोला,—"...वह बीन जैसा चाहे वैसा उसे नचा सकती है। ....विश्वास कीजिए ऋषिकुमारी वही बीन उसका प्राण है और वह आप के हाथ में है।"

"मैं कुछ समझ नहीं पायी।"—देवयानी बोल पड़ी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वृषपर्वा जोर से हँसा फिर वह गम्भीर हो बोला,—"कभी-कभी अपने हाथ की वस्तु को भी हम पहचान नहीं पाते। यह हमारा अज्ञान नहीं, हमारा दुर्भाग्य है ऋषिकुमारी !"—देवयानी की जिज्ञासा शिखर का स्पर्श करे इसके पहले ही उसने बताया,—"वह बीन है कच ?"

"क्या कहा ?···कच उस नागिन की बीन है !"

"हाँ, मैं ठीक कह रहा हूँ देवयानी !"····उसका स्वर बादलों जैसा गड़गड़ाया--"वह विषकन्या उसी की मुट्ठी में है।"

"यदि वह उसकी मुट्ठी में होती, तो उसे वह अवश्य ले आता।"

"यह सब उसकी राजनीति है ऋषिकुमारी।··आप उसे नहीं जानती। वह देववर्ग के महान नीतिज्ञ वृहस्पति का पुत्र है। ····मैं उसे प्रथम दृष्टि में ही पहचान गया था।"—वह बोलते हुए भी भीतर ही भीतर उबलता रहा।

"····पर उसे न लाने में उसका क्या लाभ रहा होगा ?"—देवयानी का दूसरा प्रश्न था। द्वार पर से ही एक चर ने कहा था।

"लाभ ? ····सबसे बड़ी बात है कि वह मुझे यहाँ से हटाना चाहता था, और वह उसमें सफल हो गया।" उसने एक गम्भीर साँस ली फिर बड़बड़ाया—"अब वह मेरे प्रभाव को कम करेगा।····किन्तु मैं कर क्या सकता हूँ, उस नर्तकी का आचार्य पर इन्द्रजालिक प्रभाव है।"

"इसीलिए तो मैं चाहती हूँ कि आप उसे समाप्त करा दें।"

"···और यदि आचार्य ने उसे फिर जीवित कर दिया तो ?"

"····मैं उन्हें ऐसा करने नहीं दूँगी।"

वृषपर्वा एकटक देवयानी की ओर देखता रहा। "क्या कर सकेगीं आप ?"—उसने पूछा।

"····मैं कहूँगी कि यदि वह जिलायी गयी तो मैं अपने प्राण दे दूँगी।"

"····तो क्या आचार्य आपके प्राणों की चिन्ता करेंगे ?"

"अवश्य करेंगे ?···क्योंकि उनके पास कोई राजसिंहासन नहीं है।···और न कोई लिप्सा ही, जिसकी वेदी पर वह अपनी प्यारी बेटी की बलि चढ़ा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सके ।"—देवयानी के इस कथन में सहजता थी या कुटिलता यह तो वही जाने । …पर वृषपर्वा को ऐसा लगा जैसे उसके गालों पर किसी ने जमकर चाटा मारा हो, वह कसमसाकर रह गया । देवयानी ने शर्मिष्ठा की ओर देखा वह अपनी निरीह स्थिति में गड़ी जा रही थी ।

वृषपर्वा कहना चाहता था कि काम से बढ़कर कोई दूसरी लिप्सा नहीं होती, और वही वेदी होगी तेरे बलि की । पर वह चुप ही रह गया । उसकी दृष्टि पुनः शर्मिष्ठा की ओर गयी और वह एक निकृष्ट पिता की तरह सोचने लगा,—" आचार्य की कामाग्नि में समिधा बनने की सामर्थ्य क्या इसमें उस नर्तकी से कम है ?"…अब तक जयन्ती की एक कल्पित प्रतिमा शर्मिष्ठा के बगल में आकर खड़ी हो गयी थी । वह उसके अंग-प्रत्यंग की तुलना अपनी पुत्री से करने लगा । करता गया कि अचानक उसके कानों से एक आवाज टकरायी,—"आपको आचार्य ने स्मरण किया है ।" वह एकदम झकझोर दिया गया । "…हाँ, हाँ । मैं समझता हूँ ।"—उसकी प्रथम वाचिक प्रतिक्रिया थी । फिर वह संभला—"कह देना कि मैं स्वयं ही उपस्थित होने वाला था ।"—दूत चला गया ।

अब असुरराज ने देवयानी से कहा,—"…आप भी चलें । … मैं आपकी आज्ञा का पालन करने की चेष्टा करूँगा । … किन्तु क्या आप उस बीन को तोड़ सकेंगी ?" प्रश्न के साथ ही एक बार मुस्कराहट उसने देवयानी पर फेंकी । कुछ क्षण उसे देखता रहा । देवयानी मौन थी । कुछ क्षणों बाद वह बिना कुछ कहे अभिवादन कर निकल पड़ी ।

देवयानी चली जा रही थी । झंझा में पड़ी नाव की तरह डगमगाती हुई । सारे परिवेश से अलग-थलग । सम्पूर्ण आश्रम उसके समक्ष एक कच के रूप में परिवर्तित हो गया था … और कच एक बीन के रूप में । …एक विशाल बीन जिसकी धुन पर वह नागिन नाच रही थी । उसकी हर गति पर उसका तन झूम रहा था । किन्तु देवयानी को लग रहा था कि वह नागिन बीच-बीच में उसे देखकर फुफकार उठती है । बीन बजती जा रही थी । उसकी ध्वनि में देवयानी के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लिए अद्‌भुत घुटन भरी पीड़ा थी। "....आप उस बीन को तोड़ सकती है ?"—पूछे गये प्रश्न की अनुगूंज बार-बार उससे टकराती रही।

एक क्षण भी ऐसा आया जब उसने अपनी हथेलियों से दोनों कान बन्द कर लिये। वह चीख पड़ी,—"नहीं, नहीं। मैं उस बीन को तोड़ नहीं सकती, पर उसकी रागिनी का गला घोंट सकती हूँ।....निश्चित घोंट सकती हूँ।"—एकान्त उसकी चीखें निगलता गया।

जब सामान्य हुई तब उसने स्वयं को अपने ही कक्ष में पाया।

दिन का तीसरा प्रहर। जाड़े की धूप शशक चर्म की तरह स्निग्ध एवं मृदु।

आचार्य अपने कक्ष के समक्ष एक काष्ठ पीठिका पर बिछे मृगचर्म पर बैठे थे। उनके चरणों के निकट ही एक ओर कच और दूसरी ओर देवयानी थी। अन्य ब्रह्मचारी भी इन्हीं लोगों को यथास्थान घेरे थे। सभी चुप थे। एकदम शान्त ! एक तनी हुई चुप्पी, जैसे झंझा के पहले का सिन्धु। सभी आकृतियों पर उत्ताल तरंगाघात की आशंका रेंगने लगी थी।

शर्मिष्ठा और प्रवज्ञा के साथ आते ही वृषपर्वा ने नमस्कार किया और मुस्कराते हुए विचित्र भंगिमा से बोला,—"....कल प्रातः चला जाना चाहता हूँ। ....अनुमति की याचना है।"

आचार्य स्तब्ध रह गये। "जो कुछ मैं कहना चाहता था। वह स्वयं ही कह रहा है।....लगता है, इसे सब कुछ ज्ञात हो गया है।"—आचार्य ने सोचा, फिर अपनी झेंप मिटाते हुए बोले,—तुमने अचानक यह निर्णय क्यों ले लिया ?"

अचानक तो नहीं, मैं कई दिनों से सोच रहा था। राजधानी छोड़े बहुत दिन हो गये। इस संक्रमण काल में अमात्यों का क्या भरोसा ? ...और हो सकता है, इन्द्र का स्वास्थ्य ठीक हो गया हो।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"इन्द्र के स्वास्थ्य से तुम्हारे जाने का क्या सम्बन्ध ?"—आचार्य ने पूछा।

उसने संक्षेप में पुरानी घटना कह सुनायी और फिर बोला,—"यदि वह स्वस्थ्य हो गया होगा, तो युद्ध आरम्भ हो जायेगा।....और यह युद्ध निर्णायक होगा आचार्य !" वृषपर्वा के विशाल नेत्रों के डोरे रक्ताभ हो गये।

आचार्य सामान्य भाव से ही उसे देखते रहे। फिर धीरे से बोले,—"इन्द्र के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में तो कच ही बता सकता है।....अभी-अभी तो देवलोक से लौटा है।"

कच को लगा, जैसे वह अचानक घेरा जाने लगा हो। उसने दूर से ही बन्धन को झटकने की चेष्टा की,—"सुरपति के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में जानने तो गया नहीं था।"

वृषपर्वा हँस पड़ा,—"कोई बात नहीं। मैं स्वयं जान लूँगा।"—फिर उन्होंने मुस्कराते हुए आचार्य की ओर देखा और कहा—"अब मात्र आपकी अनुमति की प्रतीक्षा है।"—आचार्य अब भी चुप थे। उनकी मुद्रा से ऐसा लग रहा था कि वे कुछ कहना चाहकर भी कह नहीं पा रहे हैं।

"यदि आप कहें तो शर्मिष्ठा को कुछ दिनों के लिए छोड़ता जाऊँ।"—वृषपर्वा पुनः बोला। शर्मिष्ठा की दृष्टि कुछ नीची थी, और नीची हो गयी। फिर भी आचार्य चुप थे। इस बार कच ही बोला,—"राजपुत्री क्यों जायेंगी ? उन्हें तो रहना ही चाहिए।"

कच से इतना सुनते ही देवयानी की आकृति लाल होने लगी। वृषपर्वा को भी यह अच्छा नहीं लगा कि आचार्य की ओर से कच बोले। वह प्रतिवाद स्वरूप बिना कुछ कहे नमस्कार कर चल पड़ा। बड़वाग्नि बिना झंझा के निकल गयी। समुद्र शान्त का शान्त पड़ा रहा। असुरराज की मनस्थिति का भान लगभग सबको हो गया था।

वह सीधे अपने कक्ष में ही आया और प्रवज्ञा को सम्बोधित कर बड़बड़ाने लगा,—"देखा उस छोकरे का मन कितना बढ़ गया है।....मैं उसे चूर करके दम लूंगा। अभी असुरों के प्रतिशोध से उसका पाला नहीं पड़ा है।....उसे क्या

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अधिकार था शर्मिष्ठा को रोकने का ?····क्या वही आश्रम का स्वामी है ? आचार्य के रहते तो उसे बोलना भी नहीं चाहिए था ।····पर देखा जायेगा !" वह आक्रोश में कक्ष में ही टहलता रहा । शर्मिष्ठा, और प्रवज्ञा उसे देखते रहे ।

यह मौन शीघ्र ही टूटा,—"प्रवज्ञा, तुम्हें यहीं रहना होगा । अब सुर और असुरों का संघर्ष रणस्थल में नहीं इसी आश्रम में होगा । ·· मैं राजधानी पहुँचते ही कुछ विश्वस्त सैनिकों को भेजूंगा ।"—वृषपर्वा बोला ।

"किन्तु, उनके प्रवेश के लिए भी तो आचार्य से अनुमति लेनी होगी ।"—प्रवज्ञा का स्वर दबा ही था ।

"वे आश्रम में नहीं रहेंगे । निकट के वन्य प्रान्तर में ही उनकी व्यवस्था की जायेगी ।" वह रुककर कुछ सोचने लगा,—" ·· और हाँ उनकी उपस्थिति का भान भी यहाँ किसी को न हो ।"

"····फिर उन सैनिकों के उपयोग के लिए आपका क्या आदेश है ?"—प्रवज्ञा ने पूछा ।

"आप उनसे सम्पर्क बनाये रखिएगा । मेरा आदेश आपको मिलता रहेगा ।" वह कुछ रुककर फिर बड़बड़ाया,—"पहले तो हमें उस नर्तकी के लिए कुछ करना है ।··· देवयानी भी तो यही चाहती है ।··· फिर इस अंगिरा के वंशज की जबान काटकर गिद्धों को न खिला दूँ तो मेरा नाम नहीं ।"····वह कटकटाया ।

अचानक शर्मिष्ठा ने द्वार के बाहर झांका और देखती रह गयी । "क्या बात है ?"—वृषपर्वा ने पूछा ।

"लगता है कोई आकर लौट गया है ।"—शर्मिष्ठा बोली । वृषपर्वा के कान खड़े हो गये,—"जरा देखो तो प्रवज्ञा !"

क्षण भर में प्रवज्ञा कच को लिए प्रविष्ट हुआ । "अच्छा तो आप ही द्वार के बाहर से लौटे जा रहे थे ?".

"जी हाँ, क्षमा माँगने आया था, किन्तु आपकी अशान्त मुद्रा देखकर लौट पड़ा ।" कच ने बड़े शान्त भाव से कहा, पर वृषपर्वा की आग्नेय दृष्टि उसे छेदती चली गयी । वह मन ही मन कुड़बुड़ाता रहा,—"छिपकर ही मुझे सुनने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आये थे और पकड़े जाने पर क्षमा माँगने का बहाना बनाते हो !" अन्ततः उद्वेग स्वर में छलक पड़ा,—"आखिर कौन सा अपराध है जिसके लिए तुम्हें क्षमा माँगने की आवश्यकता पड़ी ?"

"....मेरे मुख से निकल गया था, पर अब सोचता हूँ कि राजकुमारी जी को रोकने का क्या अधिकार था ? मैं आश्रम का स्वामी तो नहीं।"—कच ने कहा,—"निश्चित ही मैं अपनी सीमा के बाहर चला गया था।....और इसी उदंडता के लिए क्षमा माँगने आया था।"

"तुम आवश्यकता से अधिक चतुर हो।....और यही तुम्हारे विनाश का कारण होगा।"—वृषपर्वा के स्वर में एक लपट थी। उसके ताप का अनुभव करता हुआ भी कच चुप था।

"अपनी सीमा का ज्ञान रखते हुए भी तुमने उसका अतिक्रमण क्यों किया ?"—वृषपर्वा ने पुनः पूछा।

"यहीं तो मैं स्वयं नहीं जान पाया।"—उसने एक कृत्रिम मुस्कराहट अपने अधरों पर उगायी—"आचार्य उस समय मौन थे। लगता है, उन्होंने परकाया प्रवेश किया था और मेरे भीतर से बोल पड़े थे।"

"इसका तात्पर्य है कि तुम क्षमा माँगने नहीं, वरन यह कहने आये हो कि तुमने नहीं, आचार्य ने ही इसे रोका है।"

कच मौन था। शर्मिष्ठा कनखियों से उसे पढ़ने की चेष्टा कर रही थी।

"अच्छा, अब तुम जा सकते हो।....किन्तु, याद रखना, जब तक मैं यहाँ हूँ तुम्हारी छाया भी इधर दिखायी नहीं देनी चाहिए।"

इस आक्रोश को भी उसने बड़े नाटकीय ढंग से स्वीकार किया। सिर झुकाये हुए ही वह बोला,—"आपका आदेश शिरोधार्य है।....पर आश्रम में सम्राट का नहीं, आचार्य का ही आदेश चलता है।"—इतना कहते ही वह एक झटके के साथ निकल गया। उसने वृषपर्वा की प्रतिक्रिया जानने की चेष्टा नहीं की।

सन्ध्या काली होकर ठंडी पड़ने लगी थी। शीत बढ़ गयी थी। कच पुष्करिणी की ओर से निकला चला जा रहा था। उसने एक वृक्ष के नीचे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देवयानी को खड़ा देखा। उसने अनुभव किया कि उसे देखते ही उसने मुँह फेर लिया है। निश्चित ही वह अप्रसन्न है।....पर क्यों ? वह समझ नहीं पाया।

"क्या मैं आप से कुछ पूछ सकता हूँ ?"—देवयानी के निकट पहुँच कर वह मुस्कराते हुए बोला।

देवयानी चुप थी। टस से मस न हुई। कच ने उसके कंधे का स्पर्श करते हुए कहा,—"लगता है, अहिल्या पाषाण हो गयी है।"

"पुरुष के छल का परिणाम नारी को पाषाण ही बना देता है।"—देवयानी ने एक झटके में अपने कन्धे पर से उसका हाथ हटाया। इस परिवर्तन का रहस्य वह अब भी समझ नहीं पाया। फिर वह बोल पड़ा,—"पुरुष की छलना से मेरा तो परिचय नहीं। पशु की सहजता लेकर ही आपकी सेवा में उपस्थित हूँ।"

"सहजता ?"—उस धुंधलते में भी उसकी आँखें चमकी,—"तुम स्वयं को सहज कहते हो ?"...किन्तु तुम नितान्त कुटिल हो कच ! वह उसे घूरती रही। वह कच के लिए एक अबूझ पहेली बन गयी थी।

"कुटिलता ? " मैं कुछ समझ नहीं पाया।"

"कुछ समझ नहीं पाओगे क्योंकि तुम काले भौंरे हो।"—अंगार उगलती आँखों से उसने पुनः देखा,—"तुम एक फूल से बँधे नहीं रह सकते।"—अब कच ने समझा कि यह जयन्ती के सन्दर्भ में ही बोल रही है। इसका ईर्ष्यालु प्रेम ही फुफकार रहा है। उसने उसे सामान्य करने के लिए उसके कन्धों का पुनः एक आत्मीय स्पर्श किया और बोला,—"क्या मैं सचमुच भ्रमर की तरह काला हूँ।"

"बाहर से नहीं, भीतर से।"—देवयानी अब भी क्रोध में थी।

"भला तुमने मेरे भीतर पहुँचने को स्वीकारा तो।"—वह हँसने लगा,—"शंकालु प्रेम और अव्यवस्थित चित्त कभी शान्त नहीं रहता।"

"तुम हँसते हो।"—वह भभकी,—"मैंने देखा कि वह तुम्हें बड़ी ललचाई दृष्टि से देख रही थी।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"इसके लिए मैं क्या करूँ ?"—इस बार कच की आवाज कुछ तेज हुई,—"कभी तुमने मेरी दृष्टि में उसके प्रति कोई ललक देखी हो तो बताओ ?"

"....फिर तुमने उसे रोका क्यों ?"

"तुम्हारे पिता के लिए ।"—इतना कहकर वह मुँह के भीतर ही भुनभुनाया,—"उस बूढ़े के विलास के लिए ।"

"क्या कहा ?" लगता है, उस भुनभुनाहट के कुछ छीटें छलक कर देवयानी के कानों पर भी पड़ गये। कच ने बात ही बदल दी,—"तू समझती नहीं देवयानी।... मैं वृहस्पति का पुत्र हूँ। मेरी स्थिति बड़ी विचित्र है। यदि मैं शर्मिष्ठा को न रोकता तो वृषपर्वा यही सोचता कि सारा षडयन्त्र इसी का है। यह मेरे साथ ही मेरे प्रभाव को भी आश्रम से दूर कर देना चाहता है।"

अब देवयानी के अधरों पर मुस्कराहट आगयी,—"सच तुम उसे नहीं चाहते ?"—अब उसकी आत्मीयता प्रगल्भ होने की स्थिति में भी। उसने अपना बायाँ हाथ कच के वृषभ स्कंध की ओर बढ़ा दिया।

पूर्वाकाश में चन्द्र विम्ब उठने लगा था। हेमन्त की राका आश्रम पर फूट पड़ी थी। पुष्करिणी के कम्पित जल में एक दूसरे की परछाइयाँ आलिंगनवद्ध होकर ढुलकती चली जा रही थी। कच ने उस ओर संकेत करते हुए कहा,—"वह देखो।"

"अरे, यह तो मात्र छाया है।"—देवयानी बोली। दोनों हँस पड़े। यह रजतवर्णी खिलखिलाहट वातावरण में बहुत दूर तक तैरती चली गयी।

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

□□□

उषा की प्रभा ने दीप की लौ को मद्धिम कर दिया था। फिर भी उसने बुझाया नहीं। तल्प पर पड़े-पड़े शास्त्र की आवृत्ति करता रहा। किन्तु यह आवृत्ति तो स्वयं को भुलाने की चेष्टा मात्र है। 'आखिर जयन्ती अभी तक क्यों नहीं आयी'—उसकी व्यग्रता चिन्तन के इसी बिन्दु पर टिकी है। मैंने उसे सारी सूचनाएँ दे दी थीं, सभी परिस्थितियों से सावधान कर दिया था। उसे कल तक आ जाना चाहिये था। वह सोचता रहा।

आज वह आश्रम के प्रातःकालीन अग्निहोत्र में गया भी नहीं। शायद वह आचार्य का सामना नहीं करना चाहता था, क्योंकि उसके न आने के बारे में यदि वे उससे पूछेंगे तो वह क्या उत्तर देगा ? इससे तो अच्छा है अस्वस्थ होने के बनाने वह पड़ा ही रहे।

कभी-कभी उसके मुख से मंत्रों के उच्चारण की बुदबुदाहट निकलती थी और कभी-कभी वन्द हो जाती थी,''''तब यह मौन उसे शब्दों से भारी पड़ने लगता था। समय के गति के साथ-साथ आश्रम की सुगबुगाहट भी बढ़ती जा रही थी, पर वह ज्यों का त्यों पड़ा रहा।

"आज क्या बात है, जो अभी तक पड़े हो ?"—देवयानी ने प्रवेश करते ही पूछा और मुस्करा पड़ी।

"....कुछ अस्वस्थ हूँ।"—कच ने पड़े-पड़े ही कहा, किन्तु उसकी मुस्कराहट का रहस्य समझ नहीं पाया।

"तन से ही अस्वस्थ हो या मन से भी ?"—वह पुनः मुस्करायी।

"यदि मन से अस्वस्थ होता तो तुम्हारे पास पहुँच गया होता।"—कच ने हँसते हुए कहा। देवयानी भी हँस पड़ी,—"पर वात ऐसी है नहीं।....मन से अस्वस्थ होकर भी तुम अपने कक्ष में पड़े हो।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कच इस सन्दर्भ में कुछ और पूछे इसके पहले ही देवयानी ने जलते हुए दीप की ओर संकेत किया और कहा,—"दिन में भी जो दीप जलाते हैं वे मन से अस्वस्थ होते हैं और उलूक की मानसिकता में जीते हैं।····क्या मैं गलत कहती हूँ ?"—एक गम्भीर हँसी उस कुटी को फोड़कर बाहर निकल गयी।

अब वह झट से उठा और अपनी खीझ मिटाते हुए उसने दीपक बुझाया, तब तक देवयानी भी उसके तल्प के निकट चली आयी थी। इसी बीच अचानक कोलाहल सुनायी दिया। ऐसा लगा जैसे बहुत से लोग आश्रम की ओर बढ़े चले आ रहे हैं। धीरे-धीरे होहल्ला बढ़ता गया। वे दोनों बाहर निकल आये। हर व्यक्ति आश्रम के प्रवेश द्वार की ओर ही भागा जा रहा था।

"कुछ गम्भीर है।"—कच के मस्तिष्क में जयन्ती तो थी ही। अब वह दुर्घटना से लिपटने लगी थी।·· किन्तु वह प्रत्यक्षतया कर क्या सकता है। जिज्ञासा उसे प्रवेश द्वार की ओर खींच ले जाना चाहती थी, पर वह देवयानी से बँधा था। उसने बड़ी होशियारी से पूछा,—"आचार्य की कक्ष की ओर चलूं ?"

"वहाँ चलकर क्या करोगे ?"—देवयानी बोली। कच ने सोचा वह कोलाहल की ओर बढ़ेगी, पर वह चुपचाप खड़ी रह गयी। उसकी स्थिरता अन्तर्मुखी हो गयी थी। उस नर्तकी के क्षत-विक्षत शव की कल्पना उसे साकार होते दीख पड़ी। किसी ने आकर यह भी बताया कि कुछ शव आश्रम में लाये जा रहे हैं।

"अच्छा होता, वह दुष्टा मारी जाती है।"—देवयानी का चिन्तन मुखर हो गया। साथ ही कच की व्यग्रता भी शब्दायित हुई,—"क्या जयन्ती मारी गयी ?"

"····कौन जयन्ती ?··· किस जयन्ती की बातें करते हो ?"—देवयानी ने, पूछा। अब कच को अपनी भूल मालूम हुई। अरे, मैं क्या कह बैठा ? ···· उसका नाम तो यहाँ कोई नहीं जानता। ···· फिर वह मेरे मुख से क्यों निकल गया ?" ···· किन्तु देवयानी प्रश्न पर प्रश्न किये जा रही थी—"····बताते क्यों नहीं ? तुम किस जयन्ती के सम्बन्ध में सोच रहे हो ? एक जयन्ती तो इन्द्र की पुत्री है।"

"होगी, मुझे मालूम नहीं।" कच नितान्त अनभिज्ञ बन गया। दोहरे मुखौटों के बीच जीने वाली आकृति कभी-कभी ऐसी ही स्थिति में फँस जाती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देवयानी के लगातार प्रश्नों के प्रहार में उसे कहना पड़ा—"अचानक मुख से निकल गया मैं उसे नहीं जानता। लगता है, मेरे अवचेतन में कभी किसी जयन्ती का अस्तित्व पड़ा हो।"

"तो तुम उसे भी निकाल दो।"—देवयानी ने कहा और द्वार से आती भीड़ को देखती रही।....लौटते हुए एक ब्रह्मचारी को संकेत से बुलाकर उसने पूछा—"क्या हुआ ?"

"....वह नर्तकी आयी है।" उसने कहा। देवयानी को जैसे धक्का सा लगा। "अरे वह तो जीवित चली आ रही है, फिर भी वह स्वयं को संभालती हुई बोली—"फिर यह भीड़ क्यों आ रही है ?"

"दो शव भी लाये जा रहे हैं।"

"किसके हैं वे शव ?"

"यही तो ज्ञान नहीं है।....नर्तकी कहती है कि आचार्य के समक्ष ही वह बतायेगी।"—इतना कह कर वह ब्रह्मचारी बढ़ गया। देवयानी ने कच की ओर देखा, वह गम्भीर दिखायी दिया। दोनों आचार्य की कुटी की ओर चल पड़े।

कोलाहल सुनकर आचार्य अपनी कुटी के बाहर के चबूतरे पर आ गये थे। शान्तभाव से खड़े थे। मस्तक पर चिन्तन की सिकुड़न उभर आयी थी। यों दृष्टि नर्तकी से उलझी हुई थी, फिर भी वे परिवेश से अलग नहीं थे।

आते ही नर्तकी ने आचार्य के चरण हुए। वे. आशिर्वाद दें इसके पहले ही उसने उन शवों की ओर संकेत करते हुए कहा,—"इन्ही लोगों के कारण मैं आश्रम में आ नहीं रही थी।"

"....कौन हैं ये ?"—आचार्य का मन्द रव बादलों सा गड़गड़ाया।

"यह तो मैं नहीं जानती।" उसने कहा और फिर उसकी दृष्टि भीड़ के पीछे खड़ी शर्मिष्ठा से जाकर चिपक गयी। आचार्य को समझ लेने के लिए काफी था।

"तुम इन्हें पहचानती हो शर्मिष्ठा ?"—आचार्य ने दूर से ही पूछा।

शर्मिष्ठा भयातुर गिलहरी की भांति सकपकायी। "मैं तुम्हीं से पूछता हूँ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शर्मिष्ठा। .. यदि ठीक से न देखा हो तो आगे आओ और पहचानने की चेष्टा करो।

आचार्य की जिज्ञासा में बँधी हुई शर्मिष्ठा खिंचती चली गयी। पीछे-पीछे प्रवज्ञा भी बढ़ा।

"ये तो मेरे ही सैनिक हैं।"—प्रवज्ञा बोला। शर्मिष्ठा चुप थी।

"इन्हीं लोगों ने मेरी हत्या करने की चेष्टा की थी।"—जयन्ती ने बताया।

"क्यों चेष्टा की थी तुम्हारी हत्या की ?"—आचार्य का स्वर अस्थिर था।

"यह तो मैं नहीं जानती।" —अब आचार्य की अंगार उगलती आँखें प्रवज्ञा की ओर मुड़ी,—"मुझे भी आश्चर्य है कि ये सैनिक यहां तक कैसे आ गये।" —प्रवज्ञा बोला।

"कोई कुछ नहीं जानता ? .. किन्तु मैं सब जानता हूँ।"—आचार्य का उग्र रूप झुँझलाया।—आप सब लोग चले जाइए। ...और फेंक दो इन शवों को देवयानी के उद्यान में। वे भूखे श्वानों के काम आयेंगे।"—अब वे एक क्षण के लिए भी रुक नहीं सकते थे। आचार्य अपनी कुटी में लौट गये।

ब्रह्मचारी हटने बढ़ने लगे। बाहरी लोग भी चलते बने। शव लेकर आये कुछ लोग ही रह गये थे। वे आदिवासियों जैसे लग रहे थे। उनके हाथों में रक्त से सने त्रिशूल, मुद्‌गर, असि आदि थे। उनमें से एक ने कच की ओर संकेत करके पूछा,—"कहाँ है वह उद्यान ?"

उसके पूछने के ढंग से स्पष्ट लगा कि वह कच को पहचानता है। वस्तुतः ऐसा था भी। वे सभी सुर सैनिक थे, जो पहाड़ी के उस पार के ग्रामों तथा जंगलों में छिपकर आश्रम पर दृष्टि रखे हुए थे।

रहस्य उद्‌घाटित होने के भय से कच ने एकदम मुद्रा बदली। वह तड़पा,—"चले जाओ यहाँ से। आचार्य के आदेश के बाद एक क्षण भी तुम्हें आश्रम में रुकना नहीं चाहिए।"

"....किन्तु आचार्य ने तो इन्हें उद्यान में फेंकने की आज्ञा दी है।"—उन्हीं से से एक बोला।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"....यह आज्ञा तुम्हारे लिए नहीं है। हम आश्रमवासी इसका पालन करेंगे।"—कच के उतना कहने पर भी वे जयन्ती की ओर देखते हुए खड़े थे, जैसे उससे भी अनुमति की अपेक्षा करते हो। अब कच आपे से बाहर हुआ और उन्हीं में से एक के हाथ से मुद्गर छीन कर उन्हें भगाते हुए तड़पा—"दुष्ट, आचार्य की अवज्ञा करता है। निकल जा यहाँ से।"—और उन्हें प्रवेश द्वार तक खदेड़ ले गया।

लोग उन्हें देखते रहे, पर प्रवज्ञा की सजगता मात्र कच से चिपकी थी। उसने अनुभव किया कि बहुत दूर जाकर कच ने उनसे कुछ कहा भी। अब वह बड़बड़ाया—आखिर उन्हें भगाने में कच की इतनी रुचि क्यों है?

कोई कुछ नहीं बोला। जयन्ती की एक तीव्र दृष्टि प्रवज्ञा पर पड़ी।

लौटते ही कच ने देवयानी से पूछा—"....अब क्या करना चाहिए?"

"इन्हें मेरे कक्ष में पहुँचाना चाहिए।"—वह गम्भीर ही रही, पर कच हँसा। बड़ी प्रगल्भ थी उसकी हँसी। प्रवज्ञा को ऐसा लगा, जैसे सारा रहस्य ही उद्घाटित हो गया हो।

हँसते हुए ही कच ने कहा—"कितना विचित्र है? जिन्हें आचार्य जी तुम्हारे उद्यान में भेजते हैं, उन्हें शरण तुम्हारे कक्ष में ही मिलती है।"—देवयानी मुस्करा पड़ी। उसे कच का सन्दर्भ याद हो आया।

पर प्रवज्ञा का तनाव ज्यों का त्यों बना रहा। उसका मस्तिष्क अपने सन्दर्भ से निकल नहीं पाया, वरन शंका उसे पुष्ट होती जान पड़ी।

कुछ देर बाद पता चला कि उन दो में से एक में जीवन शेष है। उसके वक्ष पर कम्पन हो उठता है। देवयानी उसके मुख पर हाथ ले गयी। रह रहकर श्वास में स्पन्दन हो जाता था, जैसे बुझती हुई लौ बीच बीच में भभक उठती हो। "....चाहे कोई भी हो जीव की रक्षा करना हमारा धर्म है।"—देवयानी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बोली और उसने कच की ओर देखा। निर्लिप्त भाव से कच ने समर्थन में सिर हिला दिया।

"तब तुम्हें इसके समुचित उपचार की व्यवस्था करनी चाहिए।"—देवयानी ने कहा। कच यंत्रवद् मूक बाहर चला गया।

स्पष्ट लगा कि कच किसी और मानसिकता में है और देवयानी किसी और। कच वहाँ से हटना नहीं चाह रहा हो और देवयानी हटाकर ही दम लेना चाहती हो। उस कक्ष में शर्मिष्ठा भी थी पर वह शान्त ज्वालामुखी की तरह बन्द थीं, किन्तु कच के बाहर निकलते ही वह देवयानी के निकट आयी और बड़े आतंकित स्वर में बोली,—"इन्हें तो किसी न किसी स्थिति में जिलाना ही पड़ेगा, नहीं तो पिता जी की आस्था ही डिग जायेगी।"

देवयानी शवों को देखती और कुछ सोचती रही,—"तुम इन्हें पहचानती हो?"

"अच्छी तरह।....संज्ञा शून्य व्यक्ति तो हमारे यहाँ का सामान्य सैनिक ज्ञात होता है, किन्तु जिसमें जीवन शेष है, वह हमारे सेनाधिपति का सहायक 'उग्र' है। आखिर वह कैसे धराशायी हो गया?....मैं कुछ समझ नहीं पा रही हूँ।"

"इसमें समझने की क्या बात?"

"उग्र को पराजित करने वाला कोई कोई साधारण व्यक्ति नहीं हो सकता। यह नर्तकी भी सामान्य नहीं लगती।" फिर उसने आतंकित दृष्टि से देवयाना की ओर देखा और बड़ी गम्भीरता से बोछी,—"पिता जी कीं आशंका ठीक ही थी।"

"क्या?"

"उनका कहना था कि अब हमें युद्ध रणक्षेत्र में नहीं, वरन् इसी आश्रम में लड़ना पड़ेगा।" एक पल के लिए वह शान्त हुई। फिर उसने एक के बाद एक वृषपर्वा की आशंकाओं की परतें खोलनी आरम्भ कीं। जब उसने यह कहा कि यह सब आचार्य को अपनी मुट्ठी में कर लेने की देवताओं की चाल है और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उस नर्तकी का कच से सम्बन्ध है, तब देवयानी एकदम चौंक पड़ी,—"यह तुम कैसे सिद्ध कर सकती हो ?"

"समय सब कुछ सिद्ध कर देगा, ऋषिकुमारी।"—यह पिघले लावे का एक उद्वेग था। शान्त ज्वालामुखी अब फूट चुका था। शर्मिष्ठा बोलती गयी,—"प्रवज्ञा जी का तो कहना है कि शव लाने वाले शस्त्रधारी लोग भी आदिवासियों के रूप में देवसैनिक ही थे। .. और मैं तो समझती हूँ उनमें सैनिक ही नहीं महान् योद्धा भी रहे होंगे, अन्यथा उग्र की यह दशा न होती।" अचानक उसकी मुद्रा बदली। शर्मिष्ठा को जैसे किसी ने झकझोरा,—"अरे, हम बात ही करते रह जायेंगे, तो इसका उपचार कैसे होगा ?"

"....इसकी चिन्ता छोड़ो शर्मिष्ठा ! ....उपचार नहीं हो सकेगा तब या तो यह मर जायेगा या इसी स्थिति में पड़ा रहेगा। प्रकृति इसे ठीक भी कर सकती है।"... शून्यमनस्क मुद्रा में देवयानी बोलती गयी,—".. मर जाने पर मेरे पिता की विद्या जिलायेगी। ....अच्छा होता वह इसी तरह पड़ा रहता। ठीक होते ही कराहने लगेगा। जीवन का अस्तित्व ही पीड़ा से लिपटा है शर्मिष्ठा।"

निराशा व्यक्ति को कुण्ठित कर देती है या दार्शनिक बना देती है। जब से देवयानी ने सुना था कि उस नर्तकी से कच का सम्बन्ध है वह विचित्र मनःस्थिति में हो गयी थी। उसे लग रहा था कि बड़ी आत्मीयता से बनायी प्रेम की पाषाण प्रतिमा मोम की भाँति पिघल-पिघल कर चूती जा रही है। उसके हर बूँद में एक जलन है जो उसके मन को 'छन'—छन' दग्ध करती है। शायद इसी स्थिति में उसने पहली बार अनुभव किया था कि जीवन का अस्तित्व ही पीड़ा से लिपटा है। पर वह सहज ही हार मानने वाली नारी नहीं थी। उसकी अस्मिता गिरे हुए मल्ल की तरह धूल झाड़ती खड़ी हो गयी,—"अच्छा, अपने पिता की बातों से कच को अवगत मत कराना। उसे इस तथ्य से अनभिज्ञ ही रहना चाहिए।"—उसने कहा।

शर्मिष्ठा को उनकी देख-रेख में सौंपकर षण्ड से कोई औषध मँगाने के बहाने वह बाहर निकल गयी। कुछ आगे बढ़ने पर उसने कच को जड़ी बूटियाँ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लिए आते देखा। "कहाँ जा रही हो मैं औषध लिए चल रहा हूँ।"—उसने कहा।

"तुम चलो, मैं आती हूँ।"—देवयानी आचार्य कक्ष की ओर लपकती निकल गयी।

उस कुटीर में आचार्य लेटे थे। सामने कुशासन पर नर्तकी बैठी थी। आचार्य उसे देख रहे थे। देवयानी को लगा, बूढ़ा सर्प मणि को निहार रहा हो, पर सर्प तो अन्धकार में ऐसा करता है। वासना स्वयं में तमिस्र नहीं? एक ऐसा तमिस्र जिसे सूर्य की परवाह नहीं, जिसे दिन और रात की चिन्ता नहीं, जिसकी परिधि में चेतना की रश्मि भी अन्धी पड़ जाती है। देवयानी सोचती हुई द्वार तक पहुँच गयी कि उससे आचार्य की गम्भीर ध्वनि टकरायी,—"कैसे चली देवयानी?"

"एक प्रश्न करने आयी हूँ।"—विना किसी भूमिका के वह स्पष्ट बोल पड़ी।

"... प्रश्न तो शिष्य पूछते हैं, पुत्री नहीं।"—आचार्य मुस्कराये,—"हाँ पुत्री स्वयं एक प्रश्न हो सकती है।"

देवयानी सोच में पड़ गयी कि अब वह क्या कहे, फिर भी वह घबरायी नहीं,—"दुहिता जब पिता के लिए प्रश्न होती है तब वह अपना उत्तर स्वयं खोज लेती है, किन्तु मेरी स्थिति ऐसी नहीं है।"

"एक नीतिज्ञ की पुत्री को ऐसा ही उत्तर देना चाहिए।"—झेंपभरी अल्प जीवी हँसी के साथ आचार्य बोले,—"अच्छा, क्या है तुम्हारा प्रश्न?"

"मनुष्य को अपने वचन का निर्वाह करना चाहिए या नहीं?"

"इस प्रश्न का उत्तर तो जगत विदित है। हर कोई दे सकता है। लगता है तुम किसी विशेष सन्दर्भ में पूछ रही हो। जब तक वह सन्दर्भ न जाना जाये, इसका कोई विशेष उत्तर नहीं दिया जा सकता।"

"....किन्तु सन्दर्भों में बदलने वाले प्रश्न सामयिक होते हैं और यह प्रश्न शाश्वत नीति से जुड़ा हुआ है पिताजी।"

"....तब इसका उत्तर भी शाश्वत है कि मनुष्य को अपने वचन की रक्षा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करनी ही चाहिए।''—आचार्य का मन इस तार्किक झमेले के लिए तैयार नहीं था। वे झुंझलाये,—''आखिर तुम चाहती क्या हो ?''

''मैं यही चाहती हूँ कि आपको अपने वचन की रक्षा करनी चाहिए।···· और जिन्हें मेरे उद्यान में श्वानों के भोजन के लिए भेजा है, उन्हें जिला देना चाहिए।''

''क्यों ? किसलिए ?··इसलिए कि मैं अपने वचन का स्वयं उल्लंघन करूँ ?''···आचार्य की आवाज तेज थी,— जयन्ती को भी आश्चर्य था कि देवयानी यह क्या कहने जा रही है। वह उसे देखती रह गयी।

''मैं आप के वचन का उल्लंघन नहीं, वरन रक्षा कराना चाहती हूँ। वे असुर सैनिक हैं और आप उन्हें जिलाने के लिए वचनवद्ध हैं।''

आचार्य ने नकारात्मक ढंग से सिर हिलाया,—''मैं यह जानता हूँ कि वे असुर हैं।····मैं मात्र उन्हीं असुरों को जिलाने के लिए वचनवद्ध हूँ जो देवासुर संग्राम में मारे जायेंगे।''—आचार्य ने तर्क दिया,—''···यदि कोई असुर तेरे अपहरण या हत्या के सन्दर्भ में मारा जाये, तो क्या मैं जिला सकता हूँ ?''

देवयानी क्षणभर के लिए मौन हो गयी, फिर बोली,—''आप कैसे कह सकते हैं कि वे देवासुर संग्राम में नहीं मारे गये हैं।····कोई आवश्यक नहीं कि यह संग्राम रणक्षेत्र में ही हो, वह इस आश्रम में भी हो सकता है।''

''आश्रम में देवासुर संग्राम !····यह तुम क्या कह रही हो देवयानी ?''

''····मैं ठीक कह रही हूँ आचार्य,····इसे आज नहीं तो कल आप भी अनुभव करेंगे।''—आचार्य के शान्त चित्त में चिनगारी छोड़कर वह एकदम लौट पड़ी।

इधर कच देवयानी के कक्ष में जाकर स्पन्दित असुर के व्रणों पर लेप लगाने लगा। इस कार्य में न तो उसने शर्मिष्ठा से कोई सहायता ली और न शर्मिष्ठा ने स्वयं ही कोई सहायता की। वह तो मन में सोचती रही कि यह कोई ऐसी औषध तो नहीं जो उल्टा प्रभाव करे और जीवन का जो चिह्न शेष है वह भी समाप्त हो जाये, क्योंकि कच उसके लिए अविश्वस्त था। उसे लग रहा था कि यह कुछ भी कर सकता है। विचित्र दुविधा में थी। पूछे, तो कैसे ? रोके, तो कैसे ?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्त में कच ही उसकी भुजाओं की मांस पेशियों पर हाथ फेरते हुए बोला,—"सचमुच यह योद्धा है।···यह लौह भुजाएँ कैसे मात खा गयीं?"—उसने शर्मिष्ठा की ओर देखा, पर वह कुछ कहने की स्थिति में नहीं थी, फिर भी जिज्ञासा मचल रही थी, उसने रास्ता निकाला,—"इस औषध का प्रभाव कब तक ज्ञात होगा?"

"अभी घड़ी भर में।"—कच ने सामान्य भाव से कहा! एक पल भर के बाद ही उसने शर्मिष्ठा को खोलने की चेष्टा की,—"लगता है, आप कुछ व्यग्र हैं, यह आपका आत्मीय है क्या?"

"नहीं तो।····मुझमें कोई व्यग्रता नहीं है!"—वस्तुतः उसकी घबराहट थोड़ी और बढ़ गयी।

"सन्ध्या की लाली किसी सुन्दरी के कपोलों पर जब रात की स्याही में बदलने लगती है, तब वह कुछ और नहीं, उसकी व्यग्रता ही तरल होकर पसर जाती है।—" कच ने बड़ी चतुराई से काव्य भाषा में नारी की कमजोरी पर हाथ रख दिया। अपने सौन्दर्य की प्रशंसा सुनना वह दुर्बलता है जिस पर कठोर से कठोर नारी भी दाँव खा जाती है।

निश्चित रूप में वह फिसलते हुए संभली,—"····आप कवि हृदय भी मालूम पड़ते हैं। आपका व्यक्तित्व तो अब तक विष से भरा कनक घट लगता था, अब लगता है उसमें कहीं कुछ अमृत भी है।"—ठीक उसी तरह की भाषा में उत्तर देकर शर्मिष्ठा ने उन सैनिकों के सम्बन्ध में अपनी जानकारी को बड़ी योग्यता से छिपाया।

"यदि मैं अमृत होता, यदि मैं किसी को जिला सकता,—" एक क्षण के लिए आचार्य की संजीवनी विद्या की ओर उसका मन गया। उसे अपने उद्देश्य की याद हो आयी। इसी समय उसे देवयानी के आने की आहट लगी। उसकी दृष्टि द्वार की ओर गयी और उसने बात बदल दी—

"मैं यदि न जिला सकूँ तो क्या हुआ आचार्य जी इसे अवश्य जिलायेंगे।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"कैसे जिलायेंगे ? उन्होंने तो इन्हें कुत्तों के भोजन के लिए छोड़ दिया है।"—देवयानी की ध्वनि में लपट थी।

"यह तो अमर्ष के समय की बात थी, तू उनसे फिर नहीं मिली ?"—कच ने बड़ी सहजता से पूछा—वह क्या कहे कि मैं गयी थी। यदि न भी कहे, फिर भी इसे नर्तकी से ज्ञात हो ही जायेगा। उसने सीधे-सादे ढंग से उत्तर नहीं दिया, वरन् बोली—"तुम्ही जाकर क्यों नहीं कहते।"

"यदि तुम्हारा आदेश है, तो मैं अवश्य कहूँगा।···उन्हें तो इन्हें जिलाना ही चाहिए। यदि वे असुरों को नहीं जिलायेंगे तो क्या देवताओं को जिलायेंगे।"—और फिर व्यंग्यात्मक हँसी हँसने लगा।·· इस बार शर्मिष्ठा ने उसे किसी दूसरी ही दृष्टि से देखा। पता नहीं क्यों आज कच उसे बहुत अच्छा लग रहा था।···· और उसने यह भी अनुभव किया कि वह मेरे कुछ निकट है।

अचानक रूग्ण की पलकों पर कुछ कम्पन हुआ। सबका ध्यान उसी पर केन्द्रित हो गया। अब उसके ओठ भी धीरे-धीरे हिले। "लगता है, यह कुछ कहना चाहता है ?"—शर्मिष्ठा बोली।

देवयानी ने निकट आकर पूछा—"कैसी तबीयत है ?"

"पानी"—मात्र एक शब्द। वह भी अस्पष्ट है,····और कच पानी के लिए दौड़ पड़ा।

उसके हटते ही देवयानी ने शर्मिष्ठा से पूछा,—"वह कुछ पूछ तो नहीं रहा था ?"

"नहीं। यही कह रहा था कि आप बड़ी व्यग्र मालूम होती हैं।"—फिर उसने अपनी बातों का विवरण मुस्कराते हुए दिया।

देवयानी गम्भीर थी और अधिक गम्भीर हो गयी,—"वह तुम्हारे रूप की प्रशंसा कर रहा था ?····पर ऐसे प्रशंसकों से हर नारी को सावधान रहना चाहिए।"

"मैं सावधान ही हूँ।"—शर्मिष्ठा ने कहा। उसके कपोलों पर एक सलज्ज लालिमा उभर आयी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यौवन के मद में चूर पौष शुक्ल पक्ष की यह आधी रात रसाल कुञ्जों में थरथरा रही थी। हिमानी समीर उसके तन में तीर-सा चुभता चला जा रहा था। उसने ऊपर की ओर देखा चन्द्रमा आकाश के बीचोबीच लगभग जम चुका है। एक्का दुक्का तारे ठिठुरे पड़े हैं। वह इनसे भी आँखें चुराकर बढ़ी चली आ रही थी। जब वह कच के प्रकोष्ट में पहुँची 'खट' की आवाज हुई। निश्चय ही यदि वह गहरी नींद में न होता तो जाग पड़ता, पर वह निर्द्वन्द्व खर्राटे भर रहा था।

चोर का जी आधा। 'खट' की आवाज होते ही दरवाजा वैसे ही लगाकर वह दबे पांव किनारे खड़ी हो गयी। वह एकटक सोते हुए कच को देख रही थी। उसका सारा तन मृग चर्म से ढका था। केवल मुख बाहर था और उस पर गवाक्ष से पड़ती ज्योत्स्ना पराग का आलेपन कर रही थी। उसे वह इस समय और भी आकर्षक लगा। जागते हुए व्यक्ति के तनाव और कलुष से छनकर सोता हुआ व्यक्तित्व मोहक हो जाता है। उसे लगा कुच कितना भोला है, कितना सहज है। वह कच नहीं, वरन् उसका सपना सो रहा है। वह उसके तल्प की ओर खींचती चली गयी।

उसका साहस नहीं हुआ कि वह उसका स्पर्श करे। वह तल्प के किनारे चुपचाप बैठ गयी। उसे एकटक देखती रही जैसे उसकी आँखें कच के रूप-रस के प्रत्येक विन्दु को चूस लेना चाहती हों। निश्चित ही उसके मस्तिष्क पर उसका मन छाता चला जा रहा था। फिर पता नहीं कैसे उसके हाथ कच की वक्ष की ओर बढ़े। यदि आज कोई उससे पूछे तो वह कुछ भी बता नहीं पायेगी, पर उस समय उसने ऐसी क्रियाएँ कीं जिससे वह जाग जाये। वह विश्लथ होकर उस पर झुक चुकी थी।

वह हड़बड़ा कर जगा तो सही, पर उसे लगा जैसे वह स्वप्न देख रहा है,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्योंकि इधर उसे ऐसे स्वप्न बहुत आते थे।....तब तक उस पुष्ट रसाल पर निढाल हो मल्लिका ढुलक पड़ी थी। "क्या करती हो जयन्ती ?.. आखिर कोई देखेगा तो क्या कहेगा ?.. लोग जानने लगे हैं कि मैं तुमसे अच्छी तरह परिचित हूँ, .. और यह बात प्रमाणित हो जायेगी तो क्या होगा ?"

"क्या आप जानते हैं, अब भी यह बात छिपी है ?"—उसकी सलज्ज ध्वनि काँप उठी।

अरे, यह तो जयन्ती की आवाज नहीं है ! उसके कान खड़े हो गये। नेत्र विस्फारित हुए। अब उसने पहचाना कि यह शर्मिष्ठा है। उसकी सांस कुछ तेज चल रही है। वस्त्र से आवेष्टित उसके मसृण उरोज जैसे फटकर बाहर निकल आना चाहते हैं।

स्वयं को मृगचर्म में समेटे हुए कच उठ बैठा और बड़े सहज भाव से बोला,—"....आखिर इस मध्यरात्रि में कैसे चली शर्मिष्ठा ?"

उसकी लोलुप आँखें अब भी उसे देखती रही, मानो वह कह रही हो—कितने भोले हो तुम, यह भी नहीं जानते कि मैं तुम्हारे पास क्यों आयी हूँ।....फिर भी वह चुप रही। बड़ी देर के बाद वह धीरे से बोली,—"आज मैं सो नहीं पायी।"

"क्यों ? स्वस्थ तो हो।"

"नहीं।" एक बार फिर उसकी दृष्टि से वासना छलकी। उस अन्धकार में भी कच को उसका अनुभव हुआ। पहली बार उसके नेत्रों ने किसी दूसरी दृष्टि से शर्मिष्ठा को देखा। नयनों से नयनों का उन्मीलन। प्रिय गोपन।

अचानक फिसलते हुए कच को जैसे किसी ने थाम लिया,—"कहाँ जा रहे हो। सम्पूर्ण देवसृष्टि की अस्मिता तुम पर दृष्टि लगाये बैठी है। वह एकदम सजग हुआ,—"लगता है, तुम्हारा मन स्वस्थ नहीं है ?....ऐसा क्यों हुआ ?"—उसने कहा।

"अपने मन से पूछो।"—शर्मिष्ठा बोली।

"मेरा मन तो कुछ नहीं कहता।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"झूठ बोलते हो।"—कितनी आत्मीयता थी उसके इस कथन में,—"....यदि नहीं कहता, तो तुमने मुझे रोका क्यों था? पिताजी के साथ जाने क्यों नहीं दिया। यदि नहीं कहता, तो मेरे आरक्त कपोलों पर सन्ध्या की कालिमा बढ़ती उस दिन तुम्हें कैसे दिखायी दी थी।"

कच के पास कोई उत्तर नहीं था। वह क्या कहता कि यह मात्र एक छलना थी, धूर्तता थी। उसके मन ने उसे तिरस्कृत किया,—"तुमने बड़ा गलत काम किया था, कच! अंगुलियां क्यों थमायी कि कोई तुम्हारी बाँह पकड़ने के लिए आगे आये।....जानते नहीं हो क्या? चोट खायी अभिसारिका नागिन हो जाती है। वह डँसकर उलटती नहीं, वरन् उलटकर डँसती है कि लहर नहीं आती।"

एक अपराधी की भाँति सब कुछ स्वीकार करने के अतिरिक्त उसके पास कोई चारा नहीं था। "सचमुच शर्मिष्ठा तू मेरे आकर्षण का केन्द्र रही हो, किन्तु मेरी भी एक सीमा है। मैं ब्रह्मचारी हूँ। अपने कर्त्तव्य और आश्रम की मर्यादा से बँधा हूँ।"

"आश्रम की मर्यादा? क्या कहते हो तुम?....आश्रम की मर्यादा जब आचार्य ने नहीं रखी। सुरा, सोम और जयन्ती से आलिप्त उसका मन जब आश्रम को वासना की क्रीड़ा भूमि बनाये है तब तुम ही क्यों इसकी पवित्रता ढोने का दायित्व लिए बैठे हो।"—यह एक अभिसारिका की फुफकार थी।

कच चुप हो गया। शर्मिष्ठा ने सोचा मैं उसके मन पर छाने लगी हूँ, पर वह चकित था कि इसने जयन्ती का नाम कैसे जान लिया। उनींदी अवस्था में की गयी मेरी भूल कहीं मुझे मंहगी तो नहीं पड़ेगी। सोचते हुए वह शर्मिष्ठा की ओर देखता रहा।

किन्तु शर्मिष्ठा ने सोचा, वह किंकर्त्तव्य विमूढ़ सा हो रहा है। वह और आगे बढ़ी। कच ने एक बार स्वयं को पुनः समेटा,—"राजकुमारी, मैं देवपुत्र हूँ। पिता ने अपने महान प्रतिद्वन्द्वी आचार्य के पास मुझे शिक्षा ग्रहण करने के लिए भेजा है।....मैं असुर राजकुमारी के सौन्दर्य के समक्ष स्खलित हो जाऊँ, क्या कहेगा संसार?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"जब इन्द्र ने अपनी पुत्री को असुर गुरु को समर्पित कर दिया तब उसने नहीं सोचा था कि संसार क्या कहेगा ?"

इतना सुनते ही कच सन्न रह गया। उसे काटो तो खून नहीं। मेरी छोटी सी भूल से उसने जान लिया कि यह इन्द्र की पुत्री है। उसे लगा उसकी योजना का प्रासाद लड़खड़ा गया है ! उसकी ईंटें खिसकने लगी हैं और बहुत जल्दी सब कुछ धूल में मिल जायेगा। कच अपने जीवन में पहली बार इतना घबराया था। अन्धकार था, अन्यथा उसके मस्तक पर प्रस्वेद चुकचुकाते दीख पड़ जाते।

एक ओर चिन्तन का उद्वेग था और दूसरी ओर व्यग्रता का धूम। वासना ठंडी पड़ने लगी। "क्या सोचने लगे ?"—शर्मिष्ठा ने पूछा।

"कुछ नहीं, कुछ नहीं।"—उसकी चेतना ने जैसे लड़खड़ाते हुए उसे थाम कर खड़ा कर दिया,—"आपको कैसे मालूम कि वह नर्तकी····?"

शर्मिष्ठा बीच में ही बोली,—"नर्तकी नहीं, जब तुमने उसे जयन्ती कहा तो जयन्ती ही कहो।"

"जयन्ती तो मैंने भूल से कह दिया था।"—कच के मस्तिष्क ने एक नया कथ्य गढ़ लिया था। उसने एक कृत्रिम हंसी अपने अधरों से उगायी और बोला,—"वस्तुतः बात यह थी कि जिस समय तू आयी उस समय मैं स्वप्न देख रहा था। मुझे ऐसा लग रहा था कि मैं इन्द्र के महल में हूँ और जयन्ती मेरे सामने खड़ी है। वह हँस रही है। उसी समय तुम्हारा आत्मीय स्पर्श मुझे मिला। ऐसी स्थिति में मेरे मुख से जयन्ती निकलना स्वाभाविक था।"—उसकी बनावटी खिलखिलाहट एक बार और उभरी,—"वस्तुतः तुम भ्रम में हो, वह जयन्ती नहीं है।"

"तुम्हारी बात मैं कैसे सत्य मानूँ, उसकी आकृति तो जयन्त से बहुत मिलती जुलती है।"

"तुमने जयन्त को देखा कहाँ ?"

"····क्यों ? वह मेरे यहाँ आया नहीं था ?"—उसकी प्रश्निक मुद्रा बदली,—"··तुम्हें शायद ज्ञात नहीं है कि जयन्त ही इन्द्र की रुग्णता का समाचार लेकर मेरे यहाँ आया था। तभी तो यह संग्राम स्थगित हुआ।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"मुझे तो ऐसा कुछ ज्ञात नहीं है।"—कच सब कुछ जानकर भी अनजान बन गया,—"·· किन्तु एक आकृति के कई लोग भी हो सकते हैं।····पर मेरा दृढ़ विश्वास है कि वह जयन्ती नहीं है।" वह जयन्ती है या नहीं, शर्मिष्ठा का मस्तिष्क इस विवाद में, और वह भी इस समय उलझना नहीं चाहता था। उसे तो इस पर ही आश्चर्य था कि वह इन्द्र की रुग्णता तक का समाचार नहीं जानता,—"कितना विचित्र है, तुम देवगुरु के पुत्र होते हुए भी देवों की राजनीति से अनभिज्ञ हो।" तर्क की चिन्तना के समक्ष वासना लुप्त हो जाती है। इस समय लगभग ऐसी ही स्थिति थी। बात राग से राजनीति पर आ चुकी थी,—"लगता है, अब आर्यावर्त विनाश के कगार पर है। असुर और सुर दोनों संस्कृतियाँ नष्ट होने के निकट हैं।····अब भगवान ही भला करे।"

"····क्यों, आप इतनी निराशा क्यों हैं?"

"निराश का कारण है, कच!"—अंधेरे में भी शर्मिष्ठा के आकृति के बदलते हुए भाव स्पष्ट हो रहे थे,—"··· तुम्हारे पिता ही जब अपने शिष्यों की राजनीति से अनभिज्ञ हैं, तब उस पर नियंत्रण क्या करेंगे? ··और इस एकाक्षी आचार्य को तो हमारे पिता ने विलासिता से जैसे खरीद ही लिया है। जिस देश के आचार्य राजाओं की मुट्ठी में हों, उस देश की मनीषा कुण्ठित हो जाती है।"

"हो जाये मनीषा कुंठित।···इससे देश का क्या बनता बिगड़ता है?"—कच ने उसे और कुरेदने की चेष्टा की। "राजा को मनीषा नहीं, अपनी राजनीति चाहिए।"

"तुम भी अद्‌भुत हो कच?"—शर्मिष्ठा झुंझलायी,—"एक महान नीतिज्ञ का पुत्र और नीतिशास्त्र का छात्र ऐसा सोच सकता है। मुझे इसकी कल्पना भी नहीं थी।····तुम्हारे तर्क के अनुसार मनुष्य को मस्तिष्क नहीं मात्र वैभव चाहिए।····जानते हो, मस्तिष्क के बिना मनुष्य और राष्ट्रीय सद्‌चेतना के बिना राजनीति विक्षिप्त और आत्मघाती होती है।"

कच शर्मिष्ठा की चिन्तन-सरणी से चकित था। उसने कभी सोचा नहीं था कि असुर संस्कृति में पली हुई एक युवती का भी मानसिक स्तर इतना ऊँचा हो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सकता है। उसके मस्तिष्क पर छायी जयन्ती की ज्ञान गरिमा उससे छोटी पड़ गयी थी।

"फिर भी हमें इन्हीं परिस्थितियों में जीना चाहिए।"—यह कच नहीं, ऊपर से ओढ़ा हुआ उसका दूसरा व्यक्तित्व बोल पड़ा।

"....जीना नहीं, मरना है।"—अयास शर्मिष्ठा ने कहा और उसके मुख से एक आह निकल गयी।

"आप मरने की कल्पना कैसे करती हैं? आप को तो ज़िलाने के लिए आचार्य संकल्पवद्ध हैं।"—कच हँसा। इस बार उसकी औपचारिकता 'तुम' से 'आप' पर उतर आयी थी।

"जिसका पिता उस खूसट एकाक्षी को समर्पित करने के लिए तत्पर हो, उसका जीना भी कोई जीना है?...हम से तो कहीं अच्छा है तुम्हारा इन्द्र जो पराजित होना स्वीकार करता है, पर अपनी पुत्री को आश्रम पर चढ़ाता नहीं।"

कच भीतर ही भीतर तिलमिला उठा। वह कैसे कहे कि इन्द्र भी अपनी पुत्री को अर्पित कर चुका है। आग समान रूप से दोनों घरों में लगी है। पर वह कुछ बोल नहीं पाया। उसे मात्र इतना सन्तोष था कि शर्मिष्ठा मेरे कथन पर विश्वास कर बैठी है। जयन्ती को पहचान कर भी भ्रमित हो गयी है।

वह कुछ सोचती रही। कच ने उसकी ओर देखा और बड़ी आत्मीयता से बोला,—"आपके प्रति मेरी सहानुभूति है।"

"...यह मात्र बनावटी है। कृत्रिम है।"—वह झुँझलायी। कितना अपनापन था उसकी इस झुँझलाहट में!

"...क्यों? ऐसा क्यों सोचती है?"

"क्योंकि तुम अपने मस्तिष्क से कभी यह निकाल नहीं सकते कि मैं असुर कन्या हूँ। वृषपर्वा की पुत्री हूँ। यह बात तुम्हारे संस्कार में भरी है। माँ की घूटी के साथ तुम्हें पिलायी गयी है।...तब तुम मुझसे सहानुभूति क्या करोगे? ...मुझे ध्यान से देखो मुझमें कोई असुरत्व का चिह्न है?"—इतना कहते हुए वह उत्तेजना में तल से खड़ी हो गयी। उसका अंशुक नीचे गिर गया। कच को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऐसा लगा जैसे आवेग में वह बिखर जायेगी। उद्दाम यौवन प्रगल्भ हो उठेगा। उसकी मानसिकता विचलित हो उठी,—"नहीं, नहीं। ऐसा कुछ नहीं है।" कच ने बड़ी व्यग्रता से कहा और उसका हाथ पकड़कर तल्प पर बैठा लिया।

"... यह तुम नहीं बोले हो कच, वरन् तुम्हारी व्यग्रता बोली है। ... और वह भी तुम्हारे ब्रह्मचर्य की व्यग्रता। उसे भय था कि मैं कहीं निर्वस्त्र न हो जाऊँ और मेरी निर्लज्जता तुमसे पुनः न कहे कि मुझे देखो और बताओ कहाँ मुझमें असुरत्व है। ... तुम्हारे ब्रह्मचर्य को भय था कि वह पराजित हो जायेगा।" फिर वह विक्षिप्तों जैसा हँसी,—"आत्मबल से हीन अपने इस ब्रह्मचर्य को तुम कब तक उठाये फिरोगे।—कच के पीठ का एक मादक स्पर्श करते हुए उसने उसी हँसी के बीच कहा,—"क्यों नहीं तुम इसे उठाकर फेंक देते ?"

"क्यों, तुम मुझे भी असुर बनाना चाहती हो।"—वह हँसा।

"क्या कहा, मेरे सम्पर्क से तुम असुर हो जाओगे ?"....अरे पगले, सुर के गर्भ से जन्मा व्यक्ति कभी असुर नहीं होता और असुर के गर्भ से उत्पन्न शर्मिष्ठा कभी सुर नहीं हो सकती।

"नहीं, ऐसी बात तो नहीं है।"

"यदि ऐसी बात न होती तो, यह एकाक्षी असुर हो गया होता।"

"असुर भले ही न हो पर असुरों का गुरु तो अवश्य ही है।"—कच हँसा। वह चाहता था कि शर्मिष्ठा जितनी जल्दी हो उसका पिण्ड छोड़ दे, इसलिए नहीं कि उसका सानिध्य उसे रुचिकर प्रतीत नहीं हो रहा था, वरन् इसलिए कि रात्रि का तीसरा प्रहर आरम्भ हो गया था। थोडी ही देर में आश्रम सुगबुगाने लगेगा। यदि किसी ने उसे देख लिया तो लोग क्या समझेंगे ?

किन्तु वर्षा की उन्मत्त सरिता और नारी की आसक्ति ने किस मर्यादा का ध्यान रखा है ? समय बहता रहा, शर्मिष्ठा जमी रही। वह तो कच से कहला लेना चाहती थी कि मनुष्य जन्म से नहीं, कर्म से असुर और सुर होता है। इसी सन्दर्भ में उसने अनजाने ही कच के मर्म को छू दिया था,—"यदि ऐसी बात होती तो सोम की गणना आज देवताओं में न होती ? क्या उसने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आश्रम के परिसर में घुसकर तुम्हारी माँ का अपहरण नहीं किया था ? क्या यह कार्य आश्रम और सुर की मर्यादा के अनुकूल था ?"

कच एकदम मौन हो गया। उसे लगा जैसे कोई उसे उधेड़कर उसका कलुष दिखा रहा हो। उसके भीतर दबी आग धुआँ उगलने लगी थी। फिर भी उसने अपने ऊपर बड़ा नियन्त्रण रखा और धीरे से बोला,—"···इसीलिए तो उस संसर्ग से जन्मा बुध नपुंसक हो गया।"

"····इसमें उस बेचारे बुध का क्या दोष था, कि उसे इतना बड़ा दंड भोगना पड़ा।···जिनके मर्यादाहीन पुंसत्व का परिणाम था उसका जन्म, वह तो आनन्दित हुए और नपुंसक हुआ बुध। क्या यही प्रकृति का न्याय है?···· जिसने आसुरी वृत्ति अपनायी वे आज भी सुरों की पंक्ति में है और मैं जन्म लेने मात्र से असुर हूँ।"

"तुम बार-बार अपने को असुर क्यों कहती हो ?·· लगता है, तुममें कोई कुण्ठा है।"

कुण्ठा,—वह सोचने लगी—"तो क्या कहूँ ?"

"सुर।"

"सच।"—उसकी वासना ने एक बार फिर कच को अपने आलिंगन पाश में जकड़ने की चेष्टा की, पर कच ने इस बार भी स्वयं को बचाया। अपनी पकड़ से निकलते शिकार को देखकर वह गुर्रायी,—"···तब तुम मुझे स्वीकार क्यों नहीं करते ?"

"अभी समय नहीं है।"—एक विवश मुस्कराहट कच के अधरों में दौड़ गयी।

"तुम कहते हो समय नहीं है, पर मैं कहती हूँ इसके उपयुक्त अब दूसरा समय नहीं हो सकता।····यदि होता तो मैं इस निशीथ में तुम्हारे पास न चली आती।"

"त ोतुम चाहती क्या हो ?"—कदाचित गला छोड़ाने की हड़बड़ी में उस ने पूछा।

"मैं चाहती हूँ कि हम तुम कहीं भाग चलें।···मैं उस बूढ़े के समक्ष समर्पित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं होना चाहती।"—कच को लगा कि जिसे वह कभी दुधारी असि समझता था वह सूखे पत्ते की भाँति झर जाने को तत्पर है।

"... किन्तु हम भागकर जायेंगे कहाँ शर्मिष्ठा ?" कच के स्वर की यह विवशता कृत्रिम थी या स्वाभाविक, इसे तो वही जाने।

"क्यों, इस विशाल सृष्टि का एक कोना भी ऐसा नहीं होगा जो हमें छिपा सके ?"

"...क्यों नहीं होगा ?....पर इससे लाभ क्या होगा ?"

"यदि कुछ नहीं हुआ, तो इतना अवश्य होगा कि मेरे और तुम्हारे सम्पर्क से एक ऐसी सृष्टि का उदय होगा जिसमें चाहे कुछ भी हो पर देवासुर संग्राम तो नहीं होगा।"

कच के मन को शर्मिष्ठा का यह कथन बड़ी गहराई से छू गया। उसे लगा, इतिहास के वर्तमान पृष्ठ को मानो शर्मिष्ठा ने बड़ी निर्भयता से फाड़कर देव और असुर दोनों संस्कृतियों के मुखों पर दे मारा हो।

वासना के दलदल से छिपा यह कमल अप्रत्याशित अवश्य था, परं असमय नहीं। शर्मिष्ठा अपनी परिस्थिति से टूट चुकी थी। उसका यौवन हिलोरें ले रहा था, पर कच को वह बहा नहीं पाया। कच ने पुरानी बात ही दुहरायी,—"तुम कह तो ठीक रही हो, पर इसके लिए प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।... यह समय उपयुक्त नहीं है।"—इतना कहकर उसने शर्मिष्ठा की ओर से मुख फेर लिया। गवाक्ष की ओर देखा। चाँदनी फीकी पड़ गयी थी। बादलों की विरल दाढ़ी उगाए रात का आकाश बूढ़ा हो गया था,—"वह देखो कौन है ?"—कच ने बाहर किसी की ओर संकेत किया। शर्मिष्ठा गवाक्ष की ओर बढ़ी। उसने कच के कन्धे पर हाथ रखकर बाहर झांका। दृष्टि उसकी दूर थी, पर मन कच से लिपटा जा रहा था। वह निकट से निकटतर हुई और कच को दबाती गयी। कच जितना दूर हो सकता था, हटता गया।

अब उसके चन्दन और अगरू की सुगन्ध कच में प्रवेश करने लगी थी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसका मन सुरभि पीता जा रहा था। अचानक उसके भीतर से किसी ने झटका दिया। कच ने उसे हटाते हुए कहा, "देखा, तुमने कौन है ?"

"यह तो कोई पुरुष मालूम होता है।"

"यह तो मैं भी देख रहा हूँ।....यदि नारी होती तो किसी प्रकोष्ठ में ..।"—इतना कहते हुए उसने मुस्कराते हुए शर्मिष्ठा की ओर देखा। दोनों खिलखिला उठे।

"लगता है, यह प्रवज्ञा जी ही हैं। मुझे कक्ष में न देखकर घबराये हुए इधर ही बढ़े चले आ रहे हैं।....अच्छा मैं चलती हूँ। तुम्हारे समय की प्रतीक्षा करूँगी।"—उसने धरती पर गिरा अशुंक उठाया और ओढ़कर चल पड़ी। जाते-जाते कहती गयी,—"देखो, समय की बात याद रखना, देखती हूँ, यह व्यवधान कब हटता है ?"

वह चली गयी, फिर भी वह थी। चन्दन-धूम की तरह वह उसके मस्तिष्क पर छायी थी। कितनी मादक थी वह धूम। कच उसमें खोने लगा। उसके मन में तर्क-वितर्क चलता रहा,—यह कोई छलना तो नहीं ? नीति कहती है कि सुन्दर नारी के चक्कर में जो पड़ता है वह चक्रवात में फँसे जलयान की तरह लुप्त हो जाता है। .. तो क्या वह चक्रवात थी ? काम सन्तप्त नारी एक चक्रवात ही तो होती है। .. तो क्या वह मात्र मुझे डुबोने आयी थी ?....इस आश्रम में और भी ब्रह्मचारी हैं। काम की तृप्ति तो उनसे भी हो सकती थी।....तो फिर वह उनके पास क्यों नहीं गयी। यह मान लिया जाय कि उसका झुकाव साधारण की ओर सम्भव नहीं ? वह राजकुमारी है, उसका अहं देवगुरु के पुत्र के नीचे नहीं उतर सकता, तब यहाँ असुर गुरु के भी तो पुत्र हैं—त्वष्टा, वरुत्री, षण्ड आदि की आकृतियाँ उसके मानस पर एक साथ तैर गयीं।—तो क्या मुझमें उनसे अधिक आकर्षण है ?—सौन्दर्य के गर्व की मदिरा में वह स्वयं को डूबने लगा था; साथ ही उसे अनुभव होने लगा कि वह छलक कर शर्मिष्ठा पर भी पड़ चुकी है, तभी तो वह उन्मादिनी इस शीत निशीथ में चली आयी थी।....तो क्यों नहीं मैं उसे स्वीकार करूँ और एक ऐसी संस्कृति को जन्म दूँ जिसमें देवासुर संग्राम की कोई सम्भावना ही न हो।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"नहीं, नहीं, नहीं।"—सहस्रों कण्ठों की ध्वनियाँ उसके मस्तिष्क में एक साथ टकरायीं। उस अन्धकार में हजारों आकृतियाँ उसकी ओर बढ़ती ज्ञात हुईं। उसने अपना सिर बड़ी तेजी से थाम लिया। अब एक आवाज गूँज रही थी, —"तुम अपने कर्त्तव्य को याद करो कच! तुमने सुरों के अस्तित्व की सुरक्षा का संकल्प लिया है।·· रणक्षेत्र में गिरा हुआ अश्व और संकल्प च्युत प्राणी फिर कभी खड़ा नहीं होता।"

कच विवेक के स्तर पर आने लगा। आकृतियाँ लुप्त होने लगीं। भावुकता का उफान शान्त हो गया। उसके मन ने उसे सचेत किया,—"अब वह जयन्ती को लगभग पहचान गयी है। इसकी सूचना जयन्ती को दे देनी चाहिए, नहीं तो धोखा होगा। बहुत बड़ा धोखा।"

इस घटना के पहले यों तो कई घटनाएँ हुई थीं, पर उनमें एक महत्वपूर्ण थीं जो मेरे कलम के दायरे से छूट गयी थीं।

'उग्र' तो उपचार से ही स्वस्थ हो गया था, पर आचार्य को उस सैनिक को जिलाना पड़ा। देवयानी की विजय हुई। जयन्ती खुलकर विरोध कर भी नहीं पायी। कच की प्रत्यक्ष भूमिका एक सामान्य दृष्टा की थी। उसने प्रछन्न रूप से भी उसके जिलाने का विरोध नहीं किया। एक तो जब सहायक सेनापति स्वयं स्वस्थ हो गया, तब मात्र सैनिक को मारे जाने से क्या लाभ? दूसरे अच्छा होते ही 'उग्र' आश्रम से अचानक गायब हो गया था। कुछ रहस्य जाना नहीं जा सका था। आचार्य भी जानना चाहते थे कि निर्दोष नर्तकी को उन लोगों ने क्यों मारा।

प्राण आने पर भी वह अस्वस्थ ही पड़ा रहा। उपचार चलता रहा। इस बीच उससे कोई पूछताछ नहीं हुई। वस्तुतः ऐसी परिस्थिति बनायी गयी जिससे कोई उससे मिल ही न सके। उसे प्रवज्ञा के कक्ष में ही रखा गया था। देवयानी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वहाँ जाती थी, घण्टों रहती थी। एक दिन कच भी उस कक्ष की ओर बढ़ गया। वहाँ शर्मिष्ठा और देवयानी किसी गम्भीर मंत्रणा में सन्नद्ध थीं। कच को देखते ही वह चुप हो गयीं और यह चुप्पी काफी देर तक बनी रही। उसने समझ लिया कि उसकी उपस्थिति उन्हें भारी पड़ गयी है। इसके बाद वह फिर कभी उस ओर नहीं गया। हाँ, एकान्त में उसने जयन्ती से एक दिन अवश्य पूछा,—"आचार्य कभी उस सैनिक के सम्बन्ध में कुछ नहीं कह रहे थे ?"

"मुझसे तो नहीं, हाँ देवयानी से अवश्य कह रहे थे कि अस्वस्थ सैनिक आश्रम से गायब कैसे हो गया ?...अवश्य ही उसे कोई यहाँ से ले गया होगा।"

"तब देवयानी क्या बोली ?"

"वह चुप थी। स्वयं आश्चर्य व्यक्त कर रही थी।"—फिर अचानक उसे याद आया—"हाँ, हाँ, एक बात और। आचार्य ने बड़ी गम्भीरता से पूछा था,—तू तो कहती थी कि अब आश्रम में ही देवासुर संग्राम होगा। क्या यह उसी का अंग तो नहीं है ?"

"....तब क्या कहा देवयानी ने ?"

"बड़ी अन्यमनस्कता से बोली थी,—हो सकता है।"

कच का माथा ठनका, वह बोला,—"फिर आचार्य ने कुछ नहीं पूछा ?"

"वह चुपचाप चली गयी थी। .. और जब इस सन्दर्भ में वह कुछ पूछते या कहते भी तो वह इधर-उधर की बातों में टाल जाती।"—इसी क्रम में जयन्ती ने यह भी सूचना दी थी कि शर्मिष्ठा से भी आचार्य ने कई बार पूछा था, पर वह न कुछ बोली थी और न कुछ बोलती है। बड़ी विचित्र है वह। आचार्य के पास जाती है और घन्टों बैठती है, पर कभी कुछ नहीं बोलती। मूर्तिवत बैठी रहती है और जब वह कहते हैं जाओ, उठकर चुपचाप चल देती है। लगता है किसी तनाव में रहती है। .. है कितनी सुन्दर, पर सदैव बाल बिखेरे अव्यवस्थित सी दिखाई देती है, जैसे किसी संत्रास से बँधी हुई लाकर यहाँ छोड़ दी गयी हो।"

"कभी मेरे सम्बन्ध में कुछ नहीं पूछती ?"

"मुझसे यों ही बात बहुत कम करती है।... एक दिन पूछा अवश्य था, तुम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कच को कब से जानती हो ?—मैंने कहा,—"...बस जब से यहाँ आयी हूँ।"

कच हँस पड़ा।

कुछ दिनों बाद वह सैनिक जब पूर्ण स्वस्थ हो गया, आचार्य के समक्ष लाया गया। शर्मिष्ठा, कच, देवयानी और आश्रम के बहुत से लोग उस समय उपस्थित थे। आचार्य ने पूछा,—"पूर्ण स्वस्थ हो ?"

उसने स्वीकारात्मक ढंग से सिर हिलाया।

"तब चुपचाप भाग क्यों नहीं गये, जैसे तुम्हारा साथी भाग गया था।—आचार्य का यह व्यंग्य उसे ही नहीं बहुतों को बड़ी गहराई तक चुभ गया। प्रवज्ञा शर्मिष्ठा और देवयानी की आकृतियाँ 'फक' पड़ गयीं। पर सैनिक कुछ नहीं बोला। सिर नीचा किये था, नीचे किये ही रहा। केवल कनखियों से देवयानी की ओर देख रहा था।

"उसे देख क्या रहे हो ? उसी की कृपा से जीवित हो, अन्यथा अब तक श्वानों के उदर में चले गए होते। उसका अनुग्रह स्वीकार करो।"...तब उसने झुक कर देवयानी के चरण छूए और एकदम लौट पड़ने के लिए मुड़ा।

"चले कहाँ ? मैंने किसी मतलब से तुम्हें बुलाया था।"—आचार्य ने पुनः उसे रोकते हुए पूछा,—"तुमने इस नर्तकी की हत्या करने की चेष्टा क्यों की थी ?"

उसने फिर प्रवज्ञा की ओर देखा और उसकी दृष्टि पुनः देवयानी की ओर सरकी। सम्भवतः वह सकपकाया हुआ सा सोच रहा था कि क्या उत्तर दें।"—"इधर-उधर क्या देखते हो ?-जो कुछ जानते हो सत्य-सत्य कहो"—आचार्य के सिंह गर्जन के समक्ष वह मृग सा काँप उठा,—"वह तो वे आदिवासी थे जिन्हें हम मारना चाहते थे।"

अब आचार्य की प्रश्नवाचक मुद्रा ने जयन्ती को देखा। वह बोली,—"क्यों ? तुमने यह नहीं कहा था कि यही वह देवकन्या है। यह जीवित न बचने पाये।"

"नहीं, मैंने नहीं कहा था।"—उसकी दृष्टि धरा में गड़ी थी, गड़ी रह गयी।

"...तब किसने कहा था ?"

"हमारे नायक ने कहा था।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"...और वह भाग गया।"—आचार्य क्रोध से काँप रहे थे। देवयानी ने स्थिति संभाली,—"इन लोगों ने समझा यह देवकन्या है और इसके साथ आने वाले देव सैनिक हैं।....फिर क्या था, स्वाभाविक वैर भड़क उठा।...सैनिक नर्तकी पर आक्रमण कर बैठे।..यह सब संयोग था तात! इसमें किसी का दोष नहीं।"

"....दोष तो किसी का नहीं था, मैं यदि मारी जाती और मेरा अंगभंग हो जाता तो?"—जयन्ती के स्वर में अव्यक्त काम की सुगढ़ इठलाहट थी।

देवयानी को यह अच्छा नहीं लगा। उसका अहं एक परायी लड़की को उसका विरोध करते हुए देखना भी पसन्द नहीं करता, पर वह चुप ही रही, खून का घूँट पीकर रह गयी। उधर आचार्य जयन्ती की बात सुनकर निश्चय ही भभक उठते, यदि कच ने मुस्कराते हुए वातावरण को हल्का न किया होता। उसने जयन्ती को ही सम्बोधित करते हुए कहा,—"अरे, तुम्हें कुछ होता थोड़े ही। यदि कुछ होता तो आचार्य जी जिलाने के लिए तो थे ही।"—उसने आचार्य जी को सम्बोधित करते हुए कहा,—"....जाने दीजिए। अब जो कुछ हुआ, सो हुआ।"

कच के कहने का ढंग ऐसा था कि लोग हँस पड़े।...पर यह आचार्य को अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कच को वह्नि विच्छुरित नेत्रों से देखा और बोले—"सीमा से बाहर होने की चेष्टा मत किया करो।"—पूरे वातावरण पर चुप्पी का पहाड़ टूट पड़ा।

"अच्छा जाओ। यदि कभी ऐसी घटना हुई तो अच्छा नहीं होगा।"—आचार्य ने कहा और वे अपने उटज में लौट आये। अन्य लोग भी हटने-बढ़ने लगे।

कच आज फटकारा गया था। वह मुंह लटकाये एकाकी चला जा रहा था पर वह भीतर से दुःखी नहीं था। कम-से-कम आज लोग समझ गये होंगे कि जयन्ती से मेरा सम्बन्ध नहीं है। उसे स्वयं पर आश्चर्य था, क्षोभ था और प्रसन्नता भी थी कि वह दुहरी जिन्दगी जी रहा था, किन्तु वह इसे अच्छी तरह जानता था कि दुहरी जिन्दगी जीना दो नाव पर एक साथ चढ़ना है। जब तक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पैरों में शक्ति और सामर्थ्य है तब तक नावें समानान्तर रहेंगी, सन्तुलन बना रहेगा।··· पर कब तक यह संतुलन बनाये रखा जायेगा ? एक न एक दिन तो उसे गिरना ही पड़ेगा।···और तब संजीवनी का क्या होगा ?"—वह एकदम ठिठक गया। उसने देखा, एक शशक उसके पैरों के पास से निकल गया।

अचानक दो मादक खिलखिलाहटों ने पीछे से उसका स्पर्श किया। उसने मुड़कर देखा, शर्मिष्ठा और देवयानी हँस रही थीं।—"कम से कम देखकर चला करो। ··· यदि वह शशक दबकर मर गया होता तो ?"

"···तो तुम पिताजी से उसे जिलवा लेती।"

"मेरे पिताजी पशुओं को नहीं जिलाते।"

"यही तो मेरे लिए गहरी चिन्ता का विषय है।"—उसका स्वर गम्भीर ही था, पर देवयानी जोर से हँस पड़ी। शर्मिष्ठा उसे देखती रह गयी। उसने कच के कथन का सन्दर्भ ही नहीं समझा।

दिन डूबने की तैयारी में था।

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

□□□

आज अष्टमी थी । अनध्याय था ।

अग्निहोत्र के बाद ही वह प्रातः भ्रमण के लिए सर्पिली पगडण्डी पर निकल पड़ा था । बगल से देवदारु की पंक्ति एक काली रेखा की भाँति पर्वतीय ढलान पर रेंगती चढ़ती चली गयी थी । बाल रवि की किरणें उन विशाल वृक्षों के पत्तों से टकरा कर टुकड़े-टुकड़े होकर धरती पर बिखर रही थीं । कच का मन उन्हें बटोरता और उसका तन उसे भोगता आगे बढ़ रहा था । उसने देखा एक उत्फुल्ल मल्लिका देवदारु से लिपटी है । ठीक इसी के नीचे पत्थर को फोड़कर एक धारा वह रही है, जो लगभग एक योजन के बाद नदी का रूप ले लेती है । कच को लगा कि उसके भीतर भी कोई धारा बहुत पहले फूटकर नदी का रूप ले चुकी है । वह धारा है उसके वायवीय और अन्तीन्द्रिय वासना की । वह नदी है उसके अभुक्त काम की ।

वह बहुधा वहाँ तक भ्रमण करता चला जाता है, पर उसे छूता नहीं है । उसे भय है कि उसका ऊपर से ओढ़ा हुआ ब्रह्मचर्य कहीं गीला न हो जाये । मन तो यों ही भींगा रहता है । ब्रह्मचर्य को लपेट कर वासना में गोते लगाना और वासना में डूबते हुए ब्रह्मचर्य को अछूता रखना कितना कठिन है । फिर भी वह असि की धार पर चल रहा था ।

रूपसी नारी प्रकृति का सुन्दरतम वरदान भी है और अभिशाप भी । मन से वह इन वरदानों को ग्रहण करता है और तन से इन अभिशापों को दूर रखता है । मन अनेक बार आलिंगन पाश में आवद्ध हुआ है, पर तन अस्पृश्य ही रहने की चेष्टा करता रहा है, भले ही उसे आंशिक सफलता मिली हो । फिर भी वह अद्भुत है । परिस्थितियों ने उसे ऐसे मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया है, जहाँ जयन्ती

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है, देवयानी है, और है शर्मिष्ठा। वह इन रूप-जालों में उलझता है, पर उसकी चेतना की कटार उसे छिन्न-भिन्न करके अभी तक तो निकालती ही गयी है, पर उस समय क्या होगा जब यह कटार पुष्प की सूखी पंखुड़ियों की भाँति झड़ जायेगी ? भौंरा फूल के काँटों को तो झेल लेगा, पर उस समय क्या होगा जब हर फूल के हाथ में उसे एक तलवार दिखायी देगी।

कितना कठिन है यह जीवन ? आसक्तियों के बीच अनासक्ति का। स्पृहाओं को भोगते हुए निष्पृह और निर्लिप्तता का।

क्या यह स्वयं में एक तपस्या नहीं है ? एक साधना नहीं हैं ? पर यह सब किसलिये ?....वह सोचता हुआ बहुत आगे बढ़ जाता है। अपने में खोया हुआ, भीतर से छटपटाता, बाहर से सोया हुआ कि आदिवासियों की अटपटी आवाज में कोई पुकारता सुनायी पड़ता है।

उसे लगता है, आवाज तो पहचानी है, पर यह है कौन ?—वह आगे बढ़ता है। कोई आदिवासी उसे आता दिखायी देता है। ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ता आता है, उसकी मुस्कराहट स्पष्ट होने लगती है, और एक क्षण ऐसा भी आता है जब उसके मुख से अनायास निकल पड़ता है,—"अरे, यह तो अतिबल है।" "तुम यहाँ कैसे ?" उसकी जिज्ञासा व्यग्र हो उठी।

उसने बताया कि पास के ही ग्राम में हमलोग रह रहे हैं। उसने उग्र द्वारा जयन्ती पर आक्रमण और उससे रक्षा की भी चर्चा की। "... तो क्या असुर सैनिक इधर आते रहते हैं ?"—कच ने पूछा।

"नित्य ही।"—उसने बड़े विश्वास के साथ कहा,—"हो सकता है कि वह इस समय भी किसी रूप में उपस्थित हों।....इतना ही नहीं शुक्राचार्य के तीनों पुत्रों का भी चंक्रमण होता रहता है।"

"इसका तात्पर्य है कि युद्ध की हर क्षण आशंका बनी रहती है।"—कच सोचने लगा,—"यह आशंका जीवन को कुतरती चली जाती होगी ?"

"हमें आशंका में ही नहीं, युद्ध के पूरे तनाव में जीना पड़ रहा है।"—उसने कहा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"क्यों ? क्या बात है ?"

"नित्य ही वृषपर्वा के चर महाराज का स्वास्थ्य जानने के लिए पहुँचे रहते हैं।"

"....और महाराज की अस्वस्थता उन्हें शय्या से उठने नहीं देती होगी।"—कच खिलखिला पड़ा। उसका व्यंग्य प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में उड़ता निकल गया।

अतिबल ने बताया कि महाराज बड़े ही व्यग्र हैं। वह सोचते हैं कि यह परिस्थिति अधिक दिनों तक नहीं रह सकतो। लगभग सभी को पता चल गया है कि सुरपति की अस्वस्यता मात्र युद्ध टालने का एक बहाना है।

"....और वह भी अस्वस्थ बहाना है।"—कच इस बार फिर जोर से हँस पड़ा था। उसकी इस हँसी पर अतिबल हँस रहा था,—"आप इस परिस्थिति पर भी हँस रहे हैं ?"

"कभी-कभी आँखों से आँसू न निकले इसलिये भी हँसना पड़ता है।"—कच की मुस्कराहट के भीतर से एक सत्य उभरा,—"मैं जिस परिस्थिति में हूँ, उसमें हर क्षण हँसी अधरों पर चिपकाये रहनी पड़ती है।....आशंका, भय और चारित्रिक फिसलन के वातावरण में यही तो एक सम्बल है मित्र, जो ढाल के साथ-साथ तलवार का भी काम करता है।"

कच की मानसिक स्थिति का अतिबल को अब अनुमान लग गया था कि आप को अपने उद्देश्य में कितनी सफलता मिली, पर वह स्पष्ट पूछ न सका। "राजपुत्री का क्या हाल है ?"—उसने दूसरे सिरे से बात आरम्भ की।

"वह तो लगभग अपने उद्देश्य में सफल है।"

"....और आप ?"

"क्या कहूँ ? सफलता और असफलता के बीच में लटक रहा हूँ।"—कच पुनः मुस्कराया और फिर बोला,—"....संजीवनी विद्या आचार्य किसी को दे नहीं सकते।...उसे तो छीनना ही पड़ेगा।"

"जब आप निष्कर्ष पर पहुँच चुके हैं, तब विलम्ब किस बात का ?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"आप क्या समझते हैं कि वह कहीं रखी वस्तु है, जिसे मैं उठाकर भाग चलूँ।"—वह फिर हँसा और शीघ्र ही गम्भीर हो गया,—एक अवसर आया था, पर सफल न हो सका।

"कब ?" अतिबल को लगा कि महाराज तक पहुँचाने के लिए उसे कुछ समाचार मिल जायेगा। कच ने बताया भी,—"····जब तुम लोगों ने उग्र के साथ ही उस असुर सैनिक को भी मार डाला था। उग्र तो उपचार से जी गया था, पर सैनिक को आचार्य ने अपनी विद्या से जिलाया। ··· जब कि आचार्य उसे जिलाने के पक्ष में थे नहीं।"—इसके बाद कच ने उन परिस्थितियों पर विस्तार से प्रकाश डाला और बताया कि मन से पक्ष में न होते हुए मैंने भी उसे जिलाने का आग्रह किया था। मात्र इसलिए कि इस विद्या के रहस्य की कोई डोर शायद पकड़ में आ जाये।

"·· इतना सब करने पर भी सफलता हाथ नहीं लगी ?"—अतिबल की जिज्ञासा बोल पड़ी।

"····क्या करता ? विद्या के प्रयोग के समय मैं स्वयं आचार्य की सेवा में रहना चाहता था, पर उन्होंने वहाँ से सबको हटा दिया।"—इस बार उसकी आकृति पर सदा खेलनीवाली मुस्कराहट लगभग खो गयी थी।

"····इसका तात्पर्य है कि आपकी सफलता के लिए आश्रम के बाहर मारने और मरने का क्रम चलता रहे।"—अतिबल ने कहा।

"नहीं, नहीं।····बिलकुल नहीं। इससे युद्ध भड़क सकता है।····और इस बार यदि युद्ध भड़का तो देवता कहीं के नहीं रह जायेंगे।"—कच का स्वर चेतावनी से भरा था।

"तब महाराज के पास क्या सूचना भेजी जाये ?"

"महाराज को कहला दीजिये कि कुछ दिन और इसी तरह शय्या की कारा में बन्द रहें। मैं प्रयत्न में लगा हूँ। मेरा अभ्यास चल रहा है।"

अतिबल का आश्चर्यान्वित होना स्वाभाविक था। जब विद्या ही नहीं, तब उसका अभ्यास क्या ? अंततः उसने पूछ ही लिया,—"किसका अभ्यास कर रहे हैं आप ?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कच मुस्कराया। उसने चारो ओर देखा कोई सुन तो नहीं रहा है; तब उसने धीरे से कहा,—"प्राणायाम का।"

"प्राणायाम ?"—इससे उस विद्या का क्या सम्बन्ध है ?"

"इसे तो समय बतायेगा।....पर आप इस रहस्य का कहीं उद्घाटन मत कीजिएगा।"

अतिबल चला तो गया, पर उसके नेत्रों के समक्ष कच की रहस्यमय हँसी अब भी नाचती रही।

सामने अन्धकार हिलोरे ले रहा है। मेघों का मृगचर्म ओढ़े जाड़े की रात ठिठुरी पड़ी है।

देवयानी सो नहीं पायी थी। कल से कच का पता नहीं है। कहाँ गया ?—कुछ मालूम नहीं। कहाँ और किस स्थिति में होगा ?—कुछ ज्ञात नहीं।

रात गाढ़ी होती जा रही है। शीत ठिठुरती जा रही है। बादल जमते जा रहे हैं। वे विशाल और विकराल काल-बाज की तरह अपने डैनों से धरती को ढँक लेना चाहते हैं। बीच-बीच में ये डैने फड़फड़ा उठते हैं। लगता है, उपलवृष्टि होगी। मृगचर्म से लिपटी देवयानी काँप उठती है—"प्रकृति कितनी भयावह हो गयी है। ऐसे में कहाँ होगा कच ? ऐसा तो नहीं कि वह चुपचाप आश्रम छोड़कर चला गया हो ? नहीं, नहीं। ऐसा नहीं हो सकता।... आखिर जायेगा क्यों ? यहाँ उसे कोई कष्ट तो नहीं था। आचार्य ने कभी उसे जाने के लिए कहा भी नहीं। फिर जायेगा क्यों ? उसने मुझे स्वीकार करने का वचन दिया था। फिर क्यों चला गया ? वह भी अकेले ? मुझे छोड़कर।... क्या मैं आश्रम छोड़कर नहीं जा सकती थी ?"—वह सोचती रही।

अचानक उसे कच के ही स्वर में एक भयानक आवाज सुनायी पड़ी,—"नहीं, नहीं। मैं तुम्हें लेकर नहीं आ सकता, क्योंकि मैं जहाँ पहुँच गया हूँ वहाँ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तुम नहीं पहुँच सकती ।····विश्वास करो, तुम नहीं पहुँच सकती, बिल्कुल नहीं पहुँच सकती । एकदम नहीं ।"—आवाज तेज होती गयी और अंत में एक भयानक अनुगूंज में बदल गयी । देवयानी अप्रत्याशित आशंकाओं से घिरने लगी । वह अचानक उठ बैठी । इसी समय उसके द्वार का एक पट खुल पड़ा । निश्चित ही यह बर्फीली हवा का झोंका था, पर उसे लगा, कच प्रवेश कर रहा है । वह झंझा में झकझोरी गयी तरणी की तरह काँप उठी और तल्प से उठकर अचानक खड़ी हो गयी । फिर हवा का तेज झोंका आया । दूसरा भी द्वार खुल गया । उसने अनुभव किया कि बाहर कोई खड़ा है । वह द्वार की ओर लपकी ।

देवयानी के बाहर निकलते ही वह उसके पैरों पर गिर पड़ी,—"मुझे क्षमा करें ऋषिकुमारी ।"—फिर वह कुछ बोल नहीं पायी, जैसे उसके गले में कुछ अटक गया हो । बादल गड़गड़ाया । बिजली चमकी । सत्य और स्वप्न का अन्तर मिट गया । देवयानी ने देखा, नर्तकी सामने खड़ी है ।

"क्या बात है नर्तकी इस असमय में कैसे ?"—देवयानी ने पूछा ।

वह अब भी सकपकायी थी । स्वयं को समेटते हुए बोली,—"वह कुशल से तो है ?"

शायद एक क्षण का समय लगा होगा, सन्दर्भ समझने में । देवयानी ने समझ लिया कि कच के सम्बन्ध में ही इसकी व्यग्रता इसे यहाँ तक खींच ले आयी है । उसने बड़ी आत्मीयता से कहा,—"मैं तो उसके सम्बन्ध में कुछ नहीं जानती ।"—इतना सुनते ही वह लगभग लड़खड़ायी । यदि उसे संभाला न गया होता, तो वह निश्चित गिर जाती ।

उसे मानो उसकी बातों का विश्वास न हो रहा हो । वह एकटक देवयानी को देखती रही । उस अंधेरे में स्पष्ट लग रहा था कि आकाश से कहीं अधिक घने बादल उसके नेत्रों में छाये हैं ।

"सचमुच मुझे कुछ मालूम नहीं है । किन्तु दो दिनों से उसका कहीं पता न चलना स्वयं में आश्चर्यजनक है ।"—देवयानी ने कहा ।

जयन्ती के नेत्रों के मेघ बरसने लगे ।—"मैंने एक दुःसह स्वप्न देखा है ।"—वह सिसकन के बीच मात्र इतना बोल सकी ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देवयानी ने उसे ढाढ़स बँधाते हुए कहा,—"तुम घबराओ नहीं। मैं स्वयं उसके लिए व्यग्र हूँ।"

"मैं और कुछ नहीं चाहती बहन, वह कहीं भी रहें, किसी का भी होकर रहें, पर प्रसन्न रहें।"—उसकी सन्तप्त व्याकुलता नारी का शुद्ध अमांसल और आत्मिक प्रेम ही व्यक्त कर सकी। वह क्षणभर के लिए देवयानी से लिपटकर सिसकने लगी। ममता और संवेदना का संस्पर्श पाते ही अस्रुधारा शालीनता का बाँध तोड़ देती है। अब वह फूटकर रोने लगी थी। देवयानी भी द्रवित हो उठी।

दोनों के नेत्रों में बाढ़ थी और दोनों के नेत्रों में तैर रही थी मात्र एक आशंका—किसी ने उसे मार तो नहीं डाला। एक के लिए उसका प्रेमार्द्रस्वप्न ध्वस्त हो गया था और दूसरे के लिए ऐसे स्वप्न के साथ ही देवसृष्टि के अस्तित्व की सारी आशाओं पर पानी फेर दिया गया था।

मेघ अब भी गड़गड़ा रहे थे और वर्षा शुरू हो गयी थी। सान्त्वना देकर देवयानी ने उसे बिदा किया। वह भींगती हुई अपने उटज की ओर चली। देवयानी तब तक उसे देखती रही जब तक काले धब्बे में बदलकर अन्धकार उसे निगल नहीं गया। उसके ध्वनि की अनुगूंज अब भी देवयानी से लिपटी रही—"वह कहीं भी रहे, किसी का भी रहे, पर प्रसन्न रहे।"—कितनी निस्पृह हितेच्छा है। इस सीमा तक वही नारी सोच सकती है जो उसके बहुत निकट पहुँच चुकी हो। मैं भी तो उसके निकट हूँ, पर मेरी निकटता और उसकी निकटता में कितना अन्तर है। ⋯ मेरी पहुँच तो कच की शरीरयष्टि तक ही है, उसके मांसल सौन्दर्य तक। ⋯ किन्तु यह नर्तकी उसके भीतर छिपी कच की सहज आत्मा से एकाकार हो चुकी है।—देवयानी का अन्तर्मंथन चलता रहता है—आखिर यह है कौन? किसी पुरुष के सम्बन्ध में ऐसे विचार या तो उसकी माता के या फिर सती साध्वी के ही हो सकते हैं। माता की सम्भावना नहीं। ⋯ ऐसा आत्मिक प्रेम पालती हुई भी वह आचार्य के प्रति समर्पित कैसे है? कुछ बात समझ में नहीं आती। ⋯ क्या ऐसा नहीं हो सकता कि मन कहीं गिरवी हो तन कहीं वेचा जा रहा हो। उसकी आह में कोई हो, बाँह में कोई हो। वह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जयन्ती की विवशता पर सोचती रही, सोचती रही। बादल गरजते रहे। बिजली चमकती रही।

हवा के झोंके से वह इस बार अचानक झकझोर दी गयी। उसकी विचार श्रृंखला एक दूसरी ओर ही मुड़ी। जिस मानसिकता में नर्तकी जी रही है कहीं कच भी उसी मानसिकता में तो नहीं। उसका मन नर्तकी के पास हो और मैं मात्र तन पर ही अधिकार जमाये बैठी रहूँ।···मन के बिना तन! ताप के बिना अग्नि! स्पन्दन के बिना जीवन!—व्यर्थ है, बेकार है। एक चरण है जिसमें गति नहीं, एक वरण है जिसमें स्वीकृति नहीं।···तो क्या वह अस्वीकृति की स्थिति में ही स्वीकार की जा रही है।'—देवयानी सोचती द्वार पर ज्यों की त्यों खड़ी रही। हवा चीखती रही। बादल बड़बड़ाते रहे। एक हाहाकार भी उसके भीतर घुमड़ने लगा था।

अब ओले पड़ने लगे थे। हड्डियों तक को छेदकर भीतर घुस जाने वाली बर्फीली हवा और उपलों की मार से वह भीतर आ गयी और तल्प पर ढुलक पड़ी। फिर वही अनुगूँज,—"वह कहीं भी रहे, प्रसन्न रहे।"—क्या उस नर्तकी ने यह तो नहीं समझ लिया कि वह मेरे ही पास है और मैं उसकी रक्षा करूँ?"

"उस नर्तकी ने चाहे जो सोचा हो, पर तुमने मुझे क्या सोचा?"—अन्धकार में जैसे कच की खिलखिलाहट बिखर गयी।

वह फिर व्यग्र हो उठी, उसके मुख से निकला,—"तुम्हें तो मैंने अपना ही सोचा है।"

"·· तब तुम मेरी ओर देखो।"—एक चीखती हुई नीरवता के भीतर रक्त से लथपथ कच का क्षतविक्षत तन देवयानी की आँखों के सामने तैर गया,—"·· अब तुम मेरी व्यवस्था करो। शीघ्रता करो, अन्यथा तुम मेरा मात्र कंकाल शेष ही पा सकोगी।···उस कंकाल को लेकर तुम और आत्मा को लेकर वह नर्तकी छटपटाती रह जायेगी। जीवन भर छटपटाती रह जाएगी।"

"मैं कुछ नहीं करूँगी, कुछ नहीं करूँगी।—देवयानी का ज्वालामुखी भभका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तुमने प्रेम की सहजता देखी है कच ! कभी प्रेम की ईर्ष्या नहीं देखी ।" ईर्ष्यालु प्रेम की नागिन अपने बच्चे तक को चबा जाती है ।"

एक बार फिर वह निरीह ध्वनि उभरी—"....वह किसी का भी होकर रहे, पर प्रसन्न रहे ।"—उसका उफान ढीला पड़ा । देवयानी को लगा कि मैं नर्तकी को ठीक समझ नहीं पा रही हूँ । उसकी विश्लथ निरीहता समर्पण भाव से ही तो उपस्थित हुई थी । वह कच को मुझे सौंपकर गयी है । उससे अब उसका कुछ लेना देना नहीं है । वह कच के प्रसन्नता की मात्र अम्लान दर्शिका रहेगी । अब कच पर मेरा अधिकार है, केवल मेरा ।

"जब मैं ही नहीं रहूँगा, तब तुम्हारा अधिकार किस पर रहेगा ?"—उसे ज्ञात हुआ जैसे कच बोल रहा है, एक अदृश्य कच । अन्धकार में खोया हुआ । आगत क्षणों की अनिश्चितता में लुप्त ! वह पुनः व्याकुल हो उठी । उठकर द्वार तक आयी । उसने अब अनुभव किया कि कहीं कुछ नहीं है । वह अकेली है और है उसका अन्तर्द्वन्द्व । जिसमें वह अब तक उलझी थी, जिसमें उसका अवचेतन ही प्रतिपक्षी हो गया था ।

अब वह बाहर निकलने की स्थिति में थी क्योंकि वर्षा थम चुकी थी । धरती पर पड़े ओले अभी पिघले नहीं थे । उसने आकाश की ओर देखा । सप्तर्षि के बादलों से ढँके रहने के कारण समय का ज्ञान न हो सका । फिर भी वह अतिथि कक्ष की ओर चल पड़ी ।

उसने दूर से ही देखा, एक खड्ग हस्त व्यक्ति शर्मिष्ठा के कक्ष के चारो ओर घूम रहा है । वह और आगे बढ़ी । "कौन चला आ रहा है ?"—एक कर्कश-ध्वनि देवयानी से टकरायी ।

"कौन होते हो तुम पूछने वाले ?"—देवयानी का पारा चढ़ा । ऋषिकुमारी की ध्वनि पहचानते ही वह अवसन्न रह गया और आगे बढ़कर चरण छूते हुए उसने क्षमा याचना की; पर देवयानी झल्लायी,—"किसने तुम्हें यहाँ आने की अनुमति दी,....और वह भी शस्त्र लेकर ?"

प्रहरी अवाक् था । निष्कंप होकर भी वह भीतर से थरथरा रहा था ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"जानते हो, यह आश्रम है। शास्त्र की आवृत्ति और रक्षा इस परिसर का धर्म है, और तुम शस्त्र लेकर टहल रहे हो?"

"....मैं राजकुमारी के रक्षार्थ ही हूँ।"—उसके शब्द लड़खड़ा रहे थे।

"अच्छा, तो तुम रक्षार्थ हो।....यह कोई युद्ध स्थल है क्या?"—देवयानी की दृष्टि तीर की तरह उसे चुभती चली गयी। देवयानी को लगा कि उसके कान में कोई पुरानी बात दुहरा रहा है,—"अब देवासुर युद्ध इसी आश्रम में लड़ा जायेगा। फिर इस वाक्य को मस्तिष्क के किसी कोने में ढकेलती हुई वह तड़पी,—"....जानते हो, आश्रम में न कोई राजकुमारी होती है और न कोई राजकुमार।...और न यहाँ के किसी की रक्षा की आवश्यकता है।.. सभी अभय हैं, पर तुम नहीं हो।"

वह काँप उठा,—"ऐसी कौन सी मैंने भूल की?"

"तुम्हारे हाथ में शस्त्र है।...आश्रम में जो शस्त्र उठाता है उसे अभय नहीं मिलता, वरन् वह दण्ड का भागी होता है।"

"किन्तु मैं तो चाकर हूँ। स्वामी की आज्ञा मानना मेरा धर्म है।"—दबी जबान से वह कहता गया, पर उसका खड्ग तब तक धरती पर गिर चुका था।

देवयानी ने एक जलती दृष्टि उस पर डाली और शर्मिष्ठा के कक्ष की ओर बढ़ी। "शर्मिष्ठा, शर्मिष्ठा! तुम्हारा प्रहरी मारा गया।"—वह चिल्लाते हुए भीतर घुसी।

शर्मिष्ठा एकदम हड़बड़ा कर उठ बैठी। सामने देवयानी की नाटकीय मुद्रा थी,—"तो क्या उन्होंने बदला ले लिया?"—वह बोल पड़ी।

"किसने?"—देवयानी का प्रश्न था। शर्मिष्ठा विस्फारित नेत्रों से उसे देखती रही। फिर लगता है, उसने स्वयं को संभाला और बोली,—"किसी ने भी नहीं।"

"विचित्र है।...अभी तू बदला लेने की बात कह रही थी।"—देवयानी का स्वर थोड़ा उग्र हुआ।

"मैं एक स्वप्न देख रही थी।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"... देखती हूँ, अब आश्रम में लोग स्वप्नजीवी होते जा रहे हैं।" — किन्तु उसने कुछ समझ तो लिया ही था। उसकी आशंका को बल मिल गया था। उसने उसे निर्दयता से झकझोरते हुए पूछा,—"बोल, कच कहाँ है ?"

"मैं नहीं जानती।"—भय और आशंका से वह उसकी ओर देखती रही।

"आज दो दिनों से उसका पता नहीं है। निश्चित रूप से या तो वह बन्दी बना लिया गया है, या उसका वध कर दिया गया है।....और यह तुम्हारे पक्ष का ही कार्य है।"

शर्मिष्ठा बराबर नकारती जा रही थी, पर उसकी मुद्रा से लग रहा था कि वह कुछ छिपा रही है। "....लेकिन तुम सब कुछ जानती हो शर्मिष्ठा। ...तुम्हारी आँखें कह रही हैं कि तुम जानती हो।"

शर्मिष्ठा अब रोने लगी थी। अश्रुकण जहाँ मनोदशा के प्रत्यय हैं, वहीं वे नारी के लिए कवच का भी कार्य करते हैं। उनमें वह बड़ी सरलता से स्वयं को छिपा लेती है, पर इस बार वह इस कवच में स्वयं को छिपा नहीं पायेगी। देवयानी के नेत्रों से बरसते हुए बाण उसे छेद कर रख दे रहे थे।

यह सच था कि आश्रम में कच की उपस्थिति असुरों को खटकती थी, किन्तु शर्मिष्ठा कभी उसकी हत्या के पक्ष में नहीं थी। उससे उसका रागात्मक सम्बन्ध था। अरण्य के किसी अंचल में एकाकी उसके साथ जीने का स्वप्न वह देख चुकी थी। .. पर अपने पिता की इच्छा के समक्ष वह नतमस्तक थी। वह कच के साथ कुछ भी कर सकने हैं। टूटे हुए कांच की तरह कच उसके मानस पर बिखर गया था। वह फफक कर रोने लगी थी,—"कुछ भी हो सकता है बहन, मेरा पिता कुछ भी कर सकता है।"

"क्यों तू अपने पिता को रोक नहीं सकती ?"

"मैं क्या कर सकती हूँ, बहन !... मेरी विवशता तो तुम इसी से समझ सकती हो कि मेरा पिता मात्र अपने स्वार्थ के लिए मुझे एक बूढ़े आचार्य को सौंप गया और मैं विरोध तक न कर सकी।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शर्मिष्ठा देवयानी के समक्ष पहली बार इतनी खुली थी। "मैं तुम्हारी विवशता से परिचित हूँ, पर तुम जानती तो होगी ही।"

"यदि मैं जानती होती तो मैं स्वयं मर जाने को तैयार होती, पर उसे मारने न देती।"

"तू उसकी रक्षा में प्राण तक दे सकती है ?"—देवयानी का आश्चर्य उसे देखता रहा।

वह चुप ही रही।

"तू उससे प्रेम करती है क्या ?"

इस बार भी वह कुछ क्षणों तक चुप थी। फिर बड़ी अव्यवस्थित आवाज में बोली,—"प्रेम करने की इच्छा तो है, पर अधिकार नहीं है।"

"नारी से प्रेम करने का अधिकार भला कौन छीन सकता है ?"

".. उसका निर्दय पिता।"—वह पंख कटे कपोत की भाँति छटपटाती हुई देवयानी को देखती रह गयी। देवयानी ने शीघ्र ही इस सन्दर्भ से स्वयं को मुक्त किया – " तब कच के इस रहस्य का पता कहाँ से चलेगा ? यदि समय रहते इसका उद्घाटन नहीं हुआ, तो अनर्थ हो जायेगा शर्मिष्ठा, अनर्थ हो जायेगा।"—देवयानी की व्यग्रता अपनी चरम सीमा पर थी।

शर्मिष्ठा कुछ समय तक सोचती रही। फिर प्रवज्ञा के यहाँ चलने को तत्पर हुई।

जब वह देवयानी के साथ कक्ष से बाहर निकली तब फटे बादलों के बीच से ब्राह्म मुहूर्त झांकने लगा था।

भय और आशंका से बोझिल दिन का प्रथम प्रहर समाप्त होने को था। अचानक सूचना मिली कि पहाड़ी के उस पार निर्झर के निकट कच का शव पड़ा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। विस्फोट हो गया। सारा आश्रम उस ओर टूट पड़ा। किन्तु आचार्य अपनी कुटिया में ही बैठे रहे। शतपर्वा परिसर में ही टहलती रही। स्पष्ट लगा कि उनमें भी कोई अन्तर्मंथन चल रहा है। प्रवज्ञा का प्रातःकाल से पता नहीं है। आचार्य के पुत्र भी दिखाई नहीं पड़ रहे हैं।....किन्तु तीनों युवतियों—देवयानी, शर्मिष्ठा और जयन्ती--की जिज्ञासा आश्रम के बाहर दूर तक उन्हें खींच ले गयी है। वे एक ऊँचे स्थान पर खड़ी होकर बड़ी उत्सुकता से उस ओर देख रही हैं, जिधर से शव आने वाला है। दृश्य की सम्भावना एक ही थी, पर तीनों की दृष्टि में बड़ा अन्तर था। देवयानी की आँखें चिनगारी उगल रही थीं जबकि शर्मिष्ठा की आँसुओं से भरी हुई। जयन्ती के अचंचल नेत्र तो एकदम पाषाण हो गये थे। उनमें परिस्थितिजन्य शून्यता थी।

देवयानी रह-रहकर शर्मिष्ठा की ओर देखती थी और हर बार शर्मिष्ठा की आँखों की विवशता सफाई देती थी कि इसमें मेरा कोई हाथ नहीं है। किन्तु जयन्ती कुछ भी देखने-सुनने और उत्तर देने की स्थिति में थी नहीं। उसके मौन को काठ मार गया था। जयन्ती की दृष्टि सामने पगडण्डी की ओर लगी थी। मन:स्थिति उबल रही थी। आँखों में धुन्ध छाने लगा था। पगडण्डी अनागत और अनचीन्हें भविष्य की वक्र रेखा की भाँति सिकुड़ने लगी थी और धीरे-धीरे लुप्त होती गयी। अब उसकी आँखों के सामने मात्र अंधेरा था। एकदम काला अंधेरा।

एक दूसरी ओर से षण्ड आता दिखायी दिया। देवयानी ने पुकार लगायी। जब वह निकट आ गया तब उसने कहा,—"तुमने सुना है, कच मारा गया ?"

"उसकी तो यह हालत होनी ही थी। वह आज हो गई, अन्यथा कल होती।"

"क्यों ?"

"वह देवताओं का गुप्तचर था।"--ऐसे सामान्य ढंग से षण्ड बोल रहा था, मानो कोई बड़ी बात ही न हुई हो। जयन्ती ने पहली बार पगडण्डी से दृष्टि हटाकर षण्ड को देखा। "कौन सा यहाँ रहस्य छिपा है, जिसकी वह गुप्तचरी करता था।"--देवयानी ने पूछा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"पता चला है कि वह तात की संजीवनी विद्या लेने आया था।"––षण्ड ने कहा।

"यह आशंका तो उसी दिन से बल पकड़ने लगी थी जिस दिन से उसने आश्रम में प्रवेश किया था? और तब से निरन्तर इस आग को ईंधन दिया गया है।"—देवयानी झुँझलायी।

"यह मात्र आशंका नहीं है, वरन् सत्य है।"

"तुम्हीं तो सत्य के ठेकेदार हो।"—देवयानी तड़प उठी,—"तुम्हें लज्जा नहीं आती, इस तरह की बात सोचते?··· क्या तुम अपने पिता से संजीवनी विद्या ले सकते हो?"

षण्ड देवयानी का मुख देखता रह गया।

"पिता जिस विद्या को अपने पुत्र से भी छिपा कर रखता है, उसे वह दूसरे को कैसे दे सकता है,—देवयानी बोली।

"यहाँ प्रश्न देने का नहीं, वरन् ले लेने का है।"

"तो तुम क्यों नहीं ले लेते?···· स्वयं में तो योग्यता है नहीं, और योग्य का तिरस्कार करते हो।"—षण्ड के बात करने के ढंग से देवयानी का आक्रोश बढ़ता जा रहा था,—"तो क्या यह मान लिया जाय कि इस दुष्कर्म में तुम्हारा भी हाथ है?"

"आप कुछ भी मानने के लिए स्वतंत्र हैं।···· लेकिन हम लोग अपनी इस विद्या को देवों के पास कभी जाने देना नहीं चाहते?"

"अरे, मूर्ख! तू क्या स्वयं असुर है। आखिर हमारा भी तो रक्त देवों का ही है। तुम सबकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है।···· अब मैं स्वयं आचार्य से प्रतिरोध करूँगी। देवयानी के क्रोध के समक्ष आयु में छोटा होने पर भी षण्ड दबा नहीं और बोल पड़ा,—"मैं आप की दुर्बलता समझता हूँ।"

देवयानी को विश्वास नहीं था कि षण्ड इस सीमा तक जा सकता है। इतना सुनते ही वह जल उठी,––क्या कहा? तू मेरी दुर्बलता जानता है।···· अब मैं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तुझे अपनी सबलता भी दिखाती हूँ।"—इतना कहते ही वह अग्निबाण की तरह वहाँ से छूटी और सनसनाती हुई आश्रम में आचार्य के उटज के निकट आई।

शर्मिष्ठा और जयन्ती भी लौट पड़ी थीं।

"तात ! कच की हत्या में आपके पुत्रों का ही हाथ है।"—वह फट पड़ी।

आचार्य ध्यानावस्थित मौन बैठे रहे। बगल में शतपर्वा भी थी।

"आप कुछ बोलते नहीं, चुपचाप बैठे हैं। आपके पुत्रों ने एक निरपराधी की हत्या कर दी।"—वह फनफनाती रही।

"तुम्हें कैसे मालूम कि वह निरपराधी था ?"—द्वार से प्रवेश करते ही त्वष्टा बोला। उसके साथ षण्ड भी था।

"तुम कैसे कह सकते हो कि वह अपराधी है।····आखिर उसने कौन सा अपराध किया है।"—उसने प्रतिप्रश्न प्रस्तुत किया।

"उसने किया तो नहीं है, पर वह करने वाला था।"

"····अपराध की सम्भावना मात्र से वह अपराधी हो गया और उसे दण्ड भी दे दिया गया। अरे, वाह रे तुम्हारा न्याय !"—देवयानी आपे से बाहर थी,—"इसका तात्पर्य है कि आश्रम का सारा नियम तुम्हीं लोगों के हाथों में है।"—इस बार उसने आचार्य के मर्म को स्पर्श किया था। आचार्य बोल पड़े,—"यदि तुम्हें किसी बात की आशंका थी, तो मुझसे कहना चाहिए था।"

त्वष्टा और षण्ड दोनों मौन हो गए, पर देवयानी भीतर ही भीतर उबलती रही। वह समझ रही थी कि यहाँ भी मेरी दुर्बलता को उभारा जाएगा। उसका क्रोध इस स्थिति का भी सामना करने को तैयार था। इसी बीच कोलाहल का पहला थपेड़ा आया और आचार्य को छोड़कर सबके सब बाहर निकल गए।

थोड़ी देर बाद कच का क्षत-विक्षत शव आश्रम के प्रांगण में लाकर रखा गया। उसकी ग्रीवा पर धारदार अस्त्र से आक्रमण किया गया था। काफी रक्त बह रहा था। कुछ रक्त उसके वक्ष पर ही जमकर श्याम हो गया था। रक्त निकल जाने और प्रबल शीत के प्रहार से उसका सारा तन नीला पड़ गया था। ग्रीव के अतिरिक्त भी कई जगह घाव थे। पेट में सेल (बरछा) भोंका गया था। स्पष्ट

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

था कि शत्रु का डट कर सामना करने के बाद कच गिरा होगा। धराशायी होते ही उसकी खूब दुर्दशा की गयी थी। शायद ही कोई अंग ऐसा था जिस पर प्रहार न किया गया हो।

जयन्ती तो उसे देखते ही मूर्छित हो गयी। वह छिपकली की भाँति पटाक से गिरती यदि एक आदिवासी जैसे व्यक्ति ने उसे थाम न लिया होता।

"अरे, नर्तकी संज्ञाशून्य हो गयी।"—ज्यों ही यह आवाज आचार्य से टकरायी, वे कुटी से बाहर निकल आए। उन्होंने पहले नर्तकी को उठाकर भीतर मृगछाला पर लिटाने का आदेश दिया। कई लोग आगे बढ़े, पर उस आदिवासी ने सबको रोकते हुए कहा,—"आप लोग व्यग्र न हों, मैं स्वयं इन्हें उठाकर लिटा देता हूँ।"—और फिर वह बड़े सहज भाव से मानो किसी भारहीन वस्तु को उठाकर चल पड़ा।

लौटकर आने के बाद आचार्य ने पूछा—"कौन हो तुम ?"

उसने अटपटी आवाज में अपने को 'गिरिजन' होने का परिचय दिया।

"बड़े बलिष्ट मालूम होते हो।"—आचार्य बोले। वह बाल सुलभ ढंग से मुस्कराया।

"आश्रम के इतिहास की यह शायद पहली घटना है जब यहां के ब्रह्मचारी की हत्या की गयी है।···मुझे आभास तक नहीं था कि इस तरह का काण्ड हो सकता है।"—आचार्य कुछ सोचने लगे, फिर उनकी दृष्टि देवयानी की ओर घूमी,—"शायद तुम्हीं ने ही कहा था न कि अब देवासुर संग्राम इस आश्रम में ही लड़ा जाएगा।"

देवयानी चुप रही। आचार्य बोलते गए,—"जब युद्ध की जघन्य हिंसा रेंगती हुई इस परिसर तक चली आयी, तब किसी के जीवन का कोई ठिकाना नहीं। कुछ भी हो सकता है।····हो सकता है कभी मैं भी मारा जाऊँ।"—आचार्य की मानसिकता एकदम लड़खड़ा गयी थी। वह कच का शव देखकर विचलित हो उठे थे,—"यह ठीक है कि यह वृहस्पति का पुत्र था, मेरे प्रतिपक्षी आचार्य का आत्मज ! संसार क्या कहेगा ? (कि) मैं उसकी रक्षा भी नहीं कर पाया।···

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आज जो स्थिति है उसमें तो लोग यह भी कह सकते हैं कि हो सकता है मैंने ही इसकी हत्या करा दी हो।"—आचार्य बड़बड़ाते जा रहे थे। उनकी उलझी हुई मनःस्थिति स्वतः मुखर हो रही थी। सारा कोलाहल शीत में जमी हुई नदी की तरह थम गया था।

"क्या तुम मेरे यहाँ प्रहरी का कार्य कर सकते हो?"—उस गिरिजन की ओर देखते हुए आचार्य ने पूछा।

उसने स्वीकृति में मात्र मुस्करा दिया। यद्यपि वह गम्भीर था। भीतर से वह भी दुःखी लग रहा था, पर आचार्य के कथन पर ऊपर से प्रसन्नता चिपका लेता था।

"अच्छा तो तुम मेरे कक्ष में जाओ और नर्तकी का सारा शरीर मृगचर्म से अच्छी तरह ढँक दो। मूर्च्छा की स्थिति में शीत का प्रकोप बढ़ जाता है।.... अग्निकुण्डों की आग भी प्रज्वलित कर देना।"—आचार्य ने उस गिरिजन से कहा और फिर कच के शव की ओर मुड़े,—"....इसे मार कर भला किसी को क्या मिला होगा?"—वह कुछ समय तक अनवरत उसे देखते रहे। फिर भावाकुल हो उठे,—"मैंने स्वयं अनेक मर्यादाएँ तोड़ीं और अनेक पाप का भागी भी हुआ, पर आश्रम के मस्तक पर लगा यह कलंक शीघ्र धुल नहीं सकेगा।"—वे सिर थाम कर वहीं बैठ गये। शायद पहली बार आचार्य का अहं पिघल कर आँखों से वह निकला था।

उधर चेतना लौटते ही जयन्ती ने गिरिजन को पहचान लिया,—"अरे, अतिबल तुम यहाँ कैसे?"

उसने बताया,—"मैं तो कच के शव के साथ ही आया था और जब आप संज्ञाशून्य होने लगीं तब मैंने ही आपको संभाल कर लिटाया था। फिर आचार्य की आज्ञा पर आपको यहाँ ले आया और आपके तन को ऊर्जा पहुँचाने की चेष्टा की।"—उसने धीरे-धीरे यह सब कुछ कह दिया, पर उसकी आँखें भरी थीं।

"....तो आचार्य ने तुझे मेरा तन छूने दिया?"—जैसे वह कहना चाह रही हो कि अब इस पर वे मात्र अपना ही अधिकार समझते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"हाँ।....अब मैं आश्रम का प्रहरी नियुक्त कर लिया गया हूँ।" उसने बड़ी प्रसन्नता से सूचना दी।

अपने सेनानायक को आश्रम की सेवा में प्रवेश पाने की सूचना पर वह प्रसन्न तो हुई, किन्तु शीघ्र ही कच की याद आते ही वह विचलित हो उठी,—"अब उसका क्या होगा ?"

"आप चिन्ता न करें, कुछ न कुछ तो उसके लिए किया ही जायेगा।.... आचार्य स्वयं चिन्तित हैं।"—अतिबल बोला।

"तब तो वे ही उसे जिला सकते हैं ?"—जयन्ती बोली।

"हाँ, यह तो होगा ही, पर आप पड़ी रहें। मैं आपके चेतन होने की सूचना आचार्य को देता हूँ। इतना कहकर वह बाहर निकलने को हुआ। जयन्ती ने उसे अचानक रोका,—"देखो, वहाँ मेरा नाम मत लेना केवल नर्तकी कहना।"

अतिबल हँस पड़ा,—"मैं इसे जानता हूँ।"

बाहर आकर उसने आचार्य को जयन्ती के ठीक होने की सूचना दी, पर आचार्य की मनःस्थिति में बहुत अन्तर नहीं आया। वह एक विचित्र उलझन का अनुभव करते रहे। उन्होंने अपने पुत्रों से पूछा,—"बोलो क्या किया जाय ?"... शव को वृहस्पति के यहाँ भेज दिया जाये या उन्हें ही यहाँ बुला लिया जाये और इसकी अन्त्येष्टि कर दी जाये ?"

"अब तो अन्त्येष्टि करनी है चाहे कहीं हो।"—मर्क बोला।

"नहीं, इसकी अन्त्येष्टि नहीं होगी।"—तीर सी आवाज छूटी और देवयानी सनसनाती हुई भीड़ से आगे आयी।

"तब क्या करोगी बेटी ?"—आचार्य का भावाकुल स्वर ममता से भरा था।

"...संजीवनी विद्या का प्रयोग करना होगा।....आपको इसे जिलाना होगा।"—वह बालक सा छेलायी, पर आचार्य पाषाणवत् बैठे रहे। "चिन्तन की रेखाएँ उसके मस्तक पर बनतीं और मिटती रहीं।"....आपको जिलाना होगा तात्, अवश्य जिलाना होगा।....पर आप कुछ बोलते ही नहीं।

"अभी तक इस विद्या से कोई देवता जीवित नहीं किया गया है।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"…तो अब कर दीजिए तात !"—देवयानी की विवशता आँखों से बह चली। आचार्य ने कभी अपनी बेटी के आँसू नहीं देखे थे। पत्थर भी पसीजने लगा।……"पर मैं कुछ नहीं कर सकता बेटी, मेरे सामने अपनी विवशता है।"—आचार्य मन मसोस कर रह जा रहे थे। वह कुछ कहना चाहकर भी जैसे कह नहीं पा रहे थे।

"….लेकिन, इसे तो जीवित करना ही होगा तात, अन्यथा मैं भस्म हो जाऊँगी।"—देवयानी का नारी हठ आत्मदाह के लिए तत्पर हो उठा। जीवन भर जलते रहने से एक बार जल जाना उसे स्वीकार था।

"जब आप जिला सकते हैं, तब जिला दीजिए न आचार्य !"—जयन्ती अब बाहर निकल आयी थी। उसने देवयानी का समर्थन किया।

आचार्य ने अब नर्तकी की ओर देखा, फिर कच के क्षत-विक्षत तन की ओर। मन में अनेक शंकाएँ अनेक सन्दर्भों में सुगबुगाने लगी। एक ओर ऐसी बलिष्ट सुगढ़ काया, दूसरी ओर नवनीत पुत्तलिका। एक ओर ऊर्जस्वी वीर्य और दूसरी ओर नारी का उद्दाम यौवन। एक ओर स्नेह का पारावार और दूसरी ओर काम की वड़वाग्नि। कहीं यह इसे आत्मसात करने की ललक में तो नहीं कह रही है ? कहीं इसका कच के प्रति आकर्षण तो नहीं है ? आचार्य ने एक बार फिर नर्तकी की ओर देखा। उसकी दृष्टि में झांका। कहीं प्यास तो नहीं है, और फिर अपनी मनःस्थिति पर परदा डालते हुए बोले,—"तुम्हारा जी कैसा है ?"

"….अब ठीक है।"—उसने कहा। "आप देवयानी की बात मान लें आचार्य !"— उसने पुनः निवेदन किया। देवयानी ने उसे बड़ी आत्मीय दृष्टि से निहारा। जयन्ती की आँखें चार हुईं। उसने अनुभव किया कि सदा फुफकारने वाली नागिन आज कृपालु है। जयन्ती ने अपना आग्रह दुहराया,—"आप जिला दे आचार्य।"

कुछ समय तक आचार्य की व्यग्रता मौन में ढँकी रही। "आश्रम के बाहर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के लोग कृपया चले जाय, मैं इस परिस्थिति पर कुछ सोचकर ही निर्णय लूँगा।''—लोग धीरे-धीरे हटने वढ़ने लगे।

फिर उन्होंने प्रहरी को संकेत से बुलाया और पूछा,—''तुम्हारा नाम क्या है?''

वह सकपकाया। सही नाम कहना ठीक नहीं। कुछ सोच कर बोला,—''कुलिश।''

''तुम्हें अपना नाम याद नहीं था क्या, जो इतना सोचना पड़ा?''—आचार्य की दृष्टि से वह छूट नहीं सका, ''लगता है तुम झूठ बोलते हो।''

कुछ मुस्कराते हुए वह विचित्र ढंग से हँसा,—''नहीं, मैं झूठ नहीं बोलता।''

''झूठ के लिए ही सोचना पड़ता है, सत्य के लिए नहीं।''—अनुभव के भार से दवी आचार्य की आँखों में उसे उधेड़ कर देख लेने की क्षमता थी, पर उन्होंने उस ओर से दृष्टि घुमायी और अन्य ब्रह्मचारियों की ओर देखते हुए बोले,—''झूठ तो तर्क के पैरों पर चलता है, इसीलिए उसे हमेशा लड़खड़ाने का भय रहता है। सहज सत्य को वुद्धि की बैसाखी नहीं चाहिए।''

''मैं सत्य झूठ के लिए नहीं, वरन् सकपकाया कि अपना नाम कैसे बताऊँ।'' हम गिरिवासियों में नाम न बताकर 'आपका सेवक' कहने की परम्परा है।....मैं यही सब सोचने लगा था कि सेवक कहूँ या सही नाम कुलिश बताऊँ?—वह गम्भीर हो आचार्य की ओर देखने लगा।

अतिबल की नाटकीय स्थिति पर जयन्ती की आँखें मुस्करा रही थीं। पर आचार्य अधिक देर तक इस उलझन में पड़ने की स्थिति में नहीं थे। उनके सामने तो कच का प्रश्न करता शव था—क्या मुझे आपने इसीलिए स्वीकार किया था कि मैं मार डाला जाऊँ?

दूसरी ओर देवयानी जिलाने के लिए आग्रह पर आग्रह किये जा रही थी, किन्तु आचार्य पुत्रों की इच्छा उसे जीवित करने की नहीं थी। ''जब कोई भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देवता अभी तक जीवित नहीं किया गया है तब यह कैसे जीवित किया जा सकता है ?"—त्वष्टा बोला ।

"यदि तुम मारे जाओगे, तो क्या तात तुम्हें जीवित नहीं करेंगे ?"—देवयानी जल उठीं,—"आखिर तू भी तो देव पुत्र है ।"

त्वष्टा सन्न रह गया । उसने द्रवित देवयानी को ज्वाला के रूप में बदलते देखा और धीरे से खिसक गया ।

आचार्य अपनी विवशता में भीतर ही भीतर छटपटाते रहे । उन्होंने कच के शव को तैल कुण्ड में रखवाया । यद्यपि तापमान कम था, फिर भी उसमें विकार आने की आशंका थी । फिर सबको हटाकर वह देवयानी को लेकर अपने प्रकोष्ठ में चले गये । लोगों ने समझ लिया कि आचार्य उसे एकान्त में कुछ समझाना चाहते हैं ।

उन्होंने देवयानी को अपने निकट बुलाया और पार्श्व में बैठाकर उसकी पीठ सहलाते हुए कहा,—बेटी, संजीवनी विद्या आर्य विद्या नहीं है । यह प्रेत विद्या है । ज्यों-ही मैं देवपुत्र पर इसका प्रयोग करूँगा यह अस्थिर हो जायेगी ।"

मौन देवयानी उनका मुख देखती रही, मानो वह कह रही हो कि मैं कुछ समझ नहीं पा रही हूँ ।

"....कच पर प्रयोग करते ही, वह विद्या देवताओं के यहाँ भी जा सकती है ।"—आचार्य रहस्योद्घाटन के लिए लाचार हुए ।

"जैसे आप अब तक इसे गोपनीय रखे हैं, यदि वैसे ही रखेंगे तो यह विद्या कैसे चली जायेगी ?"—देवयानी बोली ।

"यही तो रहस्य है बेटी, जिसे तुम्हें मैं समझा नहीं सकता ।"—आचार्य लगभग गिड़गिड़ाने की स्थिति में थे,—"इसी विद्या के कारण तो मेरी प्रतिष्ठा है । असुरों का गुरु हूँ, अन्यथा मुझे कौन पूछेगा ?"

"क्यों, वृहस्पति को देवता नहीं पूछते ? क्या देवों में उनका सम्मान कम है ?"

आचार्य फिर गम्भीर हो गये । उनके मानस में जयन्ती और शर्मिष्ठा की वासनोत्तेजित अनेक भाव मुद्राएँ सुराम में डूबती उतराती दिखायी दीं और वे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बड़बड़ाने लगे—"मेरा सारा भोग विलास इस विद्या की आड़ में ही तो है। मैंने कभी सात्विक और दैवी विद्या के विकास की चेष्टा नहीं की। नीतिज्ञ होकर भी नीतिभ्रष्ट हुआ। ब्राह्मण होकर भी ब्रह्म विद्या से च्युत हुआ।... जो था भी उसे भोग के उन्मुक्त आकाश में नादान शिशु सा धूल की भाँति उड़ाता रहा। सदा ज्वार के सिन्धु में ही हिलोरें लेता रहा। क्या पता था कि परिस्थिति कभी रेत पर लाकर इस तरह पटक देगी।"—फिर वे एकदम चुप हो गये और उनकी दृष्टि देवयानी की ओर स्थिर हो गयी।

देवयानी ने तात की व्याकुलता का अनुभव किया, किन्तु उसके मन पर तो कच छा गया था। एक ऐसा कच जो बार-बार कह रहा था,—"....तुमने कहा था न कि तुम मारे जाओगे तो मैं जिला लूँगी।...तब तुम मात्र मेरे होगे।.... सोचो, याद करो।... तुमने कहा था न।"

आचार्य की आकृति की हर झुर्री व्यग्रता के धुन्ध से भरी देवयानी को दिखायी दी, फिर भी असहाय मेमने की तरह वह गिड़गिड़ायी,—"मैंने उसे वचन दिया है तात!"

"क्या वचन दिया है?"

"यही कि यदि तुम मारे जाओगे तो मैं जीवित करा लूँगी।"

"....तो क्या उसे पहले से मारे जाने की आशंका थी?"

"उसने कई बार स्वयं मुझसे कहा था।"—देवयानी ने बताया।

"....पर उसने मुझसे कभी नहीं कहा और न तुमने ही बताया।"—आचार्य एकदम भुझला उठे,—"यदि तुमने पहले से बताया होता, तो मैं यह स्थिति ही आने न देता।"

यदि कोई दूसरा अवसर होता, तो देवयानी चुप हो जाती, पर उसकी आतुरता शान्त होनेवाली नहीं थी,—"....यदि मैं बता ही देती तो आप क्या कर लेते पिताजी? यह असुर कभी उसे छोड़ने वाले नहीं थे।"

"....तो मैं ही उसे छोड़ देता और कहता कि तुम यहाँ से चले जाओ।"—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आचार्य झटके में बोले। देवयानी उनका मुख देखती रह गयी। उसका मन कह रहा था कि वह चला तो अब भी गया है।

"आप उसे जाने के लिए कहते, पर वह जाता नहीं।"

"क्यों?"

"मेरा विश्वास है।"—देवयानी के भीतर से एक समर्पित नारी बोल उठी।

"यह तुम्हारा विश्वास है न!··· पर तुमसे अलग न होने का उसने कभी वचन दिया है?"

अब देवयानी सोचने लगी। एक के बाद एक सन्दर्भ उसके मन में उगते और बुझते रहे। हर बार उसे ऐसा ही अनुभव हुआ कि वह उसकी ओर आकृष्ट है, पर ऐसा नहीं लगा कि कभी उसने कोई वचन दिया हो।

देवयानी चुप थी, पर भीतर आन्दोलन चल रहा था।

"···कितना आश्चर्य है कि उसने कोई वंचन नहीं दिया और तू वचन दे बैठी।"—आचार्य बोल पड़े।

"पर अब मैं उससे वचन ले लूँगी, तात!···आप जिला दीजिए।"—उसकी आतुरता विराम नहीं चाहती थी।

इसी बीच प्रवज्ञा आ गया और बिना किसी भूमिका के बोला,—"क्या यह नहीं हो सकता कि उस नर्तकी के लिए किसी और कच की व्यवस्था की जाय?"

"नर्तकी के लिए कच की व्यवस्था?···यह तुम क्या कह रहे हो?"—आचार्य अवाक् रह गये।

"हाँ आचार्य, मैंने सुना है कि वह नर्तकी कच के बिना जीवित नहीं रह सकती।···आपने देखा नहीं कि वह उसका शव देखते मूर्च्छित हो गयी थी।"—प्रवज्ञा ने एक ऐसी चाल चली कि सभी चकरा गये।

आचार्य के मन में शंका थी ही। उन्हें समर्थन मिला। अवश्य ही वह कच की ओर आकर्षित है। ऐसा तो नहीं कि जीवित होते ही नर्तकी भी हाथ से निकल जाये।" तुम्हें यह कैसे ज्ञात हुआ कि वह नर्तकी कच के बिना जीवित नहीं रह सकती?"—उन्होंने प्रवज्ञा से स्पष्ट पूछा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"उसे देखने से लगता है कि उसके मन में कुछ ऐसा ही है।"—

"....अच्छा तो आपने उसके मन में देखने की चेष्टा की है। बड़ी दिव्य दृष्टि है आपकी।"—बगल के कक्ष में विश्राम करती जयन्ती अचानक आकर बोल पड़ी। प्रवज्ञा सकपकाया, फिर भी उसकी छलना ने एक चाल और चली,— "कच के शव को देखते ही मूर्च्छित होने तथा बार-बार उसे जिलाने के आग्रह से कुछ ऐसा ही लगा।"

"उसका शव देखकर तो मैं इसलिए मूर्च्छित हो गयी थी कि मैंने अपने जीवन में किसी की ऐसी जघन्य हत्या देखी नहीं थी।"—इस के बाद एक कुटिल मुस्कराहट उसके अधरों के बीच उगी,—"यदि आप की भी ऐसी हत्या होती तो भी शायद मैं मूर्च्छित हो जाती।....तो क्या आप समझ लेते कि मैं आपको चाहती हूँ? .. बड़े भोले मालूम होते हैं आप?"

प्रवज्ञा झेंप गया। उसके दोनों दाँव खाली गये। यदि उसे पता चलता कि पार्श्व के कक्ष में नर्तकी विश्राम कर रही है, वह उसे सुन लेगी, तो शायद वह यह प्रसंग ही न छेड़ता।

जयन्ती बोलती गयी,—"रह गयी उसे जिलाने के निवेदन करने की बात।... वह तो मैं ऋषिकुमारी के आग्रह का समर्थन कर रही थी।"

"....ओ हो अब समझा।....तो आप ऋषिकुमारी के प्रति कृपा कर रही थीं।"—प्रवज्ञा इस पर भी अपनी चाल से बाज नहीं आया। उसने देवयानी की ओर एक विचित्र दृष्टि उछाली, पर उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, वह स्वयं उलझी हुई थी।

इस बार जयन्ती की नाटकीय मुद्रा देखने योग्य थी,—"ऋषिकुमारी पर कृपा करने की स्थिति में मैं नहीं हूँ।... वह तो आप महाराज लोग हैं। मैं तो स्वयं आचार्य की कृपा पर जीवित हूँ।"—फिर उसका कण्ठ भर आया और लगभग रोने की स्थिति में हो गयी,—"यदि आचार्य की कृपा न होती, तो मेरे पिता और भाई निश्चित ही मारे जाते।"—रुदन में नारी स्वयं को जितना छिपा लेती है, उतना किसी प्राचीर में नहीं छिपा सकती। वह स्वयं को छिपाये हुए ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बोलती गयी—भाड़ में जाए कच ! मुझे उससे क्या लेना-देना है।····मेरे लिए तो संसार में अब जो कुछ है आचार्य ही हैं।"—वह सिसकती रही, उसकी हिचकी बँध गयी।

प्रवज्ञा पराजित था। हतप्रभ था। देवयानी भी चकित थी कि जो नारी कभी कच की केवल प्रसन्नता चाहती थी वह इस समय उसे भाड़ में झोक रही है। "····अच्छा जाओ विश्राम करो, तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नहीं है।" तुम्हें आवेश में आना नहीं चाहिए।—आचार्य ने कहा।

"कैसे आवेश में नहीं आऊँ आचार्य ?·· झूठा लांछन लगाया जाय और मैं चुप रहूँ।"—सिसकती हुई वह अपने कक्ष में चली गयी।

नाटक का पटाक्षेप हो गया। उसके मात्र तीन दर्शक एक दूसरे का मुख देखते हुए विभिन्न मनःस्थितियों में बैठे रहे।

निस्तब्धता साँय-साँय कर रही थी। शीत से निशीथ ठिठुरा पड़ा था। जयन्ती जिस समय कक्ष से निकली सप्तर्षि पश्चिम की ओर झुक गये थे। रह-रह कर अतिबल की जागते रहो की ध्वनि सुनसान में तैर जाती थी।

जयन्ती जान नहीं पायी थी कि कच के जिलाने के सन्दर्भ में आचार्य ने क्या निर्णय लिया। वह स्वयं भी उनसे पूछने की स्थिति में नहीं थी, क्योंकि उसकी नाटकीयता उसे भाड़ में झोक चुकी थी। इसी से वह व्यग्र थी। शायद अतिबल से कुछ मालूम हो। उसी से पता चल जाये।

वह कक्ष के बाहर निकल कर वट की आड़ में खड़ी हो गयी थी। प्रतीक्षा करती रही। निकट आते ही उसने अतिबल को बुलाया,—"ऐ सुनो तो।"

"उसने आवाज से ही समझ लिया कि जयन्ती है।····इस समय आप यहाँ पर ?"—वह बोला।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"आचार्य ने कच के सन्दर्भ में क्या निर्णय लिया ?"—उसकी व्यग्रता अधिक विराम की स्थिति में नहीं थी।

"पता तो चला है कि देवयानी ने उन्हें मना लिया है।—वे प्रातःकाल ही अग्निहोत्र के बाद उस पर संजीवनी विद्या का प्रयोग करेंगे।" अतिबल बोला—साथ ही एक और जिज्ञासा सुलगा दी—स्थिति कुछ भयंकर ही लगती है।"

"क्यों ?"

"इस समय प्रवज्ञा जी के कक्ष में एक गुप्त मंत्रणा चल रही है।"

"तो क्या वह अकेले ही मंत्रणा कर रहा है।"—निश्चित ही जयन्ती मुस्करायी होगी, पर उसकी मुस्कराहट दिखायी नहीं दी।

"नहीं। उसके कक्ष में कुछ लोगों के और होने की आहट लग रही है।"

"कुछ लोगों के और ?"—जयन्ती सोचने लगी,—"लगता है, कुछ लोग मध्य रात्रि में बाहर से आ गए हैं।····किन्तु वे बातें क्या कर रहे हैं ?"

"यह तो नहीं मालूम, पर लगता है कि वृषपर्वा युद्ध टालने के पक्ष में नहीं है। उन्होंने, शायद सन्देश भेज दिया है कि यदि सुरपति का स्वास्थ्य ठीक नहीं है, तो वे युद्ध में न आएँ मैं भी नहीं जाऊँगा, हम दोनों के बिना भी युद्ध हो सकता है।"

"इसका तात्पर्य है कि उन्होंने हमारी स्थिति का लगभग अनुमान लगा लिया है।"

"हाँ, कच के जीवित होने पर भी खतरा बना रहेगा।···वह किसी समय आश्रम से लुप्त किया जा सकता है।"—एक आशंका से उतराकर जयन्ती दूसरे में डूबने लगी। वह मौन थी। कुछ सोचते हुए बोली,—"अच्छा, घबराने की आवश्यकता नहीं है। तुम एक काम करो।"

"क्या ?"

"धीरे से जाकर प्रवज्ञा के द्वार की अर्गला बाहर से चढ़ा दो और वहीं रहो !····कदाचित् ही अब डेढ़ प्रहर रात्रि शेष रह गयी होगी।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"इसका तात्पर्य है कि उन्हें भीतर ही बन्द कर दिया जाय ।"—अतिबल सोचते हुए बुद-बुदाया—"यदि वे कल आचार्य से शिकायत करेंगे तब ?"

"तब कह देना कि प्रवज्ञा जी तो अकेले थे। भीतर कई लोगों की उपस्थिति का अनुमान लगा, तब मैंने सोचा, चोर तो नहीं हैं।"—जयन्ती बोली, पर अतिवल सोचता रहा। फिर अत्यन्त गम्भीर स्वर में कहने लगा—"इससे लाभ क्या होगा ?"

"लाभ यही होगा कि आचार्य भी देख लेंगे कि बिना उनकी अनुमति के लोग वेरोक-टोक आश्रम में आते रहते हैं और यहाँ रात-रात भर गुप्त मंत्रणाएँ चलती हैं।" जयन्ती प्रसन्न थी। डूबते को किनारे की झलक मिल गयी थी। वह उसी आह्लाद में बोली,—"आनन्द आ जायेगा, जब वे आचार्य के सम्मुख उपस्थित किये जायेंगे।....सारी राजनीति पेट में चली जायेगी।"

"....इससे कच की भी सुरक्षा हो जायेगी, क्योंकि बिना अनुमति प्रवेश अब आचार्य बन्द कर देंगे।"

"ऐसे तो नहीं बन्द कर सकते।"—फिर उसने अपने गिरते मृग चर्म को संभाला और उसको अच्छी तरह लपेटते हुए बोली,—"हाँ तुम्हारी नाटकीयता उसे वन्द करा सकती है।"

"वह कैसे ?"

"जरा नाटकीय ढंग से आचार्य से कहो कि मुझे आभास लगा है कि ये लोग नर्तकी को रात में उठा ले जाने की योजना बना रहे थे।"—इतना कहते-कहते सफलता की मुस्कराहट उसके अधरों पर दौड़ गयी। इसका अनुभव अतिवल ने भी किया,—"आपने पहले कहा है कि कहना कि चोर हैं। फिर आपको उठा ले जाने की बात कुछ जमती नहीं है।"

"इसी को न तुम्हारा अभिनय जमायेगा।"—जयन्ती हंस पड़ी,—"....यदि बात बैठ गयी, तो वह एकाक्षी किसी को आने देना तो दूर रहा, प्रवज्ञा और शर्मिष्ठा को भी निकाल बाहर करेगा।

अतिवल अब भी सेल से भूमि कुरेदता खड़ा रहा। वह संशय की डोर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पकड़ कर किसी निष्कर्ष पर पहुँच नहीं पा रहा था। जयन्ती ने उसे ढाढ़स बंधाया,—"सफलता का राही कभी सन्देह के जंगल से नहीं गुजरता, अतिबल !···वह विश्वास के राजपथ पर चलता है।····जाओ और विश्वास रखो, हमें सफलता मिलेगी।"—इस बार जयन्ती के भीतर सोई हुई राजपुत्री जाग उठी थी।

अतिबल उत्साह में चला तो, पर एक बात अब भी उसे पूछने को रह गयी थी,—"अर्गला बन्द करने के बाद भी यदि वे द्वार तोड़ कर निकले तो ?"

"····तो तुम निश्चित रूप से उन्हें मार बैठना।"—जयन्ती दूने आवेग में बोली, "तब तो काम ही बन जायेगा।··अरे, एक साथ तो वे निकलेंगे नहीं।···और यदि निकलेंगे तो भी निरस्त्र होंगे, आक्रमण की सम्भावना तक उन्हें नहीं रहेगी।····तुम्हारा अप्रत्याशित आक्रमण सबको एक साथ धराशायी कर सकता है।···मुझे तुम्हारी शक्ति पर विश्वास है,····और फिर तो मैं हूँ ही। शेष सब संभालूँगी।"

अपनी भुजाएँ ठोक कर वह चल पड़ा। जयन्ती ने उसमें प्राण फूँक दिया था। उसकी गति में वर्षा की उन्मादिनी सरिता का आवेग था, पर रव विहीन।

जयन्ती उसे जाते हुए बहुत देर तक देखती रही। रात्रि ढलान पर थी। पूर्व के आकाश में दैत्य से मेघ घुमड़ने लगे थे। जयन्ती को लगा कि यह प्रकृतिस्थ नभ का नहीं, वरन् देवताओं के भविष्य का अंधेरा आकाश मेघाच्छन्न होता जा रहा है।

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

□□□

आवेग का ज्वार जब उतरता है, तब पश्चात्ताप के पंक के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह जाता ।....और ऐसे ही क्षणों में मनुष्य आत्म विश्लेषण करता है। वह स्वयं को उधेड़ता है, परत पर परत खोलता चलता है। यह पल होते हैं अन्तर्मंथन के। यह समय होता है अपनी अस्मिता से साक्षात्कार का। इस समय उसकी मानसिकता सुरत्व को असुरत्व से अलग करके देखती है। सत्य को तर्क से हटाकर परखती है। प्रकाश को अन्धकार से छानकर पीती है। सन्ध्या होते-होते आचार्य इसी मानसिकता में आ गये थे।

प्रातः होते ही उन्हें ज्ञात हुआ कि कुलिश ने प्रवज्ञा के तीन अतिथियों को मार गिराया। वे घायल अवस्था में उनके समक्ष उपस्थित किये गये। कुलिश का कहना था कि वे नर्तकी को उठा ले जाने का षड्यंत्र रच रहे थे, पर प्रवज्ञा इसका खंडन कर रहा था, पर वह इसका ठीक उत्तर न दे सका कि वे क्यों आये थे और इतनी रात तक क्या मंत्रणा हो रही थी।... इसका भी पता नहीं चल सका कि वे स्वयं आये थे या उन्हें बुलाया गया था।

जब वे प्रवज्ञा के साथ आचार्य के समक्ष लाये गये तब प्रवज्ञा का ही आक्षेप था,—"हमारे साथ अभद्रता की गयी। अतिथि के साथ कभी भी आश्रम में ऐसा व्यवहार नहीं किया गया।"

मुझे क्या पता था कि कौन अतिथि है और कौन अवांछनीय लोग हैं?"—कुलिश बोला।

"...तब तुम्हें मुझसे पूछना चाहिए था।"—प्रवज्ञा की आँखों से चिनगारियाँ छूट रही थीं, पर कुलिश भी डरनेवाला नहीं था,—"जब मैंने बन्द द्वार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के बाहर से सुन लिया कि षड्यंत्र रचा जा रहा है तब पूछने की क्या आवश्यकता थी ?"

"तुम प्रहरी हो या आचार्य के अमात्य ?"—"अब प्रवज्ञा की सीधी बातचीत आरम्भ हुई ।"

"आपका तात्पर्य ?"—कुलिश ने कहा ।

"तात्पर्य यह है कि तुम्हारा कार्य केवल पहरे तक सीमित है । चोर की भाँति किसी की बात सुनना तुम्हारा काम नहीं है ।"—प्रवज्ञा के कथन पर इस बार कुलिश बड़े नाटकीय ढंग से हँसा,—"प्रहरी का कर्तव्य मैं अमात्य से कहीं अधिक समझता हूँ ।...यदि आप लोग रात को ही उस नर्तकी को उठा ले गये होते, तो मैं आचार्य को क्या उत्तर देता ?"

"तुम झूठे हो ।"—प्रवज्ञा गरजा,—"तुम स्वयं षड्यंत्र कर रहे हो और आचार्य कों हमारे विरुद्ध भड़का रहे हो ।" कुलिश अब भी हँसता जा रहा था । उसके हास्य का हर छींटा प्रवज्ञा के तप्त मानस पर छनछना उठता था ।

प्रवज्ञा का क्रोध बढ़ता गया और कुलिश हँसता रहा । पूर्वयोजना के अनुसार जयन्ती भी वहाँ आ गयी । उसने वड़े नाटकीय ढंग से पूछा,—"आखिर मुझे यहाँ से उठा ले जाने में आपको क्या मिलेगा ?"—उसका स्वर आर्द्र हो गया ।

"यही तो मैं समझ नहीं पा रहा हूँ ।"—कुलिश ने कहा ।

"तुम झूठ पर झूठ बोलते चले जा रहे हो ।"—प्रवज्ञा पुनः भभका । वह अवश्य प्रहरी पर वार कर बैठता यदि आचार्य वहाँ न रहते । "तुम जो इस नये षड्यंत्र की अवतारणा कर रहे हो, आचार्य उसकी वास्तविकता अवश्य समझेंगे ।"—प्रवज्ञा ने स्वयं पर बड़ा नियंत्रण किया ।

"....हाँ, इसे तो समझना ही होगा कि षड्यंत्र की अवतारणा किस ओर से की जा रही है ।" इस बार जयन्ती बोली,—"...एक ओर बिना अनुमति लोग आश्रम में प्रवेश करते चले जा रहे हैं ।....रात-रात भर गुप्त मंत्रणाएँ चलती हैं । दूसरी ओर एक प्रहरी की सजगता उन्हें ध्वस्त करने के लिए अपनी असि उठाती

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है।.... हे भगवान्, क्या है इस सबके पीछे?"—जयन्ती का स्वर पुनः भारी हुआ।

"तुम्हें अपहरण करने की योजना?"—अचानक ज्वालामुखी फूटा। आचार्य का यह वाक्य प्रवज्ञा को कम्पित करने के लिए पर्याप्त था।

कुलिश एक पग पीछे हटकर शान्त भाव से खड़ा हो गया। जयन्ती ने भी अनुभव किया कि उसकी लगायी चिनगारी विस्फोट हो चली है। अब प्रवज्ञा क्या करता? "आपको विश्वास है कि हम लोग नर्तकी को उठा ले जाने की योजना बना रहे थे?"—प्रवज्ञा की ध्वनि में बँधे हुए एक निरपराधी की छटपटाहट थी।

"इस विश्वास के अतिरिक्त हम और कुछ करने की स्थिति में नहीं हैं।"—धीर गम्भीर स्वर में आचार्य बोलकर चुप हो गये, पर उनकी आग्नेय आँखें ताप उगलती रहीं।

"क्या मैं जान सकता हूँ कि आप कुलिश पर ही विश्वास करने की स्थिति में क्यों हैं?"—प्रवज्ञा ने पूछा।

"...क्योंकि तुम विश्वास करते हो कि कच को पुनर्जीवन देने में इसका हाथ है।" जयन्ती की ओर संकेत करते हुए आचार्य बोले। जयन्ती ने तुरन्त प्रतिवाद किया,—"जबकि यह नितान्त असत्य है।"—इसके बाद वह वहाँ से बिना अनुमति लिए चल पड़ी,—"मैं अभी इसे स्पष्ट किये देती हूँ।"—वह जाती-जाती कहती गयी।

जयन्ती को अवसर मिला था फिर भला वह इस आग को क्यों नहीं फैलाती? वह देवयानी के यहाँ पहुँची और उनसे कहा,—"मेरी रक्षा कीजिए, अन्यथा मेरा अपहरण हो जायेगा।"—कुछ संकेतों और कुछ शब्दों के सहारे उसने सब कुछ कह सुनाया।....और अन्त में बोली,—"मैंने मात्र आपका समर्थन किया था। अब मुझे इसी का परिणाम भोगना पड़ रहा है।"

"कभी ऐसा नहीं होगा नर्तकी, तुम आश्वस्त रहो।"—देवयानी ने कहा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वह तो घायल कच की सुश्रूषा में लगी थी। वह उसे छोड़कर फनफनाती हुई खड़ी हो गयी। कच के नेत्र जयन्ती की ओर घूमे और वह मन-ही-मन मुस्कराया।

दूर से ही देवयानी प्रवज्ञा की आँखों में गड़ने लगी। उसे नर्तकी के साथ आते देख कर समझ लिया कि वह उसे बुलाने गयी थी।

"कच को जिलाने में इसका नहीं मेरा हाथ है।"—देवयानी आते ही उबल पड़ी। यदि आप अपहरण करना ही चाहते हैं, तो मेरे अपहरण की योजना बनाइए।"

"आप क्या कहती हैं?····कौन अपहरण करना चाहता है और किसका अपहरण?" प्रवज्ञा पुनः सफाई देने लगा,—"····इस प्रहरी ने व्यर्थ में आग लगायी है।"

"आग तो आपके उटज में सुलग रही थी। वह मंत्रणा शिविर बन गया था।—देवयानी बोली।

"यही तो मैं नहीं समझता कि लोग मध्य रात्रि में वहाँ आये कैसे?"—आचार्य सोचते हुए बोले,—"यह तो कहो प्रहरी था। रहस्य का उद्घाटन हो गया। हो सकता है, इसकी नियुक्ति के पहले से ही लोग यहाँ आते-जाते रहे हों।

"मैंने कभी कहा था कि अब देवासुर संग्राम इसी आश्रम में होगा।"—देवयानी बोली—"शायद आपको स्मरण हो।"

"मुझे सब स्मरण है, बेटी।"—उन्होंने एक निश्वास छोड़ी। उनका यह निश्वास नख-दंतहीन बूढ़े सिंह की विवश गुर्राहट से अधिक कुछ नहीं था। फिर वे चुप हो गये। उनके नेत्रों के नील सर में भग्न स्वप्न के टुकड़े तैर रहे थे। उनकी मानसिकता उन्हीं से उलझने लगी थी।

स्पष्ट लगा कि आचार्य इस समय अन्तर्द्वन्द्व में हैं। सुराम की उन्मत्त धाराओं में स्वयं को मुक्त छोड़ देने वाला व्यक्ति इस समय अपने से ही युद्ध कर रहा था। उसके सारे विकार उसके समक्ष खड्गहस्त थे।

आचार्य का यह मौन बोझिल ही नहीं, रहस्यमय भी था। पता नहीं किस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर फूट पड़ेगा। प्रवज्ञा बुझते दीप की लौं की भाँति भभक रहा था। उसे लग रहा था कि सारी आशंका उससे ही आकर टकरा रही है।

"मनुष्य किसी और का नहीं, अपने कर्मों का ही फल भोगता है।"— उस गम्भीर वातावरण में आचार्य की वाणी तीर-सी छूटी। उनकी चुभती दृष्टि प्रवज्ञा की ओर मुड़ी और वे बोलते रहे,—"प्रवज्ञा, तुम वृषपर्वा के अमात्य हो। इस आश्रम की आर्थिक व्यवस्था असुरराज द्वारा संचालित है।...." फिर एक चुप्पी उनके मुख पर चिपक गयी। शायद वे यह कहना चाह रहे थे कि भिक्षा-वृत्ति पर आश्रम को न चलाकर मैंने स्वयं को राजसत्ता के हाथों बेचकर अच्छा नहीं किया।... किन्तु वे मात्र इतना बोले,—"... हमारी परवशता ही कदाचित् तुम्हें यहाँ से हटने के लिए नहीं कहती। जब तक तुम्हारी इच्छा हो तुम आश्रम में रहो, पर अब मेरी अनुमति के बिना एक भी व्यक्ति यदि परिसर में आया, तो अच्छा नहीं होगा।"

प्रवज्ञा ने बातें आगे बढ़ाना ठीक नहीं समझा। वह प्रणाम कर लौट पड़ा। कुछ ही कदम आगे बढ़ा होगा कि अचानक उसे बादलों सा कड़कड़ाता स्वर सुनायी पड़ा, "....और सुनो!....मारे गये अपने मित्रों की अन्त्येष्टि की व्यवस्था करो। उन्हें पुनर्जीवित कराने का प्रयत्न मत करना।"—इस बार प्रवज्ञा के नीचे की धरती खिसक चुकी थी।

समय दौड़ता रहा परिस्थितियाँ बड़ी तेजी से बदलती रहीं।

कच लगभग स्वस्थ हो चुका था, किन्तु वातावरण अस्वस्थ होता जा रहा था। आशंकाओं के प्रलयंकर मेघ आश्रम पर मँडरा रहे थे। किसी समय कुछ भी हो सकता था।

लगभग निश्चित हो चला था कि युद्ध अधिक दिनों तक टाला नहीं जा सकता। प्रवज्ञा के कक्ष के बाहर उस रात को मारे गये तीन असुरों को लेकर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भी काफी तनाव था। वृषपर्वा का आग्रह लेकर विशेष दूत भी आया था, पर आचार्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। ·· अन्त में मृतकों के सम्बन्धी बुलाये गये और आश्रम के बाहर ही उनकी अन्त्येष्टि कर दी गयी।

चिता धूँ-धूँकर जल रही थी। एक नहीं, तीन-तीन। ····और आश्रम का कोई नहीं था। साधारण शिष्टाचार का भी निर्वाह नहीं किया गया। बाहर की ज्वाला से अधिक प्रवज्ञा के भीतर ज्वाला थी। उसका अन्तर धुआँ उगल रहा था, जिसमें असुरों की अस्मिता धुँधली होती उसे ज्ञात हुई। सूर्य डूब चुका था। उसे लगा मेरा ही रक्त आकाश में पसरने लगा है।

कुछ ही समय बाद नभ में शुक्र चमकने लगा। प्रवज्ञा पागलों सा चिल्लाया,—"ओ देखो, हमारे रक्त पर वह एकाक्षी मुस्करा रहा है।"

प्रवज्ञा को कदाचित् ही कोई समझ सका हो। ····अब वह चीखकर शान्त हो चुका था। लोगों ने इतना ही समझा कि अमात्य का मानसिक संतुलन गड़बड़ा गया है, उन्हें संभालने की आवश्यकता है। शर्मिष्ठा के निकट खड़ा एक सैनिक उनकी बगल में चला आया और शान्त भाव से खड़ा हो गया।

शर्मिष्ठा तो बहुत पहले से ही अमात्य को पढ़ रही थी। अब सबकी दृष्टि उनकी ओर लग गयी। लगा उबलता लावा अब बाहर छलकने वाला है। ·· अचानक उस सैनिक की कटि में कसी म्यान से उन्होंने एक झटके में असि निकाल ली। उसे उस सैनिक को थमाते हुए कहा, —"इस असि को लेकर शपथ लो कि जब तक सभी देवों के शव इसी तरह धूँ-धूँ कर जला नहीं दिये जायेंगे, तब तक यह असि अब म्यान में नहीं जायेगी।"

सैनिक चुपचाप उन्हें देखता रहा।

"मेरा मुँह क्या देखते हो? मैं कहता हूँ, शपथ लो।"—यह प्रवज्ञा नहीं, उसके भीतर का असुर तड़पा था। सन्नाटा थरथरा उठा।

उस सैनिक ने तलवार ऊपर कर अपने अमात्य का वचन दुहरा कर शपथ ली।

"यह शपथ तुम नहीं ले रहे हो, वरन् तुम्हारे माध्यम से आज सम्पूर्ण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

असुर संस्कृति संकल्प बद्ध हो रही है।"—प्रवज्ञा ने कहा,—"यदि शीघ्रता नहीं की गयी तो यह आचार्य भी हाथ से निकल जायेगा।"

धीरे-धीरे अँधेरा बढ़ने लगा। लपटें सिकुड़ने लगीं। चिता मात्र अब अंगारों का ढेर रह गयी थी। ये अंगारे भी आखिर राख हो जायेंगे। प्रवज्ञा उनमें जीवन का क्रम देखने लगा। मृत्यु भी मनुष्य को कितना भावुक बना देती है। …मृत्यु न होती तो मनुष्य जीवन का मूल्य ही न समझता।

लोगों ने अनुभव किया कि दक्षिण की पगदण्डी पर बढ़ती एक छाया वट वृक्ष के नीचे आकर खो गयी है। अवश्य ही कोई व्यक्ति हमारी गतिविधि छिप कर देख रहा है। लोग कुछ बोले नहीं। आँखों-आँखों में बातें हुईं और सबकी दृष्टि उस ओर लग गयी। कुछ ही पलों में वह लड़खड़ाती छाया वट की परिधि से निकली और आगे बढ़ती जान पड़ी।….उस व्यक्ति की तलवार अब भी ऊपर उठी हुई थी।

अरे, यह तो कच है! थोड़ी देर बाद स्पष्ट हो गया।….किन्तु यह इधर क्यों आ रहा है? बढ़ते कुतूहल के साथ हृदय की धड़कने भी बढ़ने लगीं।

वह आया। राख होती चिताओं के समक्ष सिर नीचा कर और हाथ बाँध कर खड़ा हो गया। कोई कुछ बोला नहीं। कभी-कभी गर्म हवा का झोंका अंगारों का स्पर्श करता आ जाता था। झरता हुँआ दिन रह-रह कर उसाँसें भर लेता था।

"तुम यहाँ क्यों चले आये?"—अंततः प्रवज्ञा की खौलती आवाज छलक पड़ी।

"अपनी श्रद्धांजली देने।"—कच नितान्त शान्त भाव से बोला।

इस विषम स्थिति में भी अकेले, वह भी अस्वस्थता की स्थिति में, लड़खड़ाते हुए और इतने शान्त भाव से। लगभग सभी चकित थे। "एक तुम्हीं आश्रम के हो जिसे श्रद्धांजली की चिन्ता हुई।"

"….मैं 'आश्रम का' नही हूँ।….'आश्रम में' हूँ।" कच मुस्कराया।

"तुम्हारा तात्पर्य?"—प्रवज्ञा ने पुनः पूछा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"तात्पर्य तो स्पष्ट है।"—कच ने कहा,—"मैं तो बहता जल हूँ, अमात्य। आज यहाँ कल कहीं और रहूँगा।"—पल भर रुकने के बाद वह कहता गया,—"…क्योंकि मेरी पिपासा यहाँ शान्त नहीं हो पा रही है।"

लोगों ने एक दूसरे की ओर पुनः देखा। मानो वे कहना चाह रहे हो कि संजीवनी विद्या प्राप्त करने में यह निराश हो चुका है। "…आखिर ऐसी निराशा क्यों?"—किसी ने पूछ ही दिया।

"जिस आश्रम में हत्याएँ आरम्भ हो गयी हों, वहाँ ज्ञानार्जन नहीं किया जा सकता।"

"अच्छा तो आप यहाँ ज्ञानार्जन करने आये हैं?"—एक व्यंग्य भरी खिलखिलाहट उस गाढ़े अन्धेरे में उभरी और झर कर शान्त हो गयी, किन्तु कच समझ गया कि इसका तात्पर्य क्या है। उसने सीधे उत्तर तो नहीं दिया, किन्तु किसी सन्दर्भ में बोला,—"पिताजी चाहते तो किसी दूसरे आचार्य के यहाँ भेज सकते थे।… अभी आर्यावर्त में अनेक आचार्य हैं जिनकी ज्ञान गरिमा शीर्ष विन्दु पर है, पर उन्होंने सोचा कि तुम्हें पहले मेरे प्रतिपक्षी के यहाँ ही जाना चाहिए। नीति भी यही कहती हैं और परिस्थिति भी।"

'परिस्थिति' शब्द सुनते ही लोग सजग हो गये। शायद कच स्वयं संजीवनी विद्या के विषय में कुछ कहेगा, क्योंकि हर व्यक्ति की मानसिकता उसी संजीवनी विद्या से ही उलझी थी। कोई उससे दूर हटकर कुछ सोच नहीं पा रहा था। पर कच मौन हो गया और असुर सैनिक के हाथ की नंगी तलवार देखने लगा।

विषम स्थिति थी। एक ओर शर्मिष्ठा और दूसरी ओर वह नंगी तलवार। एक ओर 'काम' का उत्स और दूसरी ओर हिंसा का प्रतीक। एक ओर आकर्षण और दूसरी ओर विकर्षण।…किसी असुर ने ही बात आगे बढ़ायी,—"आप परिस्थिति के सम्बन्ध में कुछ कह रहे थे।"

"…हाँ, मेरे पिताजी का कहना है कि अब परिस्थितियाँ बदल रही हैं। हमें सोचना चाहिए कि क्या जीवन सचमुच युद्ध के लिए है या उसमे और कुछ भी है? क्या प्रेम, शान्ति, सहिष्णुता के लिए हम तरसते ही रहेंगे?…आखिर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक समय ऐसा आयेगा जब यह जलती हुई चिता भी शान्त हो जायेगी।.... क्या देवासुर संग्राम का कोई विराम नहीं होगा ?"

"होगा, अवश्य होगा।"—नग्न असिधारी वह सैनिक अचानक बोल पड़ा,—"....जब सभी देवों की चिताएँ ऐसी ही जलकर राख हो जायेंगी।"

कच हँस पड़ा,—"किन्तु सोचो, इससे हमे मिलेगा क्या ?"—उसने कहा—आग से आग बुझायी नहीं जा सकती। प्रतिशोध से हिंसा धोयी नहीं जा सकती। हमारे पूर्वज भी युद्ध की अग्नि में जलते रहे और हम भी जीवन भर जलते रहें, साथ ही अपने वंशधरों के लिए भी इस जलन को छोड़ जायें। "इससे क्या लाभ है ?"

लोग बड़े, ध्यान से कच की मुद्रा देखते रह गये। लोगो को स्पष्ट लगा कि पुराना कच मर गया। पुनर्जीवन के बाद वह एकदम बदला हुआ है। "आखिर तुम्हारा मन्तव्य क्या है ?"—प्रवज्ञा ने बड़े शान्त भाव से पूछा।

"क्या कोई ऐसी स्थिति नहीं हो सकती कि देवासुर संग्राम सदा के लिए समाप्त कर दिया जाय ?"—कच के स्वर में एक थके हुए सैनिक की हताशा नहीं थी, वरन् स्थायी शान्ति की ललक थी।

"इसका निर्णय तो वृषपर्वा और इन्द्र को करना है।"—प्रवज्ञा बोला।

"उन्हें तो केवल आदेश देना है, लड़ना और मरना तो हमें है। राजा तो वैभव और विलास का सुख भोगता है, मरती तो प्रजा है।....इसलिए निर्णय हमे लेना चाहिए। वृषपर्वा और इन्द्र के निर्णय पर चलते-चलते तो हमारी यह दशा हो गयी।"—कच के स्वर का आरोह अवरोह जरा भी अस्वाभाविक नहीं था।

हर व्यक्ति के समक्ष कच एक प्रश्न-चिह्न हो गया। सुलगती चिताओं की आत्मा धूम बनकर अब भी आकाश की ओर चली जा रही थी। यद्यपि शर्मिष्ठा और कच के बीच की दूरी कम नहीं थी, फिर भी उसे लगा कि कच मेरी ओर आ रहा है। उसकी आँखों की सुगन्ध में उसका मन डूबने लगा। क्षण भर के लिए उसका दृश्य जगत अदृश्य हो गया और वह रात उसके सामने आ गयी जब उसने कच को लेकर संसार के किसी कोने में छिपने की कामना की थी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"मैं तुम्हें बड़े ध्यान से सुन रहा था।"--प्रवज्ञा ने कच से कहा,--"...पर पता नहीं क्यों तुम पर विश्वास नहीं कर पाता।"

"विश्वास का पंछी सद्‌भाव की ही डाल पर बैठता है, अमात्य।"--कच हँस पड़ा,--"...जो शायद हमारे बीच में नहीं है।

"ऐसा तो नहीं कि तुम मुझे राजद्रोह के लिए भड़का रहे हो?"—प्रवज्ञा एकदम खुल गया। कच हँस पड़ा। उसकी खिलखिलाहट हर मन का स्पर्श करती निकल गयी।

"यदि यह सत्य है तो मैं आपको भड़काने के पूर्व ही राजद्रोही हो चुका हूँ, क्योंकि मैंने एक ही तुला पर वृषपर्वा और इन्द्र दोनों को तौला है।"—एक इन्द्रजालिक मुस्कराहट कच के अधरों के बीच खेलती रही। "... मेरा एकमात्र उद्देश्य है, और वह यह कि यह उठी हुई तलवार सदा के लिए म्यान में चली जाये।"

प्रवज्ञा ने उस सैनिक से संकेत से कुछ कहा और उसने असि को कोष में डाल लिया।

निश्चित ही यह सब कुछ क्षणिक था। अस्थायी था। केवल वह अँधेरा स्थायी था जो धीरे-धीरे सबको निगलता चला गया।

"कहाँ से आ रहे हो?"—आम्रवन की पुष्करिणी तक पहुँचते-पहुँचते उसे जयन्ती मिल गयी। कच ने चारो ओर दृष्टि घुमायी कि कहीं कोई देख तो नहीं रहा है। जयन्ती ने समझ लिया,—"यह अमा निशा का अन्धकार है, हमें कोई देख नहीं सकता।"

कच हँसा। "यह अन्धकार केवल हमारे लिए नहीं, औरों के लिए भी है। जैसे कोई हमें नहीं देख सकता, हो सकता है हम भी किसी को न देख सकते हों।"—अब उसे भी हँसी आ गयी। कच का हाथ पकड़ कर वह रसाल के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

घने वृक्ष के नीचे खिसकी। ''''कच ने उसे बताया कि वह मारे गये असुरों की अन्त्येष्टि में गया था।

उसके इस साहस पर जयन्ती चकित रह गयी,—"तुम्हें भय नहीं लगा ?···· वे तुम्हारे प्राणों के भूखे हैं।"

"मैं उनकी भूख ही तो शान्त करने गया था।"—कच बोला। जयन्ती उसे समझ नहीं पायी, एकटक देखती रह गयी। अब उसने स्वयं को स्पष्ट किया,—"मैंने प्रवज्ञा से कहा कि यह रक्त की पिपासा कभी शान्त नहीं होती। इसका सिलसिला पूर्वजों से आया है और वंशजों तक चलता रहेगा। कुछ ऐसा कीजिए कि देवासुर संग्राम सदा के लिए समाप्त हो जाये।"

"तब क्या कहा उसने ?"

"कहता क्या केवल सुनता रहा।"

"क्या समझते हो, तुम्हारा प्रस्ताव कार्यान्वित हो सकेगा ?"—जयन्ती के स्वर में आतुरता थी।

"तू कितनी भोली है जयन्ती ! राजनीति का क ख ग···भी नहीं जानती।" —कच ने कहा—"न तो यह प्रस्ताव कभी कार्यान्वित होगा और न मैंने इसे कार्यान्वित होने के लिए रखा है। वास्तविकता यह है कि युद्ध की आग न हम लोगों ने लगायी है और न हम लोग उसे शान्त कर सकते हैं ?"

"फिर इस प्रस्ताव के पीछे तुम्हारी मंशा क्या है ?"

"भ्रम पैदा करने की, सैनिकों में असन्तोष पैदा करने की।"—कच कहता गया—"शत्रु जितना भ्रम में रहेगा, हमें उतना ही अवसर मिलेगा।"

"तो क्या समझते हो, तुम्हारी मंशा पूरी हो जायेगी ?"

"मैं फल की चिन्ता नहीं करता राजकुमारी।····मंशा पूरी हो या न हो। केवल कर्म करना ही हमारे हाथ में है।"—कच आप्त वचन बोल गया।

"···किन्तु लगता है, अब युद्ध अधिक दिन तक टाला नहीं जा सकता।"—जयन्ती कुछ सोचते हुए बोली।

"इसे मैं समझता हूँ।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"फिर संजीवनी विद्या के सन्दर्भ में क्या सोच रहे हो ?"

"यह मेरा काम है।...इसके लिए तुम चिन्ता छोड़ दो।"—कच का स्वर गम्भीर हुआ,—"अभ्यास लगभग पूरा हो चला है। देखना, एक दिन वह विद्या मेरे हाथ में होगी।"

कितना आत्म विश्वास है इसे।—जयन्ती एकटक देखती रह गयी। पल भर बाद वह स्वयं बोला,—"तुम बस अपना जादू आचार्य पर डालती जाओ।"

"एक नितान्त आरोपित व्यक्तित्व मैं कब तक ओढ़े रहूँगी ? क्या नाटक ही मेरा जीवन हो जायेगा ?"—वह सोचने लगी, पर कुछ बोल नहीं पायी। उसने अनुभव किया कि मार्ग के सुदूर पूर्व एक छाया बढ़ी चली आ रही है। उसने कच को भी दिखाया,—"लगता है, अतिबल इधर ही आ रहा है।"

"उसके वस्त्र तो ऐसे हिल रहे हैं जैसे वह पुरुष न होकर कोई नारी हो।" —दोनों बड़े ध्यान से उधर देखने लगे,—"....यह तो देवयानी मालूम होती है।"

"मनुष्य के मन में जो होता है वही उसे दिखायी देता है।"—जयन्ती बोली और खिलखिला पड़ी, पर कच मौन ही रहा। निश्चय ही उसका मन इस व्यंग्य पर हँसा होगा।

"मेरा विचार है कि अब तुम्हें यहाँ रोकना ठीक नहीं।"—जयन्ती ने कहा,—तुम आगे चलकर जो भी हो उसे उलझाओ।... तब तक मैं दक्षिण के मार्ग से आचार्य कक्ष की ओर बढ़ती हूँ।

मुस्कराता कच झुरमुट से निकला और लपकता हुआ बढ़ चला। उसकी चाल से लग नहीं रहा था कि वह अस्वस्थ है।

"मैं तुम्हारे कक्ष में गयी थी और मैंने देखा तल्प पर बिल्ली सो रही थी।" —देवयानी कच को देखते ही विहँस पड़ी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"आखिर पशु के तल्प पर पशु ही सोयेगा न !"

"यदि कभी मनुष्य सो जाये तब ?"

"तो उस मनुष्य को अभागा ही समझो ।"—कच बोला । वासना में डूबी देवयानी की खिलखिलाहट दोनों को लपेटती निकल गयी ।

एक दूसरे के कन्धे पर बाँहें डाले दोनों कच के उटज की ओर चले ।

वासंती रात्रि का प्रथम प्रहर सुरभित समीरण से और अधिक मादक हो चला था ।

कच ने अनुभव किया कि आज देवयानी बहुत अच्छी लग रही है । बालों में फूल गूँथे हैं अंगराग से सिक्त भुजाएँ, किशोर कदली स्तम्भ की भाँति कोमल और स्निग्ध हैं । रति की आकृति से चुरायी गयी मुस्कराहट बार-बार उसके अधरों से छलक पड़ती है । जब रह-रह कर कच के स्कंध को कुछ विशेष प्रकार से दबाती है तब उसकी रंगों में विद्युत कौंध जाती है । अंततः कच के मुख से निकल ही पड़ा,—"आज का अँधेरा कुछ विचित्र सा लग रहा है देवयानी ।"

देवयानी इठलाती हुई लगभग दोहरी सी हो गयी । उसके गले में झूलती हुई बोली—"इसी अँधेरे में बीज अंकुरित होता है ।"

कच कुछ समझ नहीं पाया । वह उसे एकटक देखता रहा । अब वह उसके और निकट थी । अंशुक से ढँके उसके वर्तुल उरोजों का दबाव उसके वक्ष पर बढ़ता जा रहा था । अचानक उससे जैसे किसी ने कुछ कहा, वह एकदम पीछे हटा । देवयानी समझ गयी कि सदा की भाँति एक झिझक कच में फिर जाग उठी है ।…पर कितने दिनों तक यह झिझक उसमें जागती रहेगी । आज उसे समाप्त करके ही दम लूँगीं । अभिसारिका की वासना में विषतूलिका की कटी दुम से कहीं अधिक छटपटाहट होती है । यह छटपटाहट देवयानी को उसके और निकट घसीट ले गयी थी ।

कच ने समझ लिया कि आज वह पराभूत होने की स्थिति में है । बात बदलते हुए तल्प पर बैठते ही वह बोला,—"तू बीज के सम्बन्ध में कुछ कह रही थी ।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"...कह रही थी कि बीज को अंकुरित होने में अन्धकार सबसे अनुकूल परिस्थिति है।"—तल्प पर वह एकदम उससे सट सी गयी,—"हर बीज धरती के भीतर ही फूटता है, जब उसके चारो ओर अंधेरा रहता है।"—देवयानी उसे आलिंगन पाश में जकड़ने की स्थिति में थी।

कच एक अनिर्वचनीय सुख की भी अनुभूति करने की स्थिति में था, पर उसके भीतर एक ध्वनि बार-बार टकराने लगी थी,—देखो, तुम ब्रह्मचारी हो। तुम्हारा स्खलन तुम्हारे संकल्प का स्खलन होगा, देव सृष्टि के अस्तित्व का स्खलन होगा। इतिहास तुम पर थूंकेगा और घृणा के स्वर में कहेगा—गया था संजीवनी विद्या लेने और एक सुकुमारी के सौन्दर्य पाश में बँधकर बुझ गया।

वह छटपटाया, फिर भी बड़ी आत्मीयता से उसने उसकी भुजाओं से स्वयं को मुक्त किया और बड़ी योग्यता से उसकी वासना को सहलाते हुए बोला,—"यह अंधेरा स्वयं को खोने के लिए नहीं, वरन् कुछ होने के लिए है।" .. और वह हँसने लगा।

"होने के लिए ही तो बीज स्वयं को खोता है, तब वह अंकुरित होता है।"—देवयानी बोली। उसकी वासना उससे लिपट जाने के लिए आतुर थी।....किन्तु कच का अन्तर आन्दोलित था। उसका काम उसकी चेतना की सजगता के कारण लुप्त होने लगा था। वह देवयानी की वासना से मुक्ति अवश्य चाहता था, पर उसे नाराज करके नहीं।

"किन्तु अंकुर को तो प्रकाश चाहिए।" उसने बातों का क्रम चलाये रखा। शायद उसके किसी छोर के सहारे वह इस वैतरणी को पार कर ले। किन्तु उसकी पकड़ ढीली पड़ते ही देवयानी की आसक्ति पुनः उबल पड़ती थी,—"हम दोनों बीज ही तो हैं, दो दाल वाले एक बीज। यह अँधेरा एक विराट धरती है, जिसमें हम पड़े हैं और एक होते ही अंकुरित हो उठेंगे।

"तो क्या तू समझती है कि अभी तक हम एक नहीं हुए हैं।....पगली कहीं की।"—इतना कहते हुए उसने एकदम झटक दिया और बड़ी विचित्र हँसी हँसने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लगा। वह स्वयं नहीं समझ पाया कि आज देवयानी बीज के सन्दर्भ में ही क्यों बोल रही है।

"यह दो दाल वाले बीज उसी समय एक हो गये थे जब ऋषि कुमारी ने इस जानवर के गले में प्रेम का फन्दा डाल दिया था।"

"सच ?"—कहती हुई वह कच से लिपट गयी, पर इस बार वह उसके तन के अतिरिक्त और कुछ न छू सकी थी। मन तो कहीं और था। "····इसका तात्पर्य है कि हमारा प्रेम अंकुरित हो चुका है ?"—उसने कहा।

"निश्चित।"—कच बोला,—"जानती हो उसे अब किस वस्तु की आवश्यकता है ?"

देवयानी मौन, उस अँधेरे में भी उसका मुख देखती रह गयी।

"मैंने कहा था न कि हर अंकुर को प्रकाश चाहिए।"—कच हँसते हुए बोला,—"····तुम उठ कर अब दीप जला दो।"

यह पहला अवसर नहीं था। देवयानी कई बार ऐसी मात खा चुकी थी।···· किन्तु इस हार में भी उसे एक विशेष प्रकार की तुष्टि मिलती थी। वह कच के साथ हँसती रही और उठकर वातायन के समक्ष रखे दीप को जलाने लगी।

"यदि अन्यथा न समझो, तो एक बात पूछूँ।"—कच बोला, पर देवयानी चुप थी। वह दीपक के मद्धिम प्रकाश के जन्म के पूर्व से ही कच की आकृति पर प्रश्न पढ़ने की चेष्टा करने लगी।

"आज तुम्हारा सारा संवाद बीज के माध्यम से ही क्यों हुआ ?"—कच ने कहा। देवयानी हँस पड़ी। उसके लिए यह शंका अप्रत्याशित थी। उसने बताया, "मैंने सुना है, प्रवज्ञा ने देव वंश के बीज तक को समाप्त करने का संकल्प लिया है।"

"हे भगवान क्या होगा ?"—कच की मुद्रा नाटकीय हुई,—"लगता है देव सृष्टि का विनाश आसन्न है।"

"तुम कितने सहज हो कच!"—देवयानी हँसती हुई पुनः उसके बगल में बैठ गयी,—"ऐसा भला कभी हो सकता है ?"—उसने कहा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर कच पर उसके कथन का जैसे कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह नाटकीय घवराहट में ही बोला--"यह समाचार तुम्हें मिला कैसे ?"

"कुलिश ने वताया ।"--देवयानी ने कहा,—"जव मैंने उससे पूछा कि उस रात प्रवज्ञा के कक्ष में क्या मंत्रणा हो रही थी तव उसने कहा था ।"

कच चुप था। उसने अपनी आकृति पर कई प्रकार की भाव भंगिमाएँ उभारीं, पर मन-ही-मन वह कुलिश की बुद्धि की सराहना कर रहा था।

उसके गम्भीर मौन से देवयानी ऊवने सी लगी,—"तुम क्या सोचने लगे ?··· मेरे और तुम्हारे रहते कभी ऐसा हो सकता है ?"--वह बोली और उसके कंधों पर पुनः हाथ डाल दिया,--"हाँ, तुम्हें एक वचन देना होगा ?"

"क्या ?"

"····कि तुम हमारे हो और सदा हमारे रहोगे ।"

कच की हँसी इस बार प्रगल्भ हुई। वह बड़ी देर तक हँसता रहा और वड़ी योग्यता से उसने इस बन्धन को भी अस्वीकारा,—"इस प्रकार के वचन लेने की आवश्यकता तो मनुष्यों से पड़ती है।··· मैं तो जानवर हूँ।···और जानवर वचन में नहीं कर्म में विश्वास करते हैं।"—इस बार उसने अपनी भुजाएँ स्वयं देवयानी की ओर बढ़ा दी और वह ढुलक गयी।

नारी जब गिरती है तो पहाड़ी से शिलाखण्ड की तरह ढुलकती चली जाती है। उसे रोकना भी स्वयं को जोखिम में डालना है, पर ऐसी जोखिमों का कच अभ्यस्त हो चुका था। वह तो उस चट्टान की भाँति था जिस पर कोई ढुलके या बह जाये पर उसके व्यक्तित्व में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

किन्तु, उस रात एक विचित्र घटना घटी जिसने उसके जीवन को ही मोड़ दिया।

रात आधी से अधिक जा चुकी थी। कच अपने तल्प पर खर्राटे भर रहा था। उसने एक स्वप्न देखा। यह उसके अव्यवस्थित मन की अराजक अभिव्यक्ति से अधिक कुछ नहीं था। उसने देखा कि वह एक पहाड़ी पर है। पहाड़ी की तलहटी से लगा एक अन्तहीन समतल है, जहाँ घनघोर युद्ध हो रहा है। देवासुर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संग्राम। हजारों लोग कट मर रहे हैं। ऐसी विभीषिका और इतना रुद्रत्व उसने कभी नहीं देखा था, पर वह जरा भी घबराया नहीं। जरा भी व्यग्र नहीं। बड़े सामान्य भाव से देखता रहा। लोग मारते और मरते रहे।

इसी बीच उसे लगता है कि उसका हाथ पीछे से कोई दबा रहा है। वह मुड़कर देखता है, देवयानी मुस्कराती हुई उसे खींच रही है। "इन्हें मारने मरने दो; इन्हें हमसे क्या लेना देना है।"—वह बोली। कच चुपचाप उसे देखता रहा। दूर युद्ध चल रहा था। "इधर आओ। मेरे पास आओ।" वह उसे खींचती गयी। एक अबोध शिशु सा, पालित पशु सा वह खिंचता चला गया।

वह ज्यों-ज्यों उसके आलिंगन में बद्ध होता गया, वस्त्र लुप्त होते गये। यह क्या? निर्वस्त्र, नग्न। मर्यादाओं की सभी सीमाओं का उल्लंघन।··· फिर जैसे किसी ने उन्हें ढकेल दिया और वे पहाड़ी की अतल गहराई में धम् से गिरे। कच की नींद टूट गयी।

"मैं पतित हो गया। च्युत हो गया। मेरे संकल्प चूर-चूर हो गये।"—उसका मौन उस अन्धकार में चीखने लगा। उसने इसी से ही टकराते नितान्त विरोधी स्वर का भी अनुभव किया,—"नहीं, नहीं। मैं स्खलित नहीं हुआ। मैं फिसला नहीं हूँ। अपने स्थान पर पर्वत सा अडिग हूँ। मेरे ब्रह्मचर्य का आकाश आज भी मेरी मुट्ठी में है। जिसे तुम स्खलन कहते हो वह तो स्वप्न था। निद्रा की एक मानसिक क्रीड़ा थी।"

उसके मन से एक दूसरी ध्वनि फिर उभरी,—"नहीं, नहीं। तुम्हें स्वयं नहीं मालूम कि स्वप्न क्या है, जागरण क्या है?···तुम्हारा जागरण तुम्हें दबाये रखता है। तुम्हारे मन से लिपटी देवयानी को शरीर से सदा खींचकर अलग करता है। पर तन से अलग होने पर कोई अलग हुआ है आज तक?···जागरण एक आरोपण है। स्वयं को छिपाये रखने की कला है। तुम्हारा स्वप्न मन की उन्मुक्त अवस्था है। तुम्हारा जागरण झूठा है, बेईमान है। तुम्हारा स्वप्न सच्चा है, ईमानदार है, साथ ही शक्तिशाली भी। तुम अपने जागरण को धोखा दे सकते हो, पर स्वप्न को कभी नहीं।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्तर्द्वन्द्व की चरम सीमा पर कच ने तल्प छोड़ दिया था। वह कक्ष के बाहर आया। उसे अब भी लग रहा था कि पृष्ठभूमि में देवासुर संग्राम चल रहा है। एक विचित्र हाहाकार उसके मस्तिष्क में गूँज रहा है। हजारों देवों का समवेत स्वर उससे कह रहा है,—"...हमारी रक्षा का संकल्प तुमने लिया था कच! ... और स्वयं अरक्षित हो गये। मेरे नष्ट होने के पहले स्वयं नष्ट होने लगे।... सँभलो, गिर रहे हो।"

दूसरी ओर उसे लगा देवयानी अब भी उसका हाथ पकड़े है। वह उसे अपनी ओर खींच रही है। वह एकदम चीख उठा,—"हे प्रभु! यह क्या हो रहा है?" ...और कुटी की दीवार पर सिर दबाकर खड़ा हो गया। प्रकृतिस्थ होने की चेष्टा की।

अब वह संभल चुका था। सामने आकाश की ओर देखा,—सप्तर्षि पश्चिम की ओर झुक गये हैं। ब्राह्ममुहूर्त आसन्न है।

आम्रवन में कोकिल बोल उठा।

"आज का अभ्यास मेरा अन्तिम होगा।"—उसने दृढ़ निश्चय किया और निर्झर की ओर स्नान के लिए चल पड़ा।

अग्निहोत्र समाप्त हो गया। दिन के चरण दूसरे प्रहर में भी पड़ गये, पर आज कहीं कच दिखायी नहीं दिया। मुँह-मुँह बात फैलने लगी। समाचार सुलगने लगा। व्यग्रता का सन्नाटा आश्रम को घेर बैठा।

जयन्ती को भी सूचना मिली, वह उद्विग्न हुई, पर आचार्य को छोड़ नहीं पायी।

जब देवयानी कच की पर्णकुटी के बाहर पहुँची, द्वार बन्द था। भीतर से अर्गला चढ़ी नहीं थी। स्पष्ट लग रहा था कि किसी पत्थर से द्वार अन्दर से दबाया गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देवयानी के एक शक्तिशाली आघात से द्वार खुल गया। "अरे यह क्या?" उसके मुख से निकला। वह गिरते-गिरते तल्प से टकरा गयी।

सामने कच का शव पड़ा था। जिसकी आशंका थी, वही हुआ। उसने उसकी नाड़ी देखी। वक्ष पर हाथ रखा। नासिका पुट दबाये। कहीं पर भी कोई स्पन्दन नहीं, जीवन का कोई चिह्न शेष नहीं। लगता है, वह सो रहा है। सदा खेलने वाली मुस्कराहट उसके अधरों पर अब भी जमी हुई है। उसका व्यक्तित्व पहले से अधिक आकर्षक है। उसके मन में आया कि वह उससे लिपट जाये; पर किससे?''''कच के शव से?—वह एकदम काँप उठी। धरती खिसकने लगी। इतने दिनों तक संजोया हुआ आकाश उसके आँचल से खिसक कर दूर हो गया।

वह रो पड़ने की स्थिति में थी कि एक ब्रह्मचारी उधर से गुजरता हुआ दिखायी दिया। उसने उसे बुलाया। भीतर आकर वह भी अवाक् रह गया।

पहले तो जैसे वह कुछ कह नहीं पायी। फिर लड़खड़ाते शब्दों में बोली,— "तुम नर्तकी को बुला ला सकते हो?"

"अवश्य।"—कहता हुआ वह चल पड़ा।

"देख, इसे फिर कुछ हो गया है।" नर्तकी के आते ही देवयानी बोली। जयन्ती की आँखों के आगे लाल पीला छाने लगा,—"आखिर उन लोगों ने इसके प्राण ले ही लिये।"—जयन्ती ने कहा।

"इसीलिए तो तुम्हें बुलाया है कि तुम इसके शव की रक्षा करो।"—देवयानी ने कहा,—अन्यथा, वे इस घात में होंगे कि जहाँ शव मिले उसे उठा ले चला जाये।

"अरे पगली, वे जला देंगे।''''जब शव ही नहीं रह जायेगा, तब पुनर्जीवन का प्रश्न ही नहीं उठेगा।"—देवयानी बोली,—"न रहेगा बाँस और न बजेगी बांसुरी।

देवयानी इस नूतन स्थिति से आचार्य को अवगत कराने चल पड़ी। जयन्ती

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मौन खड़ी रही। उसके नेत्र सजल हो उठे थे कि अचानक शव के अधर हिलने लगे और पहला शब्द निकला, जयन्ती !"

उसे लगा आकाश का कोई नक्षत्र उसके आँचल में चू पड़ा। वह एकदम विह्वल हो उठी,—"अरे तुम जी गये।"

"मैं मरा ही कब था ?"—कच बोला,—"यह तो मेरा अभ्यास चल रहा था।"

"....लेकिन तुम्हारे अभ्यास से लोग घबरा उठे।"—वह प्रसन्नवदना मंचक पर बैठ गयी।

"केवल तुम्हारी घबराहट दूर करने के लिए ही मैं बोला हूँ।"

"....तो क्या जब देवयानी यहाँ थी, तब भी तुम सचेत थे ?"

"हाँ तब भी था और अब भी हूँ।"—शव सदृश्य पड़ा-पड़ा कच बोलता गया।

"उस समय तुम्हारी नाड़ी बिल्कुल नहीं चल रही थी।"

"वह अब भी नहीं चल रही है, तुम चाहो तो देख सकती हो।"

जयन्ती ने देखा। सचमुच कोई स्पन्दन नहीं। चेतनता का कोई लक्षण नहीं है।

फिर वह हँसता हुआ उठ बैठा,—"यही तो मेरा इतने दिनों का अभ्यास है। मैं प्राणायाम से अपने प्राणों को ब्रह्मांड में चढ़ा लेता हूँ। संसार के लिए शव हो जाता हूँ, पर शिव के सानिध्य की स्थिति में रहता हूँ।"—इतना कहते-कहते वह अचानक रुका,—"तुम जाकर देवयानी से कहो कि कच स्वयं जी उठा है।"

"यदि वह पूछेगी कि कैसे जी उठा है, तो क्या कहूँगी ?"

"कह देना चेतना आप से आप लौट आयी है।"

"यदि विश्वास न करे तो ?"

"पगली, यदि कानों सुनी विश्वास न करेगी, तो आकर आँखों से देख लेगी।"....और फिर हँसने लगा। जयन्ती भी मुस्करायी और चल पड़ी। कच पुनः तल्प पर लेट गया।

कच फिर तंद्रिल अवस्था में होने लगा था। देवयानी ने आते ही द्वार से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पुकारा,—कच ! कच !! और उसका शरीर झकझोरने लगी। कच ने बड़े नाटकीय ढंग से आँखें खोलीं और मुस्कराया।

"तुम्हें क्या हो गया था ?"—आत्मीयता की सुरा उसकी वाणी से छलकी।

"यही तो मैं समझ नहीं पाया।"

"अब कैसा अनुभव कर रहे हो ?"

"नींद आ रही है।....लगता है, मैरेय के नशे में हूँ।"

फिर देवयानी ने जयन्ती से कहा,—जरा उस घट का जल तो दे, मैं इसका मुँह धुला दूँ।"

"नहीं, मैं उस घट के जल से मुँह नहीं धोऊँगा।"—कच बोला और विस्फारित नेत्रों से एकदम घट को देखता रहा, मानो वह बलात् अपनी पलकें गिरने न दे रहा हो।

"क्यों ? क्या बात है ?....उस घड़े के जल से इतनी घृणा क्यों ?....घट तो तुम्हारा ही है न ?"

"कभी-कभी अपने भी विषाक्त हो जाते हैं ?"

"क्यों ? यह जल विषाक्त है क्या ?"

"यह तो मैं नहीं कह सकता।"

"....तब तुम कहना क्या चाहते हो ?"

"क्या कहूँ ? मैं कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ। कल रात तुम्हारे जाने के बाद मैं सो गया था।"—इतना कहते ही कच मुस्कराया।

"तुम सो सके, मुझे आश्चर्य है।"—देवयानी बोली और हँस पड़ी।

"हाँ, सो तो गया था, पर एक स्वप्न देखा और जाग पड़ा।"—कच तन्द्रिल अवस्था में ही बोला।

"क्या देखा था, स्वप्न में ?"—स्पष्ट लगा कि देवयानी कुछ विशेष सुनने की इच्छा से पूछ रही है।

"कभी-कभी स्वप्न बताने योग्य नहीं होते।"—कच जोर से हँसा और फिर एकदम गम्भीर हो गया, जैसे नींद उसे दबोच रही हो। वह तल्प पर लेट गया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बाहर से जल लाने के लिए देवयानी ने जयन्ती से कहा। क्षणभर वह एक मृण्पात्र में जल लेकर आ गयी। कच का मुँह धुलाया गया। अब उसकी आँखें खुलने लगी थीं। उसने बताया कि नींद टूटने के बाद उसने इस घड़े का पानी पीया था, फिर क्या हुआ ? उसे कुछ पता नहीं।

"तब इस घड़े का जल विषाक्त अवश्य है।"—देवयानी बोली और उसने जयन्ती की ओर देखा। जयन्ती ने भी समर्थन में सिर हिला दिया।

"लगता है उन नीचों ने तुम्हें विष देकर मार डालने की योजना बनायी थी।"— "अब देवयानी के क्रोध में उबाल आने लगा था। वह कुछ क्षणों तक मौन बैठी रही।

"... यदि आप पुनः जल ला दें तो बड़ी कृपा हो।"—कच ने जयन्ती से कहा,—"मुँह धोने से मैं कुछ ठीक होने लगा हूँ।"—जयन्ती कच की नाटकीयता पर मन-ही-मन मुस्कराती चल पड़ी।

"अच्छा हो, यदि तुम स्नान कर लो।"—देवयानी बोली।

अब वह कैसे कहे कि ब्राह्ममुहूर्त में ही मैं स्नान कर चुका हूँ।....और योगाभ्यास के बाद स्नान वर्जित है। फिर भी उसने स्वीकृत में सिर हिला दिया।

कच इस बार उटज के बाहर निकलकर मुँह धोने लगा। जयन्ती धुला रही थी। वह नेत्रों में ही मुस्करायी। शायद कहना चाह रही थी कि तुम अद्‌भुत नाटकीय हो। किन्तु कच ने संकेत से ही कहा,—"एकदम गम्भीर रहो, जरा-सा भी गड़बड़ हुआ नहीं कि सब गुड़ गोबर हो जायेगा।"

इधर देवयानी कुछ सोचते-सोचते उठ खड़ी हुई। उसका मौन भभका,— "... देखती हूँ, आज कुछ-न-कुछ होकर ही रहेगा।"—कहती हुई वह चली गयी। जयन्ती अब भी हाथ धुला रही थी।

"तुम बड़े रहस्यमय हो कच !"—जयन्ती ने मुस्कराते हुए धीरे से कहा।

"मेरी अभीप्सा ने ही मुझे इतना रहस्यमय बना दिया है।""अन्यथा मैं भी बड़ा सरल हूँ।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"पुरुष और सरलता ?"—जयन्ती पुनः हँसी, कितने अनुभवों का निचोड़ था उस हँसी में। कच भी हँसने लगा।

अब वह पुनः भीतर आया। तल्प पर बैठा। उसके मस्तक पर रेखाएँ उभरने लगीं। जयन्ती उसे देखती रही। वह विचार मग्न हो चुका था।—"जानती हो, इस समय देवयानी क्या कर रही होगी ?" उसने प्रश्न का उत्तर भी स्वयं ही दिया,—"अब प्रवज्ञा को आश्रम से निकलवाकर ही दम लेगी।" कच हँसने लगा। क्षणभर बाद ही इस हँसी को उसने स्वयं फाड़ दिया और चिन्तन की मुद्रा में हो गया।

"अच्छा,—पहला काम यह करो कि इस घड़े को फोड़ दो।"—वह अचानक बोला।

"इस बेचारे ने क्या किया है ?"—जयन्ती हँसी।

"तू रह गयी वही की वही।" उसकी ध्वनि तेज हुई,—"राजनीति कहती है कि इसे शीघ्रातिशीघ्र नष्ट कर देना चाहिए।"

"आखिर क्यों ?"—जयन्ती की जिज्ञासा स्वाभाविक थी।

"इसका पानी विषैला रखने के लिए।"—कच जोर से हँसा। वह जान गया कि जयन्ती उसे समझ नहीं पा रही है। वह पुनः बोला,—"बात इस घड़े पर आकर अवश्य ही अटक जायेगी। देवयानी कहेगी कि घड़े के पानी में विष है।....और वास्तव में है नहीं।"—कच हँसने लगा—"यदि परीक्षा के लिए किसी पशु को यह जल पिलाया गया और वह नहीं मरा, तब क्या होगा ?....मैं तो झूठा सिद्ध हो जाऊँगा।....अतएव इस घड़े को फोड़ दो और उसके जल को विषैला ही रहने दो।"—इतना कहकर वह स्वयं उठा और एक लात उस घड़े पर जमायी।

"निरपराधी को इतना बड़ा दंड।"—जयन्ती विहँस पड़ी।

"कुचक्र की अवतारणा निरपराधियों के सिर पर ही तो घहराती है।"—कच बोला।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूरा आश्रम उमड़ चुका था। आचार्य उटज के समक्ष सभी एकत्र थे। सभी भयभीत थे, आचार्य की शोकाकुल मुद्रा से। एक ओर देवयानी आग उगल रही थी। दूसरी ओर प्रवज्ञा मौन खड़ा था। उसकी भंगिमा एक निरपराधी की भंगिमा थी, जिस पर अनेक दोष मढ़े जा रहे थे। वह स्वयं नहीं सोच पा रहा था कि यह सब क्यों है? किसके लिए है? वह जो कुछ सुन रहा था, उसी पर उसे आश्चर्य था। एक अनजान पथिक की तरह भौचक्का-सा एक स्थल पर खड़ा था जिसके चारो ओर अनचीन्हें रास्ते फूटते थे, पर किसी ओर बढ़ने का उसमें साहस नहीं था।

जब देवयानी को उसने अच्छी तरह सुन लिया, तब मात्र इतना समझ पाया था कि किसी ने कच के घट में गतरात्रि विष घोल दिया था। देवयानी का निष्कर्ष था कि यह कार्य असुरों का है। आचार्य इस सन्दर्भ में अपना निर्णय सुनायें, इसके पहले ही वह बड़े शान्त भाव से बोल पड़ा,—"ऋषिकन्या इस समय क्रोध में हैं। उनके प्रतिकार का तात्पर्य है, जलती हुई अग्नि में छींटे छोड़ना, उनके अमर्ष को भड़काना। ·· इसलिए जो भी उन्होंने कहा है मैं उनका विरोध नहीं करता और न समर्थन करता हूँ।····मैं पहले उस घट को देखना चाहता हूँ जिसके जल में विष घुला हुआ है।"

"आप सहर्ष देख सकते हैं।"—देवयानी फनफनायी।

अब तक कच भी पहुँच चुका था,—"पर वह घट अब कहाँ है?" उसने हँसते हुए कहा और बड़े प्रभावशाली ढंग से जयन्ती पर दृष्टि डाली, मानो वह कह रहा हो--देखा, मैंने क्या कहा था? जयन्ती कच के बुद्धि कौशल को स्वीकारती हुई आचार्य के पार्श्व में मौन थी, मौन रह गयी।

"····क्यों? क्या हुआ वह घट?"--देवयानी की आग्नेय आँखें कच की ओर मुड़ीं। "मैंने उसे फोड़ दिया।"—उसने कहा।

अब उसे लगा कि वह एक ऊँचाई से फिसल रही है।—"तुमने बड़ा अनर्थ किया कच!" वह बोली।

"मैंने अनर्थ किया नहीं, वरन् अनर्थ होने नहीं दिया।"—कच कहता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गया—"यदि कोई पशु उसका पानी पी लेता और मर जाता, तब क्या होता ?···ऐसा ही अनर्थ न होने देने के लिए मैंने उसे फोड़कर सारा जल वहा दिया।"

"··पर प्रवज्ञा जी जल की परीक्षा करना चाहते हैं कि वह विषाक्त है या नहीं।" देवयानी ने कहा,—"मेरे आरोप का प्रमाण ही तुमने नष्ट कर दिया।"

"आरोप का।"—कच इतना कह कर चुप हो गया। "अच्छा होता आप 'आरोप का प्रमाण' न कह कर 'कथन का प्रमाण' कहती।"—कच क्षणभर के लिए रुका, उसने प्रवज्ञा की ओर देखा और पुन: बोला,—"·· यह तो सत्य है कि उस जल में विष था, पर आप यह आरोप कैसे लगा सकती हैं कि उस विष के घोलने में अमात्य का ही हाथ है ?"—देवयानी को आश्चर्य था कि आज कच को क्या हो गया है।

स्वयं प्रवज्ञा भी कच के इस तर्क पर चकित था। यह पहला अवसर था, जब षड्यन्त्र में फँसे किसी असुर को एक देवपुत्र छुड़ाने का प्रयत्न कर रहा था। "अमात्य का हाथ भले न हो पर असुरों के अतिरिक्त कोई यह कार्य कर नहीं सकता।"—इस बार आचार्य स्वयं बोले।

उनकी ध्वनि का यह वज्रपात असुर समुदाय संभाल नहीं पाया। संभाला भी तो कच ने ही,—"मुझे तो इसकी भी आशंका नहीं लगती आचार्य !" देवयानी मन मसोस कर रह गयी। "मेरे सारे किये पर इसने पानी फेर दिया।···आज असुरों के प्रति इसके मन में कहाँ का ममत्व जाग पड़ा है।"—उसने मन-ही-मन कहा और नेत्रों से चुप रहने के लिए अनेक संकेत भी किये, पर कच पर इसका कोई प्रभाव नहीं था। उधर जयन्ती भी भीतर ही भीतर कुड़बुड़ा रही थी।

"मुझे इसलिए आशंका है कि असुरों को तुम्हारा यहाँ रहना पसन्द नहीं है।"—आचार्य पुन: बोले।

"यह तो सत्य है कि वे मेरे यहाँ रहने के विरोधी हैं।" कच ने स्वीकार किया,—"··किन्तु विष के विषय में मुझे एक दूसरी ही आशंका लगती है।"—लोगों को लगा कि कच किसी गम्भीर रहस्य का उद्घाटन करने जा रहा है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सबकी जिज्ञासाएँ प्रश्नवाची होकर भी चुप थी। आचार्य ने पूछा,—"क्या है तुम्हारी आशंका ?"

"महाराज, मेरे उटज में एक विषैला नाग रहता है। उस रात घट का आच्छादन रखना मैं शायद भूल गया था। हो न हो, उसी नाग ने घट के जल को पी लिया हो।"

"पर तुमने इस नाग के सम्बन्ध में पहले कभी नहीं बताया था।" देवयानी बोली।

"बताने की आवश्यकता नहीं पड़ी।"—कच बड़े सहज भाव से बोला।

"मान लो, कभी वह काट बैठे तो ?" देवयानी ने कहा।

वह मुझे कभी नहीं काटेगा 'क्योंकि उससे मेरा कोई वैर नहीं।"—कच बोला,—"विषधर भी अपने वैरी को पहचानता है। दुर्भाग्य है कि सुर और असुर नहीं पहचानते।"—कच प्रवज्ञा की ओर देखकर हँसने लगा। बड़ी सरल थी उसकी हँसी।

बाढ़ की नदी जैसे झाड़ बहा ले जाती है, कच की सहजता सारा आतंक बहा ले गयी। आश्रम का तनाव शिथिल पड़ गया। आचार्य मुस्कराते हुए कक्ष में चले गये। लोगों ने देवयानी को नर्तकी के कान में कुछ कहते देखा। कदाचित् वह कह रही थी,—"जल के विष ने इसकी बुद्धि पर प्रभाव अवश्य डाला है, अन्यथा अपने स्थायी वैरियों के सम्बन्ध में यह ऐसा न कहता। ·· देखना घात लगते ही वह इसका सफाया कर देंगे।"

इधर कच जब अपनी कुटी की ओर चला, तब मात्र प्रवज्ञा ही उसके साथ था। वह कृतज्ञता ज्ञापित करता चला जा रहा था—"यदि आपने न संभाला होता तो निश्चित ही आचार्य मुझे आश्रम से निकाल देते।····मैं आपका बडा आभारी हूँ।"

"इसमें आभारी होने की कौन सी बात है ? मैंने जो सत्य अनुभव किया वह कहा। आश्रम के ब्रह्मचारी का प्रथम कर्त्तव्य है,····सत्यंवद, धर्मंचर,··· स्वाध्याय प्रमदः ··।" ·· और फिर उसकी स्वाभाविक खिलखिलाहट उभर आयी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुटी तक पहुँचने के बाद जब प्रवज्ञा ने विदा ली, तब कच ने बड़ी आत्मीयता से पूछा,—"अमात्य मेरी वह बात याद है न ?"

"कौन सी ?"

"उन जलती चिताओं के सामने जो मैंने कहा था,—"क्या कोई ऐसी सम्भावना नहीं हो सकती जिससे देवासुर संग्राम सदा के लिए समाप्त हो जाये।

प्रवज्ञा सोचने लगा,—"कच की, आज की भूमिका क्या इसी सन्दर्भ में तो नहीं है ?"

आज रात कच की नींद बहुत पहले ही खुल गयी। उसने देखा, गवाक्ष पर ज्योत्स्ना चिपकी है। कल वैशाख की पूर्णिमा होगी। उसके मस्तिष्क में जैसे कुछ कौंध-सा गया। इससे अच्छा अवसर अब शायद ही हाथ आये, वह सोचता रहा। उसका मस्तिष्क योजनाओं में उलझता गया, वह तल्प पर पड़ा रहा। द्वार खुला था। वातायन से आम के बौरों के गंध के मादक झोंके आ रहे थे।

कुछ ही क्षणों बाद उसने अनुभव किया कि अतिबल अपना सेल पटकता उटज के द्वार के बगल से निकल रहा है। उसने पुकारा,—"अरे सुनते हो।"

अतिबल ने प्रवेश किया,—"आप अभी ही जाग गये ?....अभी तो दो घड़ी रात शेष है।"—उसने कहा।

"हाँ, आज नींद कुछ जल्दी ही खुल गयी।"—वह उठ बैठा और प्रहरी से बड़ी आत्मीयता से बोला,—"तुमसे कुछ मंत्रणा करनी है।"

"मुझसे और मंत्रणा ?" अतिबल को आश्चर्य था, फिर भी वह उसके निकट पहुँच गया। उसने उसे अपने बगल में बैठाया और कान में कुछ कहने ही वाला था कि उसकी अत्यधिक सजगता ने उसका मुँह बन्द कर दिया। यदि कोई मुझे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस समय यहाँ बातें करते देखेगा तो क्या समझेगा।....यही न कि सारा कुचक्र मध्य रात्रि में यहीं रचा जाता है।"—उसने सोचा और एकदम खड़ा हो गया।

मानसिक दृष्टि से भी कच अब सामान्य स्तर पर नहीं था। देवयानी उसके मन से ऐसी लिपटी थी कि एक क्षण के लिए भी वह उससे मुक्त हो नहीं पाता था। इस समय भी उसे लगा, यदि वह आ जायेगी तो क्या होगा ?

वह बाहर निकल आया। "चलो टहलते हुए बातें करूँगा ?" उसने अतिबल से कहा,—यदि कोई देख भी लेगा तो कहूँगा,—"वसंत की मादकता ने सोने नहीं दिया। टहलने निकल पड़ा। प्रहरी मिल गया।...यों ही बातें होने लगीं।"

फिर उसने कुछ अतिबल से कान में कहा। निश्चित ही कोई गोपनीय बात रही होगी और गम्भीर भी।....क्योंकि एक अवसर पर तो वह ठिठक सा गया, बोला,—"यह कैसे होगा ?"

"पर तुम्हें करना है, चाहे जैसे करो।"—कच ने कहा,—"कल मध्य रात्रि तक उसे तुम अवश्य मेरे यहाँ ले आओ।"

"किन्तु वह मिलेगा कहाँ ?"

"इतना बड़ा अरण्य है तुम एक विषधर नहीं ला सकते।"—कच बोला।

अतिबल सोचता खड़ा था।

"यदि यह अवसर हाथ से गया तो समझो देवताओं का अब कुशल नहीं है।"

अतिबल फिर भी सोचता रहा,—"....उस विषधर का आप कीजिएगा क्या ?"

"इससे तुमसे मतलब ?"—मेरी योजना की सबलता उसकी गोपनीयता ही है। उसे बने रहने दो।"

अतिबल सेल से धरती पर कुछ रेखाएँ बनाता अब भी खड़ा था। वह अपने मस्तिष्क की उलझन भूमि पर जैसे उतार रहा हो।

"हाँ, एक काम तुम्हें और करना पड़ेगा।"—कच ने कहा। अतिबल की जिज्ञासा ने एक अँगड़ाई और ली। वह सेल सीधा करके खड़ा हो गया। "हो सकता है, अब मुझसे जयन्ती की भेंट न हो।"—कच ने कहा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"तो क्या तुम आश्रम के बाहर जा रहे हो ?"—प्रहरी ने बीच में ही टोका, क्योंकि उसके विचार से यह समय आश्रम छोड़ने का नहीं है।

कच एकदम तुनक गया।,—"पहले मेरी पूरी बात सुनो। बीच में टोंक कर व्यर्थ मेरा समय नष्ट मत करो। ब्राह्ममुहूर्त निकट है। धीरे-धीरे जाग हो जायेगी।....और तब कुछ भी हो पाना सम्भव न होगा।"—कच बोलता गया,—"....मैं जाऊँगा कहीं नहीं। रहूँगा आश्रम में ही, पर जयन्ती से मिलना नहीं चाहूँगा, क्योंकि उससे मिलने का तात्पर्य है, लोगों के मन में सन्देह का बीज छोड़ना।...तुम्हीं उससे मिलो और एकान्त में ले जाकर कहो,—आज की रात सोम रात्रि है। आचार्य को ऐसा पिलाना कि उनकी चेतना सोम और सुराम में डूबने उतराने लगे।....रात भर ही नहीं सुबह तक वह इसका क्रम चलाती जाये और उन्हीं को ही नहीं आचार्य पुत्रों को भी पिला कर ढुलका दे। इसके लिए उसे जो भी करना पड़े वह निस्संकोच करे।....आज के बाद फिर यह अवसर आने वाला नहीं है।"

"आचार्य पुत्रों को तो कदाचित् वह पिलाना पसन्द नहीं करेगी।"—अतिबल बोला।

"मैं यह जानता हूँ।"—कच ने कहा,—"....पर देवताओं के लिए उसे ऐसा करना पड़ेगा। नीति तो यह कहती है कि आचार्य पुत्रों को ही नहीं, यदि सम्भव हो प्रवज्ञा को भी पिलाकर चेतना शून्य कर दे।"

"यह आप क्या कह रहे हैं?....क्या देवेन्द्र पुत्री असुर अमात्य के प्रति समर्पित हो जाये?"—अतिबल का देवत्व गुर्राया।

"समर्पित हो, चाहे न हो, पर उसे छल अवश्य ले।"

"....क्या एक नारी यह सब कर सकेगी?"—अतिबल ने सन्देह किया। कच हँस पड़ा,—लगता है किसी नारी से तेरा पाला नहीं पड़ा।.. अरे, नारी क्या नहीं कर सकती? बहुत सारा कार्य तो नारी की मादकता भरी मुस्कराहट कर देती है।"—वह हँसने लगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अतिबल सोचता रहा, फिर बोला,—"इसका मतलव है, अभी ही चल-कर उसे सचेत कर दूँ।"

"अभी नहीं। थोड़ी देर बाद, जब आचार्य अग्निहोत्र के लिए चले जाये तब वह कुठी में अकेली रह जायेगी।"

कच के कथन से वह सहमत हो गया, किन्तु क्या होने वाला है इसका जरा भी आभास उसे नहीं हुआ। उसका मन रहस्य की अनजान डगर पर भटकता रहा।—"वह दबी जबान बोला—पर इस सबका परिणाम क्या होगा?"

"जो कुछ होगा, भगवान की कृपा से अच्छा ही होगा।"—इस बार भी हँस कर कच ने रहस्य को और गहरा कर दिया। अन्त में बोला,—"जाओ, जो भी स्थिति होगी, उससे घबराना नहीं और न जयन्ती को व्यग्र होने देना।"

अभिवादन कर अतिबल चला गया।

चन्द्रमा पश्चिम की ओर ढुलक चुका था। कच मुक्त आकाश में स्वप्न लुटाता अपनी कुटी की ओर चल पड़ा। वह स्वयं को बड़ा हल्का अनुभव कर रहा था। तल्प पर पुनः लेटा तब उसे लगा जैसे उसने आधा युद्ध जीत लिया हो।

"अतीत बीत गया। उस पर हमारा अधिकार नहीं। भविष्य अभी आया नहीं और आते ही वह वर्तमान हो जायेगा। वर्तमान का भोग ही तो जीवन है। अतीत इतिहास है। भविष्य सम्भावना। अतीत पकड़ के बाहर है। भविष्य की चिन्ता खांसी आने के पहले मुँह खोलने की मूर्खता है।… किन्तु जो वर्तमान हमारी मुट्ठी में है उसी को मैंने कौन भोगा? एक प्यास भीतर सुलगाये रखी, एक अतृप्ति बाहर चिपकाये रखी। क्या यही मेरा जीवन है, तप्त और अभिशप्त।… अभीष्ट तुम्हें प्राप्त होगा, अभीप्सित तुम्हारी उपलब्धि होगी। फिर भी किसी से तुम्हारा कुछ लेना देना नहीं। क्या यही हमारी नियति है?…अमृत कुम्भ तुम देखते रहना, पर हाथ मत लगाना।"—कच सोचता रहा, उसकी करवटों के साथ उसकी विचारधारा भी करवटें बदलती गयीं—"जयन्ती, देवयानी, शर्मिष्ठा—सबने मेरी परिधि में प्रवेश किया। मैंने भी उनका स्पर्श किया, पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मन से उन्हें हटाता ही रहा, ढकेलता ही रहा, जैसे वे अस्पृश्य हों। जहाँ मन ने छूने की चेष्टा की वहीं उसे लगा कि यह सौन्दर्य तप्त लौह है। छूते ही फफोले पड़ जायेंगे।…क्या यही मेरा जीवन है। एक सुलगते अंगार की तरह राख लपेट कर जी रहा हूँ, एक नितान्त मृत आवरण के नीचे छटपटा रहा हूँ।

"…किन्तु कल क्या होगा ? अभीष्ट पाते ही उड़ने की चेष्टा करूँगा, पर जब देवयानी पंख पर चिपक जायेगी तब ?…क्या मैं उड़ सकूँगा।"—कच का अन्तर्द्वन्द्व चलता रहा।

श्वेतता जागरण का प्रतीक बनकर आकाश पर सुगबुगाने लगी थी। कोकिल कंठ थपकियां देकर उसे अब भी सुलाने की चेष्टा में था कि वह उद्विग्न होकर उठ बैठा,—"नहीं, नहीं। उसे मैं अपने पंख पर चिपकने नहीं दूंगा, क्योंकि मेरा संकल्प उपलब्धि प्राप्त करते ही उड़ना है, किसी को चिपकाना नहीं।"

वह अब बाहर निकल आया था। उसने देखा सामने से प्रवज्ञा आ रहा है। "लगता है, नींद टूटते ही आप चंक्रमण के लिए निकल पड़े हैं।"—कच ने कहा।

"जो लगी ही नहीं उसके टूटने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता।"—प्रवज्ञा बोला,—"आज रात मैं सो नहीं पाया। केवल आपके सम्बन्ध में सोचता रहा।"

"मेरे सम्बन्ध में ?… लगता है मैं पूरे आश्रम के लिए चिन्तनीय होता जा रहा हूँ।" कच के अधरों से एक बनावटी हँसी बिखरी। प्रवज्ञा भी व्यर्थ ही हँस पड़ा,—"आपके सम्बन्ध में मेरी पुरानी धारणा एकदम बदल गयी है।"

"हाँ, पुरानी वस्तु को बदलते रहना चाहिए, अन्यथा काम की नहीं रह जाती।"

"आप तो मेरी हर बात को बड़ा हल्का ले रहे हैं। मेरी इच्छा है कि आज आप असुरराज से अवश्य मिलें।"—प्रवज्ञा बोला,—"…और उनसे वही कहें जो आपने हम लोगों से कहा था।"

कच सोचने लगा कि प्रवज्ञा किस बात के सन्दर्भ में कह रहा है। उसकी मुद्रा का अर्थ अमात्य ने समझ लिया। उसने स्वयं बताया,—"…वही युद्ध को सदा के लिए समाप्त करने वाली बात।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"वो उसके लिए,"––कच की मानसिकता को इस प्रश्न का पूर्वाभास नहीं था, "··· किन्तु वृषपर्वा से इस सम्बन्ध में बात करना व्यर्थ है। वह राजा है, और विजयी राजा है। विजय का उन्माद कभी झुकना नहीं चाहता, अमात्य। ····झुकता तो वह है जिसमें किसी प्रकार की दुर्बलता हो या कोई आशंका हो। ····फिर वह युद्ध से घृणा क्यों करेगा? युद्ध से घृणा करेंगे उसमें मरने और कटने वाले लोग, हमारे और आप जैसे।····सोचना तो हमको है, आपको है।"

"····मैं इसलिए कह रहा हूँ कि आज वैशाख पूर्णिमा है। सोमयज्ञ का दिन। हो सकता है, आज महाराज सोम कुंभ लेकर पधारें।"—प्रवज्ञा ने कहा,—"बात तो चलायी जा सकती है।"

"··· किन्तु हवा में वाण मारने से क्या लाभ?"—कच बोला,—"····और मुझे आशा भी कम है कि आज वे पधारेंगे।"

"क्यों?"

"असुरराज बड़े स्वाभिमानी व्यक्ति हैं और जिस तरह का अपमान उनका यहाँ हुआ है, उसे देखते हुए मुझे विश्वास नहीं होता कि वे आज यहाँ आयेंगे।···· यदि सोमयज्ञ की सूचना उन्हें मिली होगी तो कुंभ अवश्य भेज देंगे।"—कच ने कहा

"आप भी समझते हैं कि उनका अपमान हुआ है?"

"यह समझने की नहीं, अनुभव करने की वस्तु है अमात्य!"

"मेरे कहने का तात्पर्य है कि देवता कभी असुरों के सम्बन्ध में इस तरह से नहीं सोचते।"—प्रवज्ञा बोला।

"देवता सोचे या न सोचे, देवपुत्र तो सोचते हैं।"—इस बार फिर कच की स्वाभाविक खिलखिलाहट ने जोर मारा,––"जिस पर आप आश्चर्य कर रहे हैं, वह दो पीढ़ियों का अन्तर है।"

कच की चिन्तनसरणी की प्रवज्ञा ने प्रशंसा तो नहीं की। वह मौन ही रहा, पर मन ही मन उसका लोहा मान गया।

अब वह लौट पड़ा था। कच उसे पहुँचाने अतिथि कक्ष तक जा रहा था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बड़ा प्रसन्न था कि मेरे जाल में यह इतना उलझ गया है कि रात भर सो नहीं पाया है। यदि ईश्वर ने चाहा तो कल रात भी सो नहीं पायेगा,....और हो सकता है अगली अनेक रातें इसे बिना नींद की ही बितानी पड़ें।"—कच को हँसी आ गयी। अपनी चतुराई पर या उसकी मूर्खता पर ? यह तो वही जाने, किन्तु जब प्रवज्ञा ने अचानक हँसने का कारण पूछा तब उसने दार्शनिकों की सी गम्भीरता में कहा,—"कभी-कभी अपने दुर्भाग्य पर भी हँसना पड़ता है।"

आश्रम की सन्ध्या सोम में डूब गयी। ज्यों-ज्यों चन्द्र बिम्ब नभ में चढ़ता गया, मादकता बढ़ती गयी। अधिकांश ब्रह्मचारी निरपेक्ष द्रष्टा थे। इस प्रकार के दृश्य उनके जीवन में अनेक बार आ चुके थे। इससे वे अभ्यस्त हो गये थे तथा इनकी सीमाएँ भी पहचान चुके थे। पर आज उन्हें जयन्ती की भूमिका पर आश्चर्य था। जरा भी संकोच नहीं, जरा भी लज्जा नहीं, जरा भी हिचक नहीं। मध्य रात्रि के कुछ पहले सोम पात्र आचार्य के अधर से लगाती हुई जब वह उनके अंक में ढुलक गयी, तब तो शतपर्वा को भी लज्जित होकर हट जाना पड़ा।....और वह जिन आचार्य पुत्रों को घास भी नहीं डालती थी, आज उन्हें झूम-झूम कर पिला रही थी। "क्या हो गया, इस देवकन्या को ? ऐसी संस्कार भ्रष्टा कदाचित ही खोजने पर मिले।"—ब्रह्मचारियों की सामान्य धारणा ऐसी ही थी।

सचमुच वृषपर्वा नहीं आया। सोम के कुम्भ-के-कुम्भ आ गये थे। प्रवज्ञा ने कच की प्रशंसा करते हुए कहा,—"आपने ठीक सोचा था। महाराज नहीं आये। मात्र सोम घट भिजवा दिये हैं।"

"...और जानते हैं, यह घट भी कब तक भिजवाये जाते रहेंगे ?" कच ने ही उत्तर भी दिया—"जब तक यह युद्ध चलता रहेगा, क्योंकि संजीवनी विद्या का महत्व तभी तक है जब तक मनुष्य मरता रहेगा।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"मनुष्य तो मरेगा ही वह मरण धर्मा है ।"—प्रवज्ञा बोला ।

"पर यह विद्या हर मृत्यु पर प्रभावी नहीं होती । जीवन की नियति को यह जीत नहीं पायी है ।"—कच ने कहा,—"इससे वही जिलाया जा सकता है जो अकाल मृत्यु मरता है ।"

"....किन्तु देवताओं को इसकी आवश्यकता क्या ?....वह तो स्वयं को अमर कहते हैं ।"

"कहते हैं न, पर होते कहाँ हैं ?"—कच हँसा,—"अमर व्यक्ति नहीं, वरन् उसके कर्म होते हैं ।....और कर्म तो आप देख ही रहे हैं ।"—कच का स्पष्ट संकेत आचार्य की ओर था । प्रवज्ञा भी हँसने लगा ।

हँसी थमते ही उसने कच से बड़ी सहजता से पूछा,—"आप सोम पान नहीं करते ?"

"मैं तो ब्रह्मचारी हूँ न । सोम हमारे लिए वर्जित है ।"—कच ने कहा । उसका सारा व्यक्तित्व ही प्रवज्ञा के नेत्रों के सामने नाच गया । उसने अनेक मुद्राओं में कच को देवयानी के बाहुपाश में घिरा देखा और बड़े आश्चर्य से पूछा,—"सचमुच आप ब्रह्मचारी हैं ?"

कच हँसने लगा । "लगता है आपने मेरा तन ही देखा है, मन नहीं ।" —इतना कह कर वह बात एकदम टाल गया, क्योंकि अपनी ही कही बात उसे विचित्र लग रही थी, उसका मन स्वयं उससे पूछने लगा था,—"कहीं मन और तन दो होता है ? एक कारण है, दूसरा कार्य । एक चालक है, दूसरा चालित ।.... तब तुम इसे दो क्यों समझते हो ? यह ठीक है कि तुम वासना को भोग नहीं सके, पर यह ठीक नहीं है कि तुम वासना को भोगना नहीं चाहते थे ।"—मन की इस प्रतिक्रिया पर भी वह हँसने लगा । प्रवज्ञा उसे देखता रहा ।

कच की इसे कुशलता कहिए या सहजता । वह अपनी हर दुर्बलता पर हँसी चिपका लेता था और लोग उसी में उलझ जाते थे । इस समय प्रवज्ञा के साथ भी ऐसा ही हुआ । फिर कच को एक अवसर और मिल गया इन बातों से छुटकारा पाने का ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सामने से कुलिश आता दिखायी दिया। उसे देखकर उसकी नाटकीय हँसी पुनः उभरी—यह देखिए, जब सारा आश्रम सोम में डूब रहा है,... हर व्यक्ति नींद में डूबने की चेष्टा कर रहा है, तब भी यह जागते रहो की आवाज लगाता घूम रहा है। "अरे आज तो कहो, सोते रहो, खूब सोते रहो, सोते रहो।"—और वह खिलखिलाता रहा।

प्रवज्ञा जब अपने कक्ष में पहुँचा, तो वहाँ भी कुम्भ खुले पड़े थे। असुरराज के कर्मचारी धरती पर ही ढुलक गये थे।

यह ऐतिहासिक सबेरा शान्ति लेकर जन्मा था। एक विचित्र शान्ति। उदास-उदास। कहीं कोई आवाज नहीं, ध्वनि नहीं। केवल वृक्षों पर पक्षी चहक रहे थे। देवयानी के पशु उद्यान में जानवरों की कहानियाँ उभर रही थीं। यज्ञशाला आज बुझी पड़ी थी। आश्रम सोम की गंध में डूबा था, यद्यपि आकाश का सोम डूब चुका था।

आचार्य जहाँ भी सचेत होने की चेष्टा करते थे जयन्ती उन्हें पुनः पिला देती थी।

समय के चरण बढ़ते गये। सूर्य चढ़ने लगा।

कुलिश कच के द्वार पर आया। द्वार खोलकर जो कुछ देखा अवाक् रह गया। अचानक उसके मन में कच की पूर्व ध्वनि गूँजी,—"जो कुछ देखना, घबराना मत।"—वह चुपचाप वहाँ से हट गया, पर उसकी आकृति 'फक' हो चुकी थी। वह अब सेल के सहारे चल रहा था।

इस अप्रत्याशित विपत्ति की चर्चा वह किससे करे? क्या कहे? देवयानी भी सो रही है। आचार्य अपने होश में नहीं, और जयन्ती? वह तो आचार्य को छोड़ती ही नहीं। उसे अलग बुलाकर कहूँ, पर कच ने कहा था—घबराना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मत और जयन्ती को व्यग्र मत होने देना।''''यदि यही परिणाम निकलना था तो उसने हमसे बताया क्यों नहीं ? इस गोपनीयता का रहस्य क्या ?

यद्यपि कुलिश ने किसी से कुछ कहा नहीं, पर बात अरण्य अग्नि की तरह फैल गयी। हर व्यक्ति कच के उटज की ओर बढ़ा। उनके पास बस एक ही प्रश्न था—उसे नाग ने कैसे काट खाया ?

सबसे पहले देवयानी ने ही द्वार खोला। कच घट के निकट ही औंधे मुँह पड़ा था। उसके पैर से दब कर विशाल नाग मर चुका था। वह भय और निराशा से काँपती हुई बोली,—"मैंने कहा था, इससे कि उस नाग को मार डालो। किसी दिन तुम्हीं पर आक्रमण कर देगा, पर मेरी एक नहीं सुनी। दर्शन झाड़ने लगा,—"पशुओं का किसी से वैर नहीं होता।''''वैर तो नहीं था फिर काट क्यों खाया ?"—वह दाँत पीसती रह गयी।

"सचमुच वैर नहीं था। उसने दब कर ही काटा होगा, पर पगों में कहीं भी काटने का चिह्न तो दिखायी नहीं देता।"—प्रवज्ञा ने कहा और लगा झुक कर उसके पगों को ध्यान से देखने।

"अरे देखते नहीं हैं, कितना भयंकर विषधर है। जरा सा दाँत लगते ही प्राण पखेरू उड़ गये होंगे।" कुलिश जैसे किसी परिस्थिति को संभाल रहा हो। देर से ही सही, लगता अब वह बहुत कुछ समझ गया है,—"कोई आवश्यक नहीं कि दांत का चिह्न आपको मिल ही जाये।"—फिर उसने एक निश्वास भरी, बिल्कुल कृत्रिम और बनावटी निश्वास—चलिए अच्छा हुआ, सारा झंझट समाप्त हो गया।

"यह क्या कहते हो तुम ?"—देवयानी तमतमायी।

"मैं ठीक कहता हूँ ऋषिकुमारी। इतने दिनों से प्रहरी हूँ और सब कुछ समझ गया हूँ।''''आश्रम की अशान्ति के मूल में यही एक व्यक्ति है, जिसे वध करने की योजना में असुर हर क्षण व्यस्त रहते थे। आश्रम शीत युद्ध का क्षेत्र हो गया था। नियति देखिए, उसे नाग ने ही काट खाया। असुर अपयश से बच गये।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"क्या ऐसा नहीं हो सकता कि इस नाग को इस झोपड़ी में डालने का षड़यन्त्र किसी असुर ने ही किया हो।"—देवयानी बोली और चिनगारी बरसाती उसकी दृष्टि प्रवज्ञा की ओर मुड़ी।

आप विश्वास कीजिए, असुरों का इसमें कोई हाथ नहीं है।"—प्रवज्ञा गिड़गिड़ाया, पर कुलिश मौन था। उसका मन कह रहा था,—यह विषधर तो मैं ही लाया था। वह कुछ बोला नहीं। दो-एक डग पीछे अवश्य हट गया।

"मुझे तो विश्वास नहीं होता कि इस कुकृत्य में आप लोगों का हाथ नहीं है।"—देवयानी ने कहा।

"कैसे विश्वास दिलाऊँ आपको कि हम निर्दोष हैं ?"-

"....यदि आपका हाथ नहीं है तो आप एक कार्य कर सकते हैं ?"

"क्या ?"

"तात से आप ही प्रार्थना कीजिए कि इसे पुनर्जीवन मिल जाये।"—देवयानी ने कहा। प्रवज्ञा सोचने लगा।

"अब सोचने क्यों लगे ?"

"मैं जी से चाहता तो हूँ कि इसे पुनर्जीवन मिल जाये, पर सोचता हूँ मेरी ऐसी प्रार्थना पर हमारे महाराज कहीं नाराज तो नहीं हो जायेंगे।"—उसका स्वर तो विनीत था ही वह प्रणत मुद्रा में झुका भी।

"मुझसे राजनीति करते हो ? मैं सब समझती हूँ। तुम लोगों को अपनी नीचता का फल अभी मिलेगा।"—देवयानी फनफनाती हुई द्वार से हटी,—"....जरा देखिए, अवसर भी कैसा चुना है। सोचा, आचार्य सोम के मद में पड़े रहेंगे और इसे विषधर से कटा कर समाप्त कर दिया जायेगा। यह सारा षड्यन्त्र तुम्हीं लोगों का है।....शायद इसी अपयश से बचने के लिए कल वृषपर्वा नहीं आया, अन्यथा वह सोमयज्ञ पर उपस्थित होता था।"

देवयानी आचार्य कक्ष की ओर बड़बड़ाती चली जा रही थी। वह किसी का कुछ भी सुनने की स्थिति में नहीं थी। यद्यपि प्रवज्ञा का मन कह रहा था,—महाराज क्यों नहीं आये, इसे कच अच्छी तरह जानता था। पर वह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किससे कहे, कोई सुनने वाला हो तब तो। वह मात्र गिड़गिड़ाता रहा,—"यह केवल एक संयोग है, आप विश्वास करें। इस बार हम लोगों ने कोई षड्यन्त्र नहीं किया है।"

"इसका तात्पर्य है कि तुम लोग पहले षड्यन्त्र करते रहे हो।"—वह तड़पी।

प्रवज्ञा ने एक निरीह अपराधी की भाँति स्वीकृति में सिर हिलाया।

"…तब आचार्य से निवेदन क्यों नहीं करते?"—देवयानी क्षणभर के लिए उससे कहती हुई रुकी। आकाश में मेष का सूर्य आग बबूला होने लगा था।

देवयानी के आदेश के बाद कच की एक स्थायी ध्वनि प्रवज्ञा के मस्तिष्क में गूँजने लगी—क्या कभी ऐसा नहीं हो सकता कि यह देवासुर संग्राम सदा के लिए समाप्त हो जाये, क्योंकि इससे हमें और आपको क्या लेना देना है।"—प्रवज्ञा कुछ कहने ही वाला था कि पीछे से एक नारी स्वर शिलाखण्ड की भाँति टूट कर गिरा,—"ऋषिकुमारी के आदेश का पालन क्यों नहीं कर देते अमात्य?…यदि आपको कोई आपत्ति हो तो मैं ही चलकर आचार्य से निवेदन करूँ?" —दोनों ने मुड़ कर देखा। शर्मिष्ठा बोलती हुई चली आ रही थी। अब बहुत सारे ब्रह्मचारी भी वहाँ एकत्र होने लगे थे।

"जब आपका ही आदेश है, तब भला मुझे कौन-सी कठिनाई हो सकती है।"

"ओ, अब समझी। अमात्य के लिए राजकुमारी का आदेश चाहिए, ऋषिकुमारी का नहीं।" देवयानी बोली।

शर्मिष्ठा देवयानी की प्रकृति जानती थी। वह समझती थी कि उसका अहं जरा-सी ठेस लगते ही भभकने लगता है। वह विस्फोटक स्थिति कोई करवट ले, इसके पहले ही उसने सँभाला—"मेरा काम तो आपके आदेश को मानने के लिए आदेश देना है। मैं तो आपकी अनुचरी हूँ।"

"अनुचरी थी, तो अब तक कहाँ थी?"—निश्चित ही देवयानी का स्वर ढीला पड़ा,—"चलो, मेरी बगल में आओ।"—उसने हाथ से खींचकर उसे अपनी बगल में कर लिया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुछ ही पग चलने के बाद शर्मिष्ठा ने एक शंका उठायी,—"इस बार आप स्वयं आचार्य से क्यों अनुरोध करना नहीं चाहतीं ?"

"बार-बार मैं ही अनुरोध करूँ ?···आचार्य क्या सोचेंगे ?"—वह बोली,—"··· किसी देवपुत्र के पुनर्जीवन के लिए असुरों की प्रार्थना शायद एक नयी परम्परा का जनक भी हो जाये ।"

"···तब क्यों नहीं हम सब मिलकर आचार्य से आग्रह करते ?"

"इससे क्या लाभ होगा ?"

"नयी परम्परा का जन्म भी होगा और पुनर्जीवित कच पर हम सबका सम्मिलित अधिकार भी होगा ।"—शर्मिष्ठा से इतना सुनते ही देवयानी के नेत्र जैसे फैल गये । उसे लगा, उसका स्वप्न बाँटा जा रहा है, उसका प्रेम विभाजित हो रहा है ।

डग डगमग थे । पग कहीं-का-कहीं पड़ रहा था । पर आचार्य का मन नियंत्रित था । वह नर्तकी के सहारे कच की उटज की ओर चले जा रहे थे । "आज लगता है, मैं झूल रहा हूँ । पूरी सृष्टि एक झूला हो गयी है और तू डोर है उसकी सुन्दरी ।···आचार्य ने नर्तकी से कहा । उसे कुछ और दबाया तथा हँसने लगे,—"आज इतना सोम मैंने कभी नहीं पीया था,··· और यह सब तुम्हारे ही आग्रह पर सोम सुन्दरी ।" आवाज एक बार डगमगायी,—"सोम सुन्दरी, नाम अच्छा है न ?···अब मैं तुझे नर्तकी नहीं, सोम सुन्दरी ही कहूँगा । ··· खीं ···खीं··· खीं ।" एक विद्रूप हँसी लड़खड़ायीं ।

आचार्य के पीछे सभी थे—प्रवज्ञा, शर्मिष्ठा, देवयानी और अन्य लोग । शतपर्वा नहीं थी । आचार्य पुत्र तो अब भी खर्राटे भर रहे थे ।···पर शुक्राचार्य के लिए मात्र सोम सुन्दरी थी और कोई नहीं । जो दिखायी भी पड़ रहे थे वे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

झूले से झड़े लोग थे, जो पेंग मारती हुई उनकी दृष्टि में कभी पास आते थे और कभी दूर चले जाते थे ।

उटज में प्रवेश करते ही वे बोले,—"अरे यह तो सचमुच मर गया है। खी " खी " खी ।"—वह बड़ी देर तक एक विक्षिप्त हँसी हँसते रहे।

"महाराज, इसे पुनर्जीवन प्रदान करें।"—प्रवज्ञा ने अनुरोध किया।

"किसे ? इस युवक को या नाग को ?"—वे फिर पागलों सा हँसते रहे,—"दोनों में कोई भी एक दूसरे से कम नहीं है।"

"नहीं महाराज, कच मनुष्य है। नाग पशु है।"—प्रवज्ञा पुनः बोला।

आचार्य की प्रगल्भ हँसी अब भी बिखरती रही,—"तुम नहीं जानते अमात्य कि मनुष्य में कितना विष है। " अरे नाग का विष तो मंत्र द्वारा उतारा जा सकता है, पर मनुष्य का विष उतारने के लिए ऋषियों ने अभी तक किसी मंत्र की रचना नहीं की है।"

पता नहीं क्यों आज आचार्य कच के लिए ऐसी उक्तियाँ कह रहे हैं ? जयन्ती को आश्चर्य था। उसे आशंका हुई, कहीं आचार्य सोम के उद्रेक में नाग को ही जीवित न कर दें। नशे में कुछ भी किया जा सकता है। सम्पूर्ण वासना अपनी वाणी में बटोरती हुई वह बोली,—"कच को जिला दें आचार्य।··· एक बार फिर जिला दें।"

"तुम भी कहती हो सोम सुन्दरी।····तो जिला देता हूँ। अभी जिलाता हूँ।"—वे तल्प पर बैठ गये। उनकी साँसें कुछ तेज चलने लगीं,—"आप सब लोग यहाँ से चले जाइये और द्वार बन्द कर दीजिए।"

सब चले गये। जयन्ती भी चलने को हुई,—"तू कहाँ जा रही है ? अरे ! डोर छूटी कि मैं गिरा।" उन्होंने जयन्ती को वहीं दबाये रखा और बड़े ध्यान से कच को देखते रहे। " "किन्तु उसका शरीर तो जरा भी नीला नहीं हुआ है। नाग के विष से मरनेवाले का तन तो नीलाभ हो जाता है। लगता है कच मरा नहीं है।" आचार्य बोले और मुस्कराते हुए जयन्ती को देखते रहे। जयन्ती को लगा कि योजना लड़खड़ा रही है। वह तुरन्त तल्प से उठ खड़ी हुई और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कच की नाड़ी देखने लगी,—"नहीं महाराज, यह बिल्कुल मर गया है।"

"··· तब यह नीला क्यों नहीं हुआ है?"—जयन्ती क्या उत्तर दे? उसकी घबराहट बढ़ने लगी, पर शीघ्र ही मस्तिष्क ने साथ दिया,—तुम कहो कि नीला हो रहा है। जहाँ दो-चार बार कहा, सोम के नशे में आचार्य को यह नीला ही दिखायी देने लगेगा।

"यह नीला तो हो रहा है आचार्य!"—उसने मादकता के मनोविज्ञान का सहारा लिया,—"इसकी पुतलियाँ देखिए नीली हो चुकी हैं। इसके करतल और पगतल दोनों नीले पड़ चुके हैं। अधरों की लालिमा भी जा चुकी है।"—वह एकदम लपकती हुई आचार्य के पार्श्व में जा बैठी,—"नीलिमा बड़ी तेजी से बढ़ रही है आचार्य!—शीघ्रता कीजिए अन्यथा····?"

"अन्यथा क्या? मेरी विद्या निरर्थक हो जायेगी।"—आचार्य हँसे। जयन्ती को पकड़ कर झूमते हुए बोले,—"तू कितनी भोली है, सोम सुन्दरी।"

जयन्ती का सम्मोहन काम कर गया। आचार्य को लगने लगा कि कच नीला पड़ गया है। वे स्वयं उठे। जयन्ती उन्हें पकड़ने के लिए लपकी। उन्होंने घट पर से आच्छादन हटाया। अंजलि में जल लिया और लगे मंत्र पढ़ने।

जयन्ती बड़े ध्यान से उन्हें सुन रही थी और मन-ही-मन मंत्र दुहराती रही। उसकी सजगता लुटाये जाने वाले रत्न का प्रत्येक कण चुन लेना चाहती थी।

आचार्य ने मंत्र पढ़कर कच पर जल छिड़का, पर कुछ नहीं हुआ। "लगता है कि बड़ा गहरा विष है।"—वे बोले और हाथ में जल लेकर पुनः पढ़ने लगे। जयन्ती भी मंत्र की द्वितीय आवृत्ति के साथ-साथ हो चली।

आचार्य ने मंत्र समाप्त होते ही पुनः उसके तन पर जल छिड़का। इस बार भी कुछ नहीं हुआ। "क्या बात है? आज मेरी संजीवनी विद्या क्यों काम नहीं कर रही है?"—उन्होंने जयन्ती की ओर देखा। वह कुछ नहीं बोली। उसका मन मंत्र को लगभग सीख लेने में लगा था।

आचार्य कुछ समय तक कच को देखते रहे। शायद कोई प्रभाव हो, पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्यर्थ। उन्होंने फिर जल लिया और इस बार एक-एक शब्द पर बल देते हुए जोर-जोर से मंत्र पढ़ते रहे। जल छिड़कने के पहले ही कच के अधर हिलने लगे। उन्होंने जल छिड़का और बड़े उत्साह में जयन्ती से बोले,—"सोम सुन्दरी, देखा प्राण आ गया।....अब थोड़ी देर बाद यह उठ बैठेगा।"

महाराज इसके अधर तो अवश्य हिल रहे हैं, पर अभी विष का प्रभाव है।...बस आपके मंत्र की एक आवृत्ति और कर दें आचार्य! यह अवश्य उठ बैठेगा।

"पर मैं आवश्यक नहीं समझता।"—आचार्य ने कहा।

"अधर तो हिल रहे थे। लगता था कि वह मंत्र की आवृत्ति कर रहा है, पर उसने अब भी अपनी चेतना स्पष्ट नहीं की थी। निश्चित ही उसे एक आवृत्ति की और आवश्यकता है।—जयन्ती ने सोचा और पुनः आचार्य से आग्रह किया।

वासना यों ही अन्धा कर देती है, और फिर सोम का प्रभाव? अन्धे को अन्धकार में ढकेलने के लिए पर्याप्त है। अंधेरे में भटकता अन्धा आचार्य इस बार फिर मंत्र लुटाने में संलग्न हो गया।

इस आवृत्ति के बाद ही कच उठ बैठा। उसने आचार्य के चरण छुए। "जीवेम् शरदः शतम्" आचार्य बोल पड़े। उसने एक विजयी दृष्टि जयन्ती पर डाली। वह भी सफलता पर मुस्करा रही थी।

"आपने अपना ज्ञान दिया, मैं कृतज्ञ हुआ आचार्य!"—कच ने विजयोन्माद में पुनः उनके पैर छुए।

"क्या....?"—आचार्य का मुख खुला का खुला रह गया। अब कच जोर-जोर से मंत्र की आवृत्ति करने लगा था।

अब आचार्य का नशा एकदम हिरन हो गया था। उसे ऐसा लगा जैसे विस्फोट हो गया है। धधकते ज्वालामुखी में वह गिरता चला जा रहा है। आकाश के नक्षत्र टूट-टूट कर उस पर भहरा रहे हैं। वे उटज से पागलों सा चिलाते हुए निकले,—"मेरे साथ धोखा हुआ। मैं लूट लिया गया। मेरे वैभव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में उन छलियों ने आग लगा दी। मैं भस्म हो रहा हूँ। मुझे बचाओ! मुझे बचाओ!! ..."

लोग बाहर प्रतीक्षा में खड़े ही थे। आचार्य की यह स्थिति देखकर चकित रह गये। सारा आश्रम टूट पड़ा। आचार्य चिल्लाते जा रहे थे—मेरा सब कुछ लुट गया। मेरी बुद्धि मारी गयी। इस सोम और सुराम की मादकता ने मेरा नाश कर दिया। आश्रम वासियों, मुझे बचाओ। मेरी अस्मिता नष्ट हो रही है। .. रहस्य खुल गया। गोपनीयता नग्न हो गयी।"—आचार्य चीखते-चीखते गिर पड़े। उनके घुटने छिल गए। रक्त चुक-चुका आया।

देवयानी ने उन्हें उठाया,—"शान्त होइए आचार्य!"

आचार्य देवयानी से लिपटकर बच्चों की भाँति विलख-विलख कर रोने लगे थे। धीरे-धीरे आँसुओं से बोझिल शब्द खुलते गए। लोगों को बात मालूम हुई। सभी स्तब्ध थे। कच ने उन्हें लूट लिया था, पर वे अब कर क्या सकते थे?

कच अपने द्वार के बाहर ही खड़ा था। पार्श्व में जयन्ती थी। दोनों की सजगता दूर से ही आचार्य की विह्वलता देख रही थी,... और अब, अन्य लोग भी उनकी ओर ही निहारने लगे थे। उन्होंने अनुभव किया कि पूरी भीड़ में आग धधक रही है। उनके नेत्र ऐसे रक्ताभ हो चुके हैं जैसे कच्चा चबा जायेंगे। जयन्ती विल्कुल सहम सी गयी,—"यहाँ से भाग चलो अन्यथा कुशल नहीं।"

"भागकर आखिर जाओगी कहाँ?" कच ने कहा और उसकी दृष्टि अतिबल को खोजने लगी। पहले तो वह कहीं दिखायी नहीं दिया। पैर के नीचे की खसकती धरती को बड़े साहस के साथ वह थामें रहा। शीघ्र ही जयन्ती ने उसकी दाहिनी भुजा दबायी और दक्षिण की ओर संकेत किया। अतिबल अपने साथियों के साथ सेल लिए चला आ रहा था।

अब कच में साहस का नया स्रोत फूटा। वह बोल पड़ा,—परम आदरणीय आचार्य जी, माता जी, भाइयो और बहनो,

"....मैं समझ रहा हूँ कि आप सब हमसे रुष्ट हैं। हम पर क्रोधित हैं। आपको ऐसा होना भी चाहिए क्योंकि आपकी विद्या की गोपनीयता आज से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समाप्त हो रही है।... किन्तु क्या आप जनाते हैं, बंधा हुआ जल और बंधी हुई विद्या पंकिल हो जाती है। पिजड़े में पड़ा हुआ पक्षी अपने उड़ने की शक्ति खो बैठता है। आज वह पक्षी मुक्त आकाश में जा रहा है। अनन्त अन्तरिक्ष उसका खुला आँगन होगा?"—वह पलभर के लिए रुका, उसने अनुभव किया कि आचार्य को व्यग्रता कुछ शमित होने लगी है, वे भी उसे सुन रहे हैं। वह फिर बोलने लगा—"आचार्य का यह कहना कि मैं लुट गया हूँ, एक भावुक हृदय की भावाकुल अभिव्यक्ति मात्र है। वस्तुतः मैं लुटेरा नहीं हूँ और न मैंने आपकी सम्पत्ति ही लूटी है। मैंने तो उस सम्पत्ति पर आपके एकाधिकार को केवल ध्वस्त किया है।... इससे यदि आप नाराज हों, तो मैं आपसे क्या कहूँ?...क्योंकि ज्ञान किसी की पैतृक सम्पत्ति नहीं होता। वह मूलतः समाज का होता है। उसे समाज में ही फलने फूलने देना चाहिए।

"आज से यह संजीवनी विद्या समाज की हुई। इसे इतिहास भी समाज को आचार्य का अवदान ही मानेगा।... मैं तो इस अवदान का एक माध्यम मात्र हूँ। यह हो सकता है कि आचार्य धोखे में रहे हों, पर मैं धोखेबाज नहीं हूँ। मैं एक शिष्य हूँ। और मेरा यह सौभाग्य है कि मेरे शिष्यत्व में दृढ़ संकल्प है, प्रगाढ़ शक्ति है।....आचार्य के न देने पर भी मेरे शिष्यत्व की संकल्प दृढ़ता ने विद्या प्राप्त कर ली है। अब आप ही सोंचे,—जो आचार्य विद्या देना नहीं चाहता, उसे छिपाये रखना चाहता है वह अपराधी है या वह शिष्य अपराधी है जो अपनी युक्ति से उसे प्राप्त कर लेता है।"

कच अभी बोलता ही जाता यदि आचार्य बीच में ही चिल्ला न पड़ते—"... मैं अपराधी हूँ। निश्चित रूप से मैं अपराधी हूँ।... मैंने जघन्य अपराध किये हैं, पर अपने वश में नहीं, सुराम के वश में, सोम के वश में, सुरा के वश में।"—उनकी विह्वलता बढ़ी,—आश्रमवासियों, कुंभ के कुंभ ढुलका दो। उन्हें फोड़ डालो।...आज से आश्रम में सोम का प्रदेश भी वर्जित रहेगा।"—अचानक आचार्य की ध्वनि और विस्फोटक हुई,—"मुझे नष्ट करने वाली मदिरे! जा तुझे मैं शाप देता हूँ, तू सदैव समाज में घृणा का पात्र रहेगी। मनुष्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तेरा पान करके भी तुझ पर थूकेगा । ''कोई तेरा कभी विश्वास नहीं करेगा ।''—उनकी मुद्रा बदली । उन्होंने कच की ओर देख कर कहा,—''तेरा कोई अपराध नहीं है, कच ! तेरे शिष्यत्व की इतिहास में सराहना होगी ।''—इतना सुनते ही भीड़ को चीरता हुआ कच आचार्य के चरणों पर पुनः गिर पड़ा । फिर वही आशीर्वाद—जीवेम् शरदः शतम् ।

''···किन्तु मेरे शिष्य ! अब तुम आश्रम से जा सकते हो । तुम्हारी विद्या पूरी हुई ।''—आचार्य बोले ।

कच ने सोचा इससे अच्छा अब दूसरा अवसर नहीं हो सकता । बस उड़ चलो । उसने जयन्ती की ओर संकेत किया—अभी इसी क्षण ।···और दोनों चल पड़े । ''तुम इस नर्तकी को भी लिए जा रहे हो ?''—आचार्य ने पूछा । जयन्ती की दृष्टि उनके समक्ष गड़ी जा रही थी । ''यह तो मेरे लिए सर्मपित थी ।''—आचार्य ने पुनः कहा ।

''तन से किया गया समर्पण तब तक समर्पण नहीं होता आचार्य, जब से वह मन से न किया जाय ।''—कच ने कहा और हँसने लगा ।

''····तू क्या मात्र तन से मेरे साथ थी ? तेरा मन कभी भी मेरे पास नहीं आया ? तुमने आत्महत्या की भाँति आत्मबलात्कार किया है, नर्तकी ।··· इसका पाप तुझे अवश्य लगेगा ।''—आचार्य का स्वर इतना उग्र था, आँखें ऐसी आग्नेय थीं कि वे निश्चित ही उसे शाप दे देंगे ।

जयन्ती धरती ही देखती रह गयी । कच ने स्थिति को सँभाला,—''····पर आचार्य, इसका आत्मबलात्कार भी बँधे जल को बहा देने के लिए था, पक्षी के पंख खोल देने के लिए था ।''

आचार्य की अब आँख खुल गयी थी । जैसे वह गहरी नींद में थे । उन्होंने एक सपना देखा था ।····अब वही सोम सुन्दरी छल और प्रपंच की बनी एक पुत्तलिका की भाँति उन्हें दीख रही थी । ''····तो तूने भी मेरा मंत्र स्मरण कर लिया, पर तू कभी भी मेरी शिष्या नहीं हो सकती, तुझे यह विद्या कभी भी फलवती नहीं होगी ।''

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब अधिक रुकना ठीक नहीं। वे चल पड़े थे। पीछे सुरक्षा की री व्यवस्था थी। अतिवल अपने साथियों के साथ था।

लोग ठगे से देखते रह गये कि एक निष्ठावान सेवक के रूप में मिला कुलिश भी उन्हीं का निकला।··· आचार्य के नेत्रों ने जहाँ तक सम्भव था पीछा किया। बाद में वे श्रीहत सम्राट की तरह धरती थाम बैठे।

कच चला जा रहा था कि एक चिर-परिचित आवाज अवरोध बनकर उसके सामने खड़ी हो गयी।" मेरे प्रश्नों का उत्तर दो तव आगे बढ़ने दूँगी।"—उसने देखा देवयानी शर्मिष्ठा के साथ चली आ रही है।

कच रुक गया। "तुमने क्या कहा था?"—देवयानी ने पूछा।

कच चुपचाप खड़ा रहा, जैसे कुछ जानता ही न हो।

देवयानी ने याद दिलाया,—"तुमने कहा नहीं था कि मैं सदा तुम्हारा हूँ और तुम्हारे साथ रहूँगा?"

"हाँ कहा था।····पर यह तो तुम्हारे पोष्य ने कहा था, तुम्हारे पालित ने कहा था। एक पशु ने कहा था।···किन्तु मेरा पशुत्व तो उसी क्षण नष्ट हो गया जिस क्षण आचार्य ने मुझे अपना शिष्य स्वीकार कर लिया।"

"तुम्हें शिष्य स्वीकार किया था या तुमने बलात् स्वीकार कराया?"—देवयानी का नारीत्व तिलमिलाने लगा था।

"वात दोनों लगभग एक ही है। आत्महत्या और हत्या दोनों में परिणामात्मक अन्तर नहीं है, मात्र गुणात्मक अन्तर है।"—कच मुस्कराया,—"अब चाहे जैसे भी हो, मैं आचार्य का शिष्य हूँ। तुम मेरी बहन हो, देवयानी।"

सुनते ही वह भभक पड़ी,—"नीच, दुष्ट, पापी! अब तक हृदय की सम्राज्ञी बनाता था, अव बहन बनाने आया है। तुझे लज्जा नहीं लगती? जिसका तू पालित था, तूने उसे ही धोखा दिया। मैंने तेरे लिए क्या नहीं किया? जानता है चोट खायी नारी नागिन से कहीं अधिक विषैली हो जाती है।

"जानता हूँ।"—कच के स्वर में विचित्र दृढ़ता थी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"तो, जा, जिस संजीवनी विद्या की प्राप्ति पर तू मुझे छोड़े जा रहा है वह तुझे कभी काम नहीं आयेगी।"—देवयानी का विष शाप बन बैठा।

जयन्ती हतप्रभ हो गयी। अतिवल पाषाण हो गया, पर कच जरा भी विचलित नहीं हुआ, वरन अपने स्वभाव के अनुसार हँसने लगा। उसकी उन्मुक्त हँसी स्तब्ध वातावरण में झरती रही।

"मेरे काम भले ही यह विद्या न आये, पर मैं जिसे सिखाऊँगा, उसे तो काम आयेगी ही।"—इस बार की उसकी हँसी अट्टहास बन चुकी थी। देवयानी का आकाश काँपने लगा। शर्मिष्ठा भी विक्षिप्त उसे देखती रह गयी। वह बहुत कुछ पूछने आयी थी, पर कुछ बोल नहीं पायी।

अपनी हँसी लुटाता कच चल पड़ा।·····चलता गया, चलता गया। बहुत दूर जाने के बाद उसने पीछे मुड़कर देखा, देवयानी और शर्मिष्ठा एक अनकही अभिशप्त कथा सी अब भी खड़ी उसे निहार रही थीं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१६ पौष २०४०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रचारक बुक क्लब
हिन्दी प्रचारक संस्थान
पो॰बा॰१०६,पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१००१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu